महाकवि

घनानंद

[आलोचनात्मक अध्ययन]

लेखक—
श्री राम वशिष्ठ एम०

विनोद पुस्तक मन्दिर
हास्पिटल-रोड, आगरा।

प्रकाशक—
विनोद पुस्तक मन्दिर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रथम संस्करण—१९५५
मूल्य २।)

मुद्रक—
कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बागमुजफ्फरखाँ, आगरा।

श्रद्धेय

पूज्य पिताजी

को

जिनका स्नेह

ही

मेरी शक्ति

है

अपनी बात

हमारे साहित्य में ऐसे अनेकों कलाकार हैं जिनकी कला-कृतियों का ठीक रह से मूल्याङ्कन नहीं हो सका। हिन्दी के आलोचकों की मूल प्रवृत्ति रही है क उन्होंने उसी कवि के ऊपर अपनी लेखिनी उठाई जिसको विश्वविद्यालयों ; पाठ्य-क्रम में ले लिया गया। महाकवि घनानन्द भी इसी तरह के कलाकार । अभी तक उनके काव्य की विशेषताओं को हिंदी के बहुत कम आलोचकों ; द्वारा प्रकाशित किया गया। स्वर्गीय आचार्य शुक्ल जी का ध्यान उनकी गेर अवश्य आकर्षित हुआ और उन्होंने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में :स महान कलाकार की विशेषताओं की ओर सकेत भी किया किन्तु वह र्याप्त नहीं।

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना ने घनानन्द के वेषय में लिखा लेकिन इन दोनों विद्वानों ने भी उनके काव्य पर व्यापक ष्टि नहीं डाली। इस वर्ष घनानन्द को आगरा विश्वविद्यालय ने एम० ए की रीक्षा के पाठ्य-क्रम में ले लिया है और साथ ही आलोचकों का ध्यान भी नकी ओर आकर्षित हुआ है। मैं भी दुर्भाग्य से उसी समय इस कार्य में गा जब कि मुझे यह प्रतीत हो गया कि घनानन्द भी पाठ्यक्रम में ले लिये ये हैं। इसलिए मैं अपनी इस मनोवृत्ति के लिए पाठकों से क्षमा चाहूगा। फेर भी मैं इस कार्य को इतनी शीघ्र सभवत नहीं कर पाता यदि परम स्नेही ा० रागेय राघव जी मुझे प्रेरणा नहीं देते। वह इन दिनों घनानन्द पर एक खण्डकाव्य लिख रहे थे जिसे सुनने का मुझे सौभाग्य मिला और साथ ही मेरे ार्य करने की गति भी बढ़ी। इसलिए मैं उनका विशेष आभारी हू।

मैं अपने उन मित्रों का भी आभार स्वीकृत करता हू जिन्होंने मुझे पुस्तकों ; जुटाने में सहायता दी। प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे निम्नलिखित लेखकों की सहायता भी कहीं २ लेनी पड़ी—

हिन्दी साहित्य का इतिहास	(स्वर्गीय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)
भाषा और साहित्य	(बाबू श्यामसुन्दरदास)
शृङ्गार-संग्रह	(कविराव सरदार)
रीतिकाल की भूमिका	(डा० नगेन्द्र)
घन-आनन्द	(श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)
घन-आनन्द	(शम्भुप्रसाद बहुगुना)

उपर्युक्त पुस्तकों के लेखकों के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता। क्योंकि वही मेरे पथ-प्रदर्शक हैं।

—राम वाशिष्ठ

जीवन-वृत्त

भारतीय काव्य प्रणेताओं, साहित्यकारों एवं मनीषियों ने अपनी दिव्य-दृष्टि से ज्ञान की सूक्ष्मातिसूक्ष्म गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया। भावनाओं के असीम सागर में डुबकी लगाकर उसमें से अमूल्य रत्नों को खोजा, जीवन के व्यापक तत्वों की व्याख्या की। किन्तु जहाँ, उनके अपने जीवन सम्बन्धी घटनाओं का प्रश्न है वहाँ वे मौन रहे। यह परम्परा संस्कृत साहित्य से चली आ रही थी। आधुनिक युग में अवश्य इस महत्व को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से आवश्यक समझा गया और अब तो आत्म-प्रशंसा को इतना महत्व दिया जा रहा है कि इसमें लेखक और कवि वर्ग अपने अर्थ का भी व्यय करने लगे हैं। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर अपने फोटो को देना आवश्यक समझते हैं, अन्य मित्रों के द्वारा अपने जीवन के महत्व का प्रतिपादन अपने जीवन काल ही में करा लेते हैं। किन्तु हमारे साहित्य की प्राचीन परम्परा में इसको दोष समझा जाता था। आत्मश्लाघा और अपने व्यक्तित्व का विज्ञापन यह पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन महाकवियों ने ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने अपने अहं को भुला दिया किन्तु आज जब हम उसको ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखते हैं तो यह हमें उनकी भूल सी प्रतीत होती है। हम उनके जीवन सम्बन्धी सामग्री को उनकी रचनाओं में बिखरे ऐतिहासिक सत्यों, ताम्रलिपियों, शिलालेखों और अन्य उपकरणों को जुटाकर ही देखने का प्रयत्न करते हैं। कालिदास जैसे महाकवि तुलसी और सूर जैसे महान् काव्य प्रणेताओं के जीवन-चरित्र को जुटाने में अनुमान-का ही सहारा लेना पड़ता है। अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य पर ही अवलंबित रहना पड़ता है।

हिन्दी के वीरगाथाकाल के प्रमुख कवि चन्द्रबरदाई, भक्तिकाल के जायसी, कबीर, तुलसी, सूर तथा रीतिकालीन कवियों के जीवन की सामग्री

की खुदाने में उनकी रचनाओं से बिखरी घटनाओं तथा समकालीन अन्य ग्रंथ का ही सहारा लेना पड़ता है।

रीतिकाल के स्वच्छन्द कवि घनानन्द भी इसी प्रकार के कवि हैं जिनका जीवन वृत्त भी जनश्रुतियों, अन्य कवियों की रचनाओं अथवा इतिहासकारों की खोजों के आधार पर ही अवलम्बित है। इस प्रकार अनुमान ही के आधार पर इनका जन्मकाल, रचनाकाल और मृत्युकाल विभिन्न विद्वानों ने निश्चित किया है। यही कारण है कि विभिन्न विद्वानों के मतों में साम्य नहीं। इसके अतिरिक्त इनके नाम के विषय में भी अनेकों सन्देह विद्वानों ने उत्पन्न किये हैं जिसका मूल कारण यह भी है कि अनुसन्धान कर्ताओं को जो कविता उपलब्ध हुई हैं वह तीन नामों से हैं—आनन्द, आनन्दघन और घनआनन्द। यह नाम निस्सन्देह किसी भी विद्वान को भ्रम में डाल सकते हैं। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने तो इन तीनों को घनआनन्द के ही नाम के लिये प्रयुक्त हुआ माना है। कुछ विद्वानों ने आनन्द को घनआनन्द और आनन्दघन से पृथक माना है। क्योंकि घनआनन्द का जीवन वृत्त किम्बदन्तियों के सहारे ही निर्मित किया गया है इसलिये एक प्रामाणिक जीवन वृत्त उसको नहीं माना जा सकता। कुछ विद्वानों ने जैनमर्मी आनन्दघन को भी आनन्दघन और घनानन्द के नाम से जोड़ने का प्रयत्न किया है किन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि जैनमर्मी आनन्दघन का नाम लाभानन्द जी था। यदि कुछ स्थलों पर उनकी रचनाओं में विचारसाम्य है भी तो यह कोई विशेष महत्व की बात नहीं इस प्रकार का विचार साम्य भक्तिकाल की कृष्णधारा के अनेकों कवियों में पाया जाता है। नीचे हम विस्तार पूर्वक विभिन्न किम्बदंतियों को वैज्ञानिक ढग से प्रस्तुत करके घनानन्द के जीवनकाल को देखने का प्रयत्न करेंगे।

विभिन्न जनश्रुतियाँ :—

घनानन्द के विषय में अनेकों किम्वदतियाँ और जनश्रुतियाँ प्रचलित थीं उन्हीं को आधार बनाकर विभिन्न विद्वानों ने कवि के जीवन को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। कवि की रचनाओं में जीवन सम्बन्धी तथ्यों की नितान्त न्यूनता होने के कारण विद्वानों को जनश्रुतियों को ही आधार बनाना पड़ा।

इसलिए धनानन्द का जीवनवृत्त विभिन्न रूपों में चित्रित किया गया। सबसे प्राचीन जन-श्रुति यह थी कि कवि घनानंद मुगल वंश के विलासी बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के यहाँ नौकर थे। अपनी तीव्र बुद्धि और चतुरता के कारण यह मीर मुन्शी बन गये। यह भी कहा जाता है कि बादशाह के दरबार की सुजान नामक वेश्या पर धनानन्द आसक्त हो गये थे। इनको संगीत से अत्यन्त प्रेम ही नहीं था वरन बहुत अच्छा गाते भी थे। किन्तु बादशाह के दरबार में अनेकों बार कहने पर भी इन्होंने अपना संगीत नहीं सुनाया। इस पर कुछ लोगों ने बादशाह के कान में इस बात को डाल दिया कि यदि सुजान कहेगी तो धनानद अवश्य गाना उसको सुना देंगे। बादशाह ने सुजान को बुलाया और सचमुच ही उसके कहने से धनानद ने विभोर होकर गाया। वह दरबार के नियमों की अवहेलना कर गये। फल यह हुआ कि उनको दिल्ली छोड़ने की शाही आज्ञा मिली। कहा जाता है कि चलते समय कवि ने सुजान से अपने साथ चलने को कहा किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। धनानद निराशा पूर्ण हृदय को लेकर चल दिये। उन्होंने सुजान को राधा-कृष्ण के रूप में परिलक्षित कर दिया और अपने प्रेम के उद्‌गारों को प्रकट कर पीयूष की ऐसी स्रोतस्विनी बहाई जिसने उनको ही अमरत्व प्रदान नहीं किया वरन अनेकों व्यथित हृदयों को सिक्त कर दिया। सांसारिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम बना दिया। अपने जीवन को उन्होंने उस प्रेम की स्मृति में ही समाप्त किया और वृन्दावन में रहकर राधा-कृष्ण के चरणों पर ही इन्होंने अपने शरीर को न्योछावर कर दिया।

इनकी मृत्यु के विषय में किम्वदंती है कि जिस समय नादिरशाह के लोलुप सरदार धन के कारण निरीह जनता को तलवार की धार उतार रहे थे उस समय किसी ने उनसे कहा कि ब्रजभूमि में बादशाह का मीर मुंशी रहता है। सरदार इनके पास गये और इनसे धन की माँग की और अन्त में इनको मार दिया।

उपर्युक्त जनश्रुति को श्री वियोगीहरि ने पद्यबद्ध करके धनानन्द के जीवनचरित्र को अधिक प्रामाणिक बनाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने

अपनी पुस्तक 'कविकीर्तन' में सम्वत् १६८० वि० में ऊपर दी हुई जनश्रुति व इस प्रकार गया—

> "घन आनन्द सुजान जान को रूप दिवानो।
> वाही के रंग रंग्यो प्रेम फन्दनि अरुझानो॥
> बादशाह को हुक्म पाय नहिं गायो इक पद।
> पै सुजान के कहे चाव सों गाये ध्रुपद॥
> बादशाह ने कोपि राज्य तें याहि निकारयो।
> वृन्दावन में आय वेष वैष्णव को धारयो॥
> प्यारे मीत सुजान सों नेह लगायो।
> लगन बान ते बिंध्यो बिरह-रस मंत्र जगायो"

कुछ विद्वानों ने एक और जनश्रुति को भी आधार बनानेका प्रयत्न किया है। जनश्रुति है कि महाराज सूरजमल के दरबार में देव और घनानन्द में वाद-विवाद हुआ जिसका कारण था अपनी-अपनी कविता की श्रेष्ठता सिद्ध करना एक सज्जन ने इस जनश्रुति के आधार पर दोनों कवियों की सुन्दर कविताओं को तुलनात्मक दृष्टि से रख कर प्रस्तुत भी किया है। इस प्रकार घनानन्द और देव को एक ही समय के कवि प्रमाणित किया है।

घनानन्द के जीवन से सम्बन्धित जनश्रुतियों को सर्वप्रथम रीवा नरेश रघुराज सिंह ने अपनी पुस्तक 'भक्तमाल' में संवत् १८८० में संग्रहीत किया। अन्य विवरण इनके बाद के हैं।—

> "एक भक्त का पुनि कहौं घनआनन्द इतिहास।
> घनआनन्द है नाम जिन सुनत हरत भवत्रास॥
> मथुरापुरी मलेच्छन घेरे। लाखों यवन लड़े चहुँ फेरे॥
> कारण तासु सुनौ अब सोई। दिल्ली में शहिजादा कोई॥
> एक समय मधुपुरी सिधायो। सबै मथुरियन हास बढ़ायो॥
> पनही कौ रचि कैं इक माला। डारयो शहिजादा के भाला।
> सो प्रकोपि निजकटक बोलायो। चहुंदित मथुरापुरी घेरायो॥

दीन्हो हुकुम नगर में जेते । अब बचि जायँ जियत नहिं तेते ॥
मारन लगे मलेच्छ प्रचारी । बचे न माथुर भट्ट भिखारी ॥
धन आनन्द वशीवट पाही । बैठे रहे भावना माहीं ॥
राधा माधव के मधि रासा । सखी रूप छवि पीवन आसा ॥
हाथे लीन्हे रहे सुपारी । तेहि छण में भावना पसारी ॥
सोइ सुपारी कर में लीन्हे । दिन रजनी बिताय सब दीन्हें ॥
सोइ भावना महँ गिरधारी । बीरी दीन्हो पानि पसारी ॥

दोहा—सोउ बीरी मुख में लियो, लगे सुरायन सोय ।
सोइ बीरी को रागमुख प्रगट लख्यो सब कोय ॥

मुख में भरि आयो जब बीरा । तबहि ध्यान छोड़यो मति धीरा ॥
तेहि अवसर मलेच्छ तहँ आई । मारे खग शीश महँ धाई ॥
उचकि गयो सो खग न काट्यो । तब पुनि मारि ताहि अति डाट्यो ॥
तदपि काट्यो नहिं उनकी देही । तब धन-आनन्द कृष्ण सनेही ॥
कहीं पुकारि कृष्ण सों बानी । यह तें कौन रीति अब ठानी ॥
मोकों भूरि मार है देही । यत्न कियो छूट्यो नहिं केही ॥
कौन हेतु राखत संसारा । क्यों न बुलावै नन्द कुमारा ॥
यदपि तजन तनु यलहु लाग्यो । तदपि न तें उधार अनुराग्यो ॥
कह्यो यमन कहँ पुनि गोहराई । अबकी मारहु शिर कटि जाई ॥
हन्यो यवन अस कटिगो शीशा । सब यमनन विमान नभ दीसा ।
घन आनन्द तन कढ़्यो न लोहू । सो चरित्र लखि परयो न कोहू ।
ब्रज में विदित कथा यह सारी । सखेगहि इत लिखो विचारी ।
घन आँनद के विपुल कवित्ता । अबलों हरत रसिन के चित्ता ।
घन आँनन्द की कथा अनेका । ब्रज में विदित अहै सविवेका ।
जाहि सुनत को हीय हुलासा । करै सो जाय विमल ब्रजवासा ।

यह घनआँनद की कथा, वर्णन कियो समास ।
औरहु भक्तन की कथा, नेसुक करौं प्रकाश ॥"

उपर्युक्त पद्यबद्ध जनश्रुति के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता

है कि किसी मुसलमान शाहज़ादे के क्रोध ने मथुरा निवासियों को पीड़ित किया और उसी क्रोध का भाजन रसिक कवि घनानन्द को भी बनना पड़ा और इस प्रकार उनकी जीवन लीला समाप्त हो गई। घनानन्द उस समय 'राधा माधव' के ध्यान में मग्न 'सखी रूप' से उनकी शोभा को देख रहे थे। इसके अतिरिक्त रीवाँ नरेश ने यह भी स्पष्ट किया है कि घनानन्द की यह कथा व्रज में प्रत्येक मनुष्य को विदित है और उसी कथा का संक्षेप में उन्होंने वर्णन किया है। इस जनश्रुति में उस शाहजादे का नाम अथवा उसके वंश का नाम यदि दिया होता तो बड़ी सरलता से घनानन्द के काल का निर्णय हो जाता। किन्तु ऐसा न होने से कवि के जीवन काल के विषय में केवल इतना ही सत्य मालूम होता है कि उनकी मृत्यु मथुरा में किसी मुसलमान शासक के क्रोध के कारण हुई। घनानन्द राधा-कृष्ण के उपासक थे और सखी भाव से उनकी आराधना करते थे।

अन्य विद्वानों की खोज तथा अनुमान :—

ऊपर हम वियोगी हरि द्वारा किया हुआ घनानन्द के काल का निर्णय एक जनश्रुति के आधार पर दे चुके हैं जिसमें उन्होंने घनानन्द का जन्म काल संवत् १७४६ माना है और उनका सुजान नामक वेश्या से प्रेम बताया है। लेकिन लाला भगवानदीनजी ने अपनी खोज में वियोगी जी के काल निर्धारण को अमान्य सिद्ध किया। उन्होंने अपनी खोज को 'लक्ष्मी पत्रिका' में प्रकाशित कराया और उन्होंने घनानन्द के जीवन काल को इस प्रकार माना है— "आनन्दघन का जन्म लगभग सं० १७१५ के प्रतीत होता। है और मृत्यु संवत् १७९६ में जान पड़ती है। ये दिल्ली के रहने वाले भटनागर कायस्थ थे और फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। जनश्रुति इनको अबुलफ़ज़ल का शिष्य भी बतलाती है। किसी छोटे ओहदे से बढ़ते २ ये बादशाह मुहम्मदशाह के खास कलम (प्राइवेट सेक्रेटरी) होगये। जनश्रुति यह बतलाती है कि घन आनन्द को बचपन से ही रासलीला देखने का शौक था। बहुधा महीनों तक रास-मण्डली के व्यय का भार अपने ऊपर लेकर दिल्ली में रासलीला करवाते थे और स्वयं भी किसी लीला में भाग लेते थे। इससे इनको हिन्दी भाषा के पद

सीखने और संगीत का व्यसन लगा और आगे चलकर वह निपुणता दिखाई जिसकी सराहना आज भी भाषा विज्ञ करते हैं। और अभी तक रासधारियों में इनके पद अद्यावधि पाये जाते हैं। इस रास की भावना का इन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि ये श्रीकृष्ण की लीलाओं में लीन रहने के लिये दरबार और गृहस्थी से नाता तोड़ वृन्दावन चले आये और वहाँ किसी व्यास वंश के साधु से दीक्षा ले यह किसी उपासना में दृढ़ और मग्न होगये।" (घन-आनन्द ले० शम्भुप्रसाद बहुगुना एम० ए० पृष्ठ २)

ग्रीन जी ने अपने इस निर्णय का कोई ठोस आधार नहीं दिया इसलिये इनके द्वारा किया हुआ विवेचन भी प्रामाणिक नहीं।

बाबू राधाकृष्णदास ने नागरीदास का जीवनचरित्र काशी नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कराया। उस जीवन चरित्र में उन्होंने किशनगढ़ के जयलाल कवि के एक पत्र का हवाला देकर इस प्रकार लिखा है— "संवत् १८७४ में (सन् १७५७ ई०) में शाहआलम सानी के समय में अहमद दुर्रानी ने मथुरा में कत्लेआम किया था। इस विषय में कवीश्वर जयलाल जी ने मुझे यह लिखा है—"कत्लेआम होने की खबर यहाँ कृष्णगढ़ रूपनगर में गुप्त आ पहुँची थी, नागरीदास के छोटे भाई बहादुरसिंह जी और नागरीदास के पुत्र सरदारसिंह ने उनको अर्जी लिखी थी। कि कुटुम्ब यात्रा के लिए यहाँ अवश्य पधारें। तब इस धोखादई से यहाँ आगये थे फिर छः महीने रह कर पीछे वृन्दावन ही पधार गये। संवत १८२० की भादव सुदी ३ को वृन्दावन में ही परलोक वासी हुये।"

इसके अतिरिक्त राधाकृष्णदासजी ने एक स्थान पर अपने लेख में एक चित्र का उल्लेख भी किया है—"हमारे यहाँ एक अत्यन्त प्राचीन चित्र है जिसमें नागरीदास जी और घनानन्द जी एक साथ विराजते हैं।

ब्रजलाल कवि ने अपनी पुस्तक 'छप्पन भोग चन्द्रिका'—जिसका रचना काल वि० सं० १६४७ है घनानन्द का तीन स्थानों पर निम्नलिखित उल्लेख किया है—

छप्पय

१— मुनि सुबोधिनी सहित भागवत भाष्य श्रवन किय।

पुष्टि मार्ग सिद्धांत समझि सुनि सुनि हिय भर लिय।
आनन्द घन हरिदास आदि बन सुनि सुनि
धमारादि में कही वहै नहिं कही सु शुक मुनि
हरिलीला सुनि प्रेम वश हग सजल वचन गद गद धरिय।
श्रीमन्नृत्य गुपाल की श्रवन भक्ति नागर करिय॥"

छप्पय

२— अंकुर रूप सु भयो प्रेम लघु जबै हीय मधि।
हरिगुन चर्चा कहत सुनत सवारी विधि मधि।
आनन्दघन हरिदास आदि लौं सन्त सभा मधि।
प्रकट भये अनुभाव सवैया के सु यथाविधि।
ब्रज वृन्दावन वास बसि बर भक्त तक शोभा सु लहि।
श्रीमन्नृत्य गुपाल को नृग नागर मध्यम प्रेम गहि॥

३—(अथ सत-संगति महिमा)

छप्पय

विप्रनि सौं सुनि वेद भागवत धर्म सुधारयो।
हरीदास तिन मान कही सोही अनुसारयो।
मुरलिदास और बंसिदास सौं समय गुजारयौ।
आनन्दघन को संग करत तन मन कौं वारयौ।
नर्तित गुपाल मिलि जानयौं सत-संगति नागर करिय।
गोपद समान सुख मान कै भव सागर कौं लहि तरिय।

उपर्युक्त उद्धरणों से घनानन्द के विषय में इतनी ही जानकारी मिलती है कि घनानन्द और हरिदास समकालीन थे और उनके उपदेशों को नागरीदास सुनते थे। इससे सिद्ध होता है कि नागरीदास भी इन दोनों महात्माओं के समकालीन थे और घनानन्द पर अपने तन मन को न्यौछावर करते थे।

नागरीदास नाम के चार महात्मा हुये हैं। राधाकृष्णदासजी ने जिन नागरीदास का उल्लेख किया है उनका नाम सावन्तसिंह था और इन्हीं के

साथ घनानन्द जी की मित्रता थी। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन्हीं का कविता काल सं० १७८० से १८१६ तक माना है।

कवि जयलाल ने 'नागर समुच्चय' में नागरीदास और घनआनन्द के ब्रज से जाने के विषय में एक दोहा है उससे भी कवि के समय का पता लगता है—

> अठारह सै ऊपरै सम्वत् तेरह जान ।
> चैत्र कृष्णा तिथि द्वादशी ब्रज तें कियो पयान ॥

अर्थात् सं० १८१३ में इन दोनों महात्माओं ने ब्रज से प्रस्थान किया था। इससे स्पष्ट है कि घनानन्द की मृत्यु सं० १८१३ के अनन्तर ही हुई।

काशी नागरी-प्रचारिणी की त्रैवार्षिक खोज विवरण में चाचा हित वृन्दावनदास की 'हरिकलावेलि' के आधार पर इस प्रकार का विवरण है— "काबुल या कन्धार का रहने वाला एक कलंदरशाह मुसलमानों की एक फौज लेकर पहली बार सं० १८१३ में और दूसरी बार स० १८१७ में ब्रज में चढ़ आया था।"

'हरिकलावेलि' में इस आक्रमण का उल्लेख प्रारम्भ में ही इस प्रकार दिया है—

> "ठारह सै तेरहौ वरष हरि यह करी ।
> जमन विगोयी देश विपति गाढ़ी परी ।
> तब मन चिन्ता बाढ़ा साधु पतन करे ।
> हरि हीं मनहुँ सिष्टि-संघार काल आयुध धरे ॥

> दोहा—भाजि भाजि कोउ छूटे तब मन उपज्यो सोच ।
> अहो नाथ तुम जन हते, भये कौन विधि पोच ॥
> बार बार सोचत यही गये प्रान बौराइ ।
> सन्त करे वध जमन नै यह दुख सह्यो न जाइ ॥
> सहर फरुखाबाद जहँ गये सुरधुनी पास ।
> चैत्र सुदी एकादसी तहाँ भयो इक रास ॥
> तीन पहर रजनी गई वे कवि कीयो गान ।

तहाँ एक कौतुक जाको करौं बखान ॥
आनन्द घन को ख्यात इक गायौ खुलि गये नैन।
सुनत महा बिहवल भयो मन नहि पायौ चैन ॥
पैसेइ हरि-संत-जन मारे जननि आइ ।
यह श्रवि देखि हियो भयो लीनो सोच दवाइ ॥"

यवनों का आक्रमण कवि के कथनानुसार दो बार हुआ—प्रथम सं०
१८१३ में और द्वितीय सं० १८१७ में। किन्तु घनानन्द की मृत्यु के विषय
कवि यह स्पष्ट कहता है कि वह किस आक्रमण मे मारे गये। कवि हित वृन्दा
वनदास जी ने कवि घनानन्द की मृत्यु के विषय में एक कवित्त स० १८१७ मे
लिखा था—

बिरह सों तायौ तन निबाह्यौ बन साँचौ पन,
धन्य आनंद घन मुख गाई सोई करी है।
एहो ब्रजराज कुँवर धन्य धन्य तुम्हहु कौ,
कहा नीकी प्रभु यह जग में बिस्तारी है।
गाढ़ो ब्रज उपासी जिन देह अन्त पूरी पारी,
रज की अभिलाष सों वहाँ ही देह धरी है।
बृन्दावन हित रूप तुमहूँ हरि उड़ाई धूरि,
ऐसै साँची निष्ठा जन ही की लखि परी है ॥

इस कवित्त के आधार पर यह तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि
उनकी मृत्यु ब्रज में ही हुई।

पहली जनश्रुति के आधार पर घनानन्द का समय मुहम्मदशाह रंगीले
समय में ठहरता है और मृत्यु प्रसिद्ध आक्रमणकारी नादिरशाह के भयंक
आक्रमण के फलस्वरूप हुई मानी जाती है। इस जनश्रुति के आधार पर घन
नन्द का रचना काल श्री वियोगीहरि जी ने सवत् १७७७ विक्रमी माना है
किन्तु इस जनश्रुति का कोई भी ऐसा प्रमाण वियोगीहरि जी ने नहीं दि
जिससे इस मान्यता की प्रामाणिकता सिद्ध की जा सके। केवल जनता

प्रचलित कथों के आधार पर घनानन्द के समय का ठीक होना सर्व सम्मति से नहीं माना गया।

लाला भगवानदीन जी की खोज के आधार पर घनानन्द जी का काल सवत् १७१५ से १७९६ तक माना जाता है। इन्होंने सुजान की चर्चा नहीं की। घनानन्द के काव्य की प्रेरणा सुजान इन्होंने नहीं मानी वरन् रासलीला को ही इसका आधार माना है। लाला भगवानदीन जी ने भी वियोगीहरि के समान ही अपनी खोजों का कोई भी आधार नहीं दिया। इसी कारण इनकी खोज भी विद्वानों द्वारा मान्य नहीं। श्री शंभुप्रसाद बहुगुना दीन जी की खोज का आधार न होने के कारण वैज्ञानिक नहीं मानते। उन्होंने अपनी 'घन-आनन्द' के पृष्ट तीन पर इस प्रकार आलोचना की है—"जन्म सवत् का आधार हो सकता है शिवसिंह सरोज रहा हो। जान पड़ता है शिवसिंह सरोज के विवेचन के आधार पर अर्थात् यह देखकर कि १७४६ में बने 'कालिदास हज़ारा' का जहाँ अधिक उपयोग कवियों की जीवनी तथा कविता का विवरण देते समय सेंगर ने किया है वहाँ 'आनन्द घन दिल्ली वाले' के बारे में नहीं लिखा है कि 'हज़ारा' में इनकी कविता है। इस अनुमान से संभवतः पं० रामचन्द्र शुक्ल तथा वियोगीहरि ने घनानन्द का जन्म सवत् १७४६ के आस पास माना है।"

राधाकृष्णदासजी ने घनानन्दजी को नागरीदासजी का मित्र सिद्ध किया है। पठानों का आक्रमण उन्होंने सम्वत् १८०४ (सन् १७४७) में मुहम्मदशाह के समय में लिखा है। सावंतसिंह (नागरीदास) को मुहम्मदशाह ने उस आक्रमण के समय दिल्ली बुलाया था। जयलाल कवि के पत्र का हवाला देते हुये राधाकृष्णदासजी घनानन्द के समय का अनुमान इस प्रकार लगाते हैं—"सावंतसिंह (नागरीदासजी) ने कहा हमें जाने दीजिये, और अपने पुत्र सरदारसिंह सहित दिल्ली गये। बादशाह ने लड़ाई में नहीं भेजा। सम्भवतः उसी समय आनन्दघन से मित्रता हुई होगी। सन् १७४८ (सं० १८०५) में मुहम्मदशाह मर गये। स० १८१२ में नागरीदास ने कुटुम्ब-यात्रा के निमित्त प्रस्थान किया। उस समय उनके साथ आनन्दघनजी भी थे किन्तु जयपुर से लौट आये।"

राधाकृष्णदास और जयलाल के बीच जो यह पत्र-व्यवहार हुआ यदि इसको प्रामाणिक मान लिया जाय तो शुक्लजी, वियोगीहरि जी और लाला भगवानदीन द्वारा दिये हुये समय में असत्य होने का आरोप सुगमता से किया जा सकता है। नादिरशाह के आक्रमण में मरने की कथायें निर्मूल सिद्ध हो जाती हैं। यदि नागरीदास और घनानन्द की मित्रता सिद्ध हो जाती है तो यह भी निश्चित है कि घनानन्दजी की मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण में नहीं हुई वरन् अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण में हुई जिसको इतिहासकारों ने संवत् १८१४ (सन् १७५७) माना है। किन्तु राधाकृष्णदासजी ने अपनी मान्यता का जो आधार दिया है वह जयलालजी का पत्र है और उनके पास एक कागज़ है जिसमें केवल नीचे लिखा है घनानन्द और नागरीदास का चित्र। किन्तु चित्र का वास्तविक रूप कहीं गिर गया है। जब तक वह चित्र उपलब्ध नहीं होता उस समय तक राधाकृष्णदास द्वारा प्रतिपादित मत की सत्यता को कोई प्रामाणिक रूप नहीं मिलता।

जयलालजी ने सम्भवतः इन्हीं आधारों पर 'नागर समुच्चय' के साथ छपे 'छप्पनभोग चन्द्रिका' में तीन स्थानों पर घनानन्द और नागरीदास की मित्रता का वर्णन किया है। उन छप्पयों को हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं। उनमें घनानन्द और नागरीदास के सम्बन्ध में तीन पंक्तियाँ आई हैं—'आनन्दघन हरिदास आदि सज्जन चन मुनि-गुनि', 'आनन्दघन हरिदास आदि सौं संत सभा मधि', 'आनन्दघन को सत करत तन मन कौं वारयौ।' उपरोक्त पंक्तियों में जयलालजी ने घनानन्द, नागरीदास और हरिदास को सम-सामयिक माना है

जयलालजी के उपरोक्त कथन का वर्णन श्री शम्भुप्रसादजी बहुगुना ने अपनी पुस्तक 'घनानन्द' में किया है किन्तु उन्होंने उसे प्रामाणिक नहीं माना। उनका कथन है, "किन्तु विचित्र उलझन तब सामने आती है जब नागरीदास की रचना में हरिदास का तो बार-बार नाम मिलता है किन्तु आनन्दघन का नाम कहीं नहीं मिलता। यदि प्रसिद्ध नागरीदास की ऐसी मित्रता आनन्दघन से होती, जिसके लिये वे तन-मन वार सकते हैं तो निश्चय ही उनकी रचना में आनन्दघन का अवश्य उल्लेख मिलता। उल्लेख न मिलना सन्देह उत्पन्न करता है और सूचित करता है कि आनन्दघन और प्रसिद्ध नागरीदास का कभी

कोई सम्बन्ध नहीं रहा। जिन हरिदास का उल्लेख नागरीदास की रचनाओं में है ये कौन हरिदास हैं कहना कठिन है। प्रसिद्ध स्वामी हरिदास वे तभी हो सकते हैं जब उन रचनाओं को जिनमें हरिदास का यश गाया है दूसरे नागरीदास जिनका जन्म सम्वत् १६०० विक्रमी के आस-पास हुआ है और जो स्वामी हरिदासजी की शिष्य परम्परा में हुये हैं, को मान लिया जाय। जयलाल ने यदि किसी आधार पर भ्रम खाया है और कोई लिखित प्रमाण उन्हें नागरी दास, घनानन्द तथा हरिदास के सत्संग का मिला है तो वे नागरीदास प्रसिद्ध नागरीदास रहे हों ऐसा कम सम्भव है।"

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने राधाकृष्णदास द्वारा दिये गये जयलाल कवि के पत्र को ही प्रामाणिक मानकर अपने मत का प्रतिपादन किया है। उन्होंने पत्र को सत्य मानकर लिखा है—'इससे भी पता चलता है कि घन-आनन्द जी और नागरीदासजी सम-सामयिक थे।' अपने मत की पुष्टि में मिश्र जी ने भारतेन्दु के मत को भी उद्धृत किया है—'कदाचित इसी से उतारे प्रति चित्र का उल्लेख भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के 'सुजान शतक' के आरम्भ में है।' मिश्रजी ने राधाकृष्णदास के कथन की पुष्टि में आगे कहा है—'नागरी दास नाम के चार महात्मा हुये हैं। राधाकृष्णदास ने चौथे नागरीदास के साथ जो सावतसिंह के नाम से प्रसिद्ध थे, आनन्दघनजी के सत्संग की चर्चा की है। इन नागरीदास का रचनाकाल सवत् १७८० से १८१६ तक माना है।" इस प्रकार मिश्रजी ने घनानन्द को चौथे नागरीदास के सम-सामयिक मानकर राधाकृष्णदास के मत को ही मान्य सिद्ध किया है।

मिश्रजी ने घनानन्द की मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण में नहीं मानी वरन् अहमदशाह अब्दाली या दुर्रानी के आक्रमण में ही मानी है। उन्होंने राधा-कृष्णदास और ज्ञानवती त्रिवेदी के आधार पर सिद्ध किया है कि मथुरा पर अहमदशाह दुर्रानी का ही आक्रमण हुआ नादिरशाह का आक्रमण नहीं हुआ। नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्टों के आधार पर मिश्रजी ने घनानन्द की मृत्यु का काल सन् १७६७ (सम्वत् १८१७) माना है। यह अब्दाली के दूसरे आक्रमण का समय था। पहला आक्रमण सम्वत् १८१३ में हुआ था।

नादिरशाह के आक्रमण में घनानन्द जी जीवित थे जैसा कि उनके ही द्वारा कहे गये एक पद से स्पष्ट हो जाता है—

गोप मास श्री कृष्ण पक्ष सुचि।
सम्वत्सर अठानवे अति रुचि॥

नादिरशाह का आक्रमण सम्वत् १७९६ में हुआ और घनानन्द १७९८ तक रचना करते रहे। ऊपर के कथन से यह तो स्पष्ट है कि उनकी मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण में नहीं हुई वरन् अहमदशाह दुर्रानी या अब्दाली के आक्रमण में ही हुई।

श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना रीवानरेश रघुराजसिंह के कथन के आधार पर घनानन्द की मृत्यु न तो नादिरशाह के आक्रमण में बताते हैं और न अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण में। उनका खयाल है कि जिस समय औरंगजेब अपने भाई दारा से युद्ध कर रहा था उस समय मथुरा निवासियों ने उसका अपमान किया हो जैसा कि रघुराजसिंह ने अपनी कविता में लिखा है। और उसी अपमान का बदला औरंगजेब ने अपने शासनकाल में मथुरा पर आक्रमण करके तथा वहाँ के मन्दिरों को नष्ट भ्रष्ट करके लिया हो। बहुगुनाजी ने मथुरा पर आक्रमण की घटना को औरंगजेब या मुहम्मदकुलीखाँ नामक सरदार के साथ हुये व्यवहार का फल मानकर उसी समय घनानन्द की मृत्यु मानी है—

'जो हो, घटना सन् १६६० के आस पास घट सकती है और इसी में सम्भवतः घनानन्द की मृत्यु हुई होगी।' बहुगुना जी ने रीवानरेश रघुराजसिंह द्वारा वर्णित कथा को केवल अनुमान के सहारे से ही औरंगजेब या उसके शासक मुहम्मदकुलीखाँ से जोड़कर घनानन्द की मृत्यु का समय सन् १६६० माना है। किन्तु इस प्रकार के अनुमानों को प्रामाणिक कैसे माना जा सकता है। घनानन्द के काल को निश्चित करते समय बहुगुनाजी ने नागरीप्रचारिणी सभा की सन् १९१७ १८-१९ की खोज में प्राप्त हुई घनानन्द की रचना 'प्रीतिपावस' की चर्चा की है। उन्होंने लिखा है कि यदि खोज रिपोर्ट में 'प्रीतिपावस' का रचनाकाल स० १६५८ ठीक है तो घनानन्द के काल का निश्चय

बहुत कुछ ठीक हो सकता है। आगे चलकर श्री शंभुप्रसाद जी बहुगुना 'प्रीत पावस' १६३० (सन् १५७३ ई०) से संवत् १७१७ (सन् १६६० ई०') तक माना जा सकता है।' लेकिन बहुगुनाजी ने भी यह काल किसी ठोस प्रमाण के आधार पर नहीं दिया इसलिये इसे भी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

काल निर्धारण—अहमदशाह अब्दाली (दुर्रानी) के आक्रमण में मारे जाने के कथन में अधिक प्रामाणिकता है। श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी इसी को माना है। उन्होंने इस विषय में जो प्रमाण दिये हैं वह अधिक वैज्ञानिक हैं। इसलिये नागरसमुच्चय में दिया हुआ कविवर जयलाल का निम्नलिखित दोहा अधिक प्रामाणिक है—

अठारह सै ऊपरै सवत तेरह जान।
चैत्र कृष्ण तिथि द्वादशी ब्रज तै कियो पयान॥

इससे स्पष्ट है कि नागरीदास एव घनानन्दजी स० १८१३ में ब्रज में मौजूद थे। इसके अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट (१६१२-१४ में चाचा हित-वृन्दावनदासजी की रचना 'हरि कलावेलि' के विवरण को प्रस्तुत किया है वह भी अधिक तर्क पूर्ण माना जा सकता है। 'हरि कलाबेलि' में दिया हुआ सवत् भी लगभग 'नागर समुच्चय' मे दिये हुये काल के समीप ही है। उसमें यवनों का आक्रमण स० १८१३ विक्रमी ही माना है। इतिहास भी इस विषय में एक मत है कि सवत् १८१३ में अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण हुआ और यह मथुरा तक बढ़ता गया। किन्तु नादिरशाह का आक्रमण दिल्ली तक ही हुआ था। इससे स्पष्ट है कि घनानन्द की मृत्यु अहमदशाह के आक्रमण में हुई नादिरशाह के आक्रमण में नहीं। किन्तु अहमदशाह नें दो बार आक्रमण किया था। प्रथम बार उसका आक्रमण स० १८१३ में हुआ और द्वितीय बार उसका आक्रमण स० १८१७ में हुआ। यह तो नहीं कहा जा सकता कि घनानन्द किस आक्रमण में मारे गये। किन्तु अधिकतर विद्वान इनकी मृत्यु पिछले आक्रमण में ही मानते हैं। इन आधारों पर घनानद जी के काल को अनुमानत. १८ वीं शती के उत्तरार्ध से लेकर १९ वीं शती के प्रथम चरण तक मान सकते हैं।

घन की चर्चा की है। "आनन्द-घन, ग्रन्थ आनन्द-घन-बहत्तरी-स्तवावली रचना काल १७०५, विवरण—यशोविजय के सम-सामयिक थे।"

उपर्युक्त विवरण के अनुसार सुजान प्रेमी घन-आनन्द और इसके अतिरिक्त जैन धर्मी आनन्द घन दो भिन्न कवि थे।

श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना ने भी अपनी पुस्तक 'घन-आनन्द' में जैनधर्मी आनन्द-घन और वृन्दावन निवासी कृष्ण भक्त आनन्द-घन की भिन्नता को स्वीकार किया है—"लाभ विजय-(सन् १६१५-१६७५ ई०) अथवा जैन धर्मी आनन्द-घन को राधाकृष्ण प्रेमी आनन्द-घन अथवा घनानन्द से मिला देना उचित नहीं। वे नितान्त भिन्न व्यक्ति हैं। विचार-धाराओं में सम्पर्क विनिमय से साम्य आ जाना एक मामूली सी बात है।"

श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र भी इन दोनों—जैनधर्मी आनन्द-घन और वृन्दावनवासी घनानन्द को अलग-अलग मानते हैं। अपनी पुस्तक 'घन आनन्द' में पृष्ठ ५५ पर वह इस तथ्य पर इस प्रकार विचार करते हैं—"जैन 'आनन्दघन' (महात्मालाभानंद जी) का समय भी १७ वीं शती का उत्तरार्ध है। उनकी चौबीसी की कई पंक्तियाँ सर्वश्री समय सुन्दर (सं० १६७२), जिन राज सूरि (सं० १६७८), सकलचन्द्र (सं० १६४०) और प्रीतिविमल (सं० १६७१) जिन-स्तवनादि ग्रन्थों में आये चरणों से मिलती है ... . इससे १७०० के आस पास यह अवश्य थे। इधर वृन्दावनवासी आनन्दघनजी को 'छप्पन भोग चन्द्रिका' में कृष्णगढ़ के राज्य कवि जयलाल ने नागरीदास जी का सम-सामयिक समझा है और उनके सत्संग की चर्चा की है।"

पीछे राधाकृष्णदास जी के मत को प्रस्तुत करते हुये हम 'नागर समुच्चय' के कुछ उदाहरण दे चुके हैं। और उनमें नागरीदास और घन-आनन्द को सम-सामयिक ही माना है। नागरीदासजी का कविता काल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सवत् १७८० से सवत् १८१६ तक माना है (हिन्दी साहित्य का इतिहास) इससे स्पष्ट है कि जैनधर्मी आनन्द-घन और वृन्दावन वासी आनन्द घन के समय में भी १०० वर्ष का अन्तर है।

इन दोनों आनन्द-घन के अतिरिक्त एक तीसरे आनन्द-घन नन्दगाँव के

निवासी थे। वह कोई महान् कवि नहीं थे। उन्होंने थोड़े से पद लिखे हैं। श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इनका समय १६ वीं शती का उत्तरार्ध माना है। और जैनमर्मी आनन्दघन का सत्रहवीं तथा वृन्दावन वासी आनन्दघन का समय १८ वीं शती माना है। मिश्रजीका विवेचन नितान्त वैज्ञानिक है और इसलिये मान्य भी। आनन्द-घन नाम के तीन महात्माओं की भिन्नता स्पष्ट है इसलिये जो विद्वान् इन तीनों में अभिन्नता ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं वह एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण नहीं रखते।

सुजान और उसके विषय में विभिन्न धारणायें :—

सुजान के नाम को लेकर भी विद्वानों में अनेक भ्रम फैले हैं। कुछ विद्वान सुजान को घनानन्द की प्रेयसी मानते हैं जैसा कि जनश्रुति के आधार पर वियोगी हरिजी ने भी माना है—

> घन-आनन्द सुजान ज्ञान कौ रूप दिवानौं।
> वाही के रँग रँग्यौ प्रेम फदनि अरुझान्यौ॥
> बादसाहको हुकम पाय नहिं गायो इक पद।
> पै सुजान के कहे चाव सौं गायो धुरपद॥
> × × ×
> × × ×
> प्यारे मीन सुजान सौं नेह लगायौ।
> लगन बान तें बिंध्यौ विरह-रस-मत्र जगायौ

वियोगी हरि ने तो सुजान को ही घनानन्द के काव्य की प्रेरणा के रूप में माना है। सुजान के नाम को कवि ने कृष्ण भगवान को देकर अपने लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम बना दिया है। आप स्वयं समझ सकते हैं कि जिस प्रेमिका को कवि ने अपनी रचना में इतना महत्व दिया वह किसी साधारण घटना के कारण नहीं वरन् प्रेम की उस चरमावस्था का फल है जो कवि के हृदय में अत्यन्त ही गहरी पैठ कर चुकी थी। घनानन्द के 'सुजान चरित्र' में जितने कवित्त और सवैये हैं उनमें प्रेम की गूढ़ व्यंजना इस बात का प्रमाण है

कि कवि ने अपने जीवन में जो प्रेम किया था उसमें उसे सफलता नहीं मिली इसी कारण उसकी अन्तरात्मा की पुकार उस वियोग से व्यथित होकर उच्च-कोटि की भाव-व्यंजना करने में समर्थ हुई।

यह अभी तक की खोजों से स्पष्ट नहीं हुआ कि घनानन्द को सुजान भी प्रेम करती थी या नहीं। इसके अतिरिक्त यह भी पूर्णरूप से ज्ञात नहीं हुआ कि घनानन्द सुजान को स्वच्छन्द रूप से प्रेम करते थे अथवा लोक भय से गुप्त-रूप से ही प्यार करते थे। अब अवश्य कुछ इस प्रकार की कवितायें मिली हैं जिनके आधार पर इस तथ्य पर कुछ विचार किया जा सकता है और किसी प्रकार इस भ्रम को निवारण करने का प्रयत्न किया जा सकता है।

सुजान की कविता—श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को आजमगढ़ राज्य में प्राचीन कवियों का एक संग्रह मिलता है। उस संग्रह में उनको ग्यारह कवित्त मिले हैं जिनका शीर्षक है 'सुजान के कवित्त'। उन कवित्तों को यदि प्रसिद्ध नर्तकी 'सुजान' के मान लिये जायें तो यह विवाद सरल हो जाता है कि सुजान घनानन्द को प्रेम करती थी या नहीं। प्रथम कवित्त की परीक्षा कीजिये

'मन मेरो तुमै यह लागि चुक्यो अब कोउ कछू किन कैचो करो।
यह मूरति मोहिनी रंग भरी मो दया करि चित्त दिखैबो करो॥
यह बीनती मेरी सुजान कहै चित दै इतनी सुनि लैबो करो।
कबहू जिय आवै तबै सुनि प्यारे दया करि कै इत ऐबो करो॥

करते रहे। इसके अतिरिक्त उस काल में एक हिन्दू का मुस्लिम युवती को वरण करना भी आसान नहीं था। इसीलिए दोनों का प्रेम गुप्त रूप से ही चलता रहा होगा। किन्तु अन्य कर्मचारियों के भड़काने के कारण सुजान ने घनानद के प्रेम को ठुकरा दिया हो और इसी कारण वह वृन्दावन आकर अपने उसी लौकिक प्रेम की झाँकी कृष्ण और राधा के आध्यात्मिक प्रेम में देखने लगे हों। जिन ग्यारह कवित्तों में से एक कवित्त ऊपर उद्धृत किया है उसमें प्रेम की प्रखर व्यञ्जना है। अन्य कवित्त भी इसी प्रकार प्रेम की तीव्रता को प्रदर्शित करने में समर्थ हैं।

> सीख सुनै नहिं मोमन नैंक मु तो तन देखि कैं ऐसौ लुभानौ।
> लाज तजी कुलकान तजी सब लोक नवाई में नाँव धरानौ॥
> सुजान कहै सुनि मोहन बालम मोहनी सी पढि डारी है मानौ।
> नेह लगाय कैं पीठ न दीजिए हाय इती विनती उर आनौ॥

इस कवित्त में स्पष्ट है कि सुजान का हृदय भी प्रियतम पर उतना ही मोहित था कि उसने लज्जा को त्याग दिया, कुल की मर्यादा को छोड़ दिया और चारो ओर उसके विषय में अनेक प्रकार की बातें फैल रही थीं। किन्तु उसे उन बातों की तनिक भी चिन्ता नहीं। चिन्ता तो केवल उसे इसी बात की थी कि उसका प्रियतम कहीं उसको प्रेम करके फिर पीठ न दिखा जाय।

वियोग की तीव्रता भी सुजान की उक्ति में अत्यन्त उच्चकोटि की है—इससे भी सिद्ध होता है कि उसको अपने किसी प्रेमी के वियोग में तड़पना पड़ा होगा। घनानन्द की रचना में भी सुजान के वियोग के कारण हुई व्यंजना अत्यन्त ही तीव्र है।

श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना सुजान नाम को राधा और कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ मानते हैं। उनका कथन है—"किन्तु सूक्ष्म अध्ययन साफ बतलाता है कि सुजान शब्द का प्रयोग राधा और कृष्ण दोनों के लिए कवि ने किया है और इनके अभिन्न प्रेम रूप को ही 'प्रेम की महोदधि' 'आनन्द को अम्बुद'

आदि शब्दों से व्यक्त किया है।" आगे चलकर फिर कहते हैं—"यदि सुजान कोई नारी थी भी तो सम्भवतः रासलीला की नारी (राधा) की स्मृति मात्र है जो परमात्मा का प्रेम पूर्ण रहस्यात्मक प्रतीक बन गई है। नख-शिख नृत्य, संगीत का वर्णन सुजान के विषय में है वह रासलीला की राधा का प्रभाव और उसकी मानसिक कल्पनाओं में उत्पन्न चेतना का वर्णन है।"

किसी भी भावना के पल्लवित होने का कोई आधार अवश्य होता है। जब तक सुजान के विषय में पूर्व आधार नहीं होता तब तक घनानन्द न तो उसको राधा के रूप में ही स्वीकार कर सकते थे और न कृष्ण के रूप में ही। राधा और कृष्ण को भी सुजान नाम किसी कारण वश ही दे सकते थे। सुजान नाम को अपने काव्य में स्थान २ पर व्यवहृत करने से यह स्पष्ट है कि घनानन्द ने किसी प्रेमिका के नाम को ही कृष्ण और राधा के रूप में परिवर्तित करके अपने प्रेम को अमरत्व देने का प्रयत्न किया है। बिना किसी गहरी चोट के इतनी उच्च कोटि की अनुभूति होना असम्भव है।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किसी अन्य कवि के उद्धरण अपनी पुस्तक के आरम्भ में दिये हैं। उनमें घनानन्द को सुजान के प्रेम करने के कारण बहुत बुरा भला कहा है। इससे भी स्पष्ट है कि सुजान के प्रेम के विषय में कवि को बहुत कुछ सुनना पड़ा था। वह कवि घनानन्द की अत्यन्त ही कटु आलोचना करता है। कभी वह उनको वेश्या का दास बतलाता है। कभी वह उनकी कविता को दोषपूर्ण कहता है तो कभी राम के नाम को छोड़ने वाला और वेश्या का भक्त कहता है। उसे यहीं तक चैन नहीं मिला वह कवि को गुन्डा तक कहने से भी नहीं चूकता। घनानन्द से उपर्युक्त कवि इतना चिढे हैं कि उन्होंने सीधी गालियाँ हीं उनको दी हैं—

'करै गुरनिन्दा यह तुरकिनी को बन्दा महा
निरघनी गदा खात पानीर औ नान है
बैन कों चुरावै ताको मजनून लावै कूर
कविता बनावै गावै रिझौली की तान है।
सुरा-घटन्तोर्या देह माँस ही सौं पोखी, विप्र

गैयन कौ दोषी रूप धरे अभिमान है ॥
पाप को भवन करै अगम-गमन ऐसी
मुड़िया अनन्द घन जानत जहान है।
डफर बजावै डोम ढाढी सम गावै काहू
तुरकै रिझावै तब पावै झूठी नाम है।
हुरकिनी सुजान तुरकिनी को सेवक है
तजि राम नाम वाकी पूजै काम धाम है ॥

× × × ×

लोटा ज्यौं लगाम जैसे चलनी को नाम है।
पीवै मग मुन्डा सग रावै ० ० गुन्डा ० ०
ममुन्डा अनन्दघन मुण्डा सलाम है ॥

अन्तिम कवित्त में कवि ने घनानन्द की इच्छा को इस प्रकार प्रकट किया है—

'मुदित अनन्द घन कहत विधाता सौं यौं
खाल की आखन दीजो गारी मोहि गावैगी।
मो मुख कौ पीकदान करियौ, सुजान प्यारी
हुरकिनी तुरकिनी थूकि अति सुख पावैगी।
धोती की इजार दुपटी को पिसवाज और
देहुगे रूमाल ताकौ पूछना बनावैगी ॥
पागीया पायंदाज कीजियौ गरीब निवाज
मरि गये मोमन पलिग पर आवैगी।'

उपर्युक्त कथन से आप सोच सकते हैं कि सुजान की कथा समाज में कितना उग्ररूप धारण कर चुकी थी। घनानन्द को इस प्रेम के लिए न जाने और कितनी कटु आलोचना न सुननी पड़ी हो। लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि सुजान एक वेश्या थी और उस पर घनानन्द तन मन धन न्योछावर कर चुके थे। सामाजिक बन्धनों को तोड़ने में असमर्थ होने के कारण कवि ने अपने

भौतिक प्रेम को आध्यात्मिक प्रेम के रूप में परिवर्तित कर दिया। घनानन्द के काव्य से भी स्पष्ट है कि उनका प्रेम अत्यन्त गूढ़ है। किसी कारण उस प्रेम में व्यवधान पड़ गया जिसकी कसक उनके काव्य की अनेकों पंक्तियों में स्पष्ट रूप से परलक्षित होती है। कवि अनेकों स्थलों पर अपने प्रेम के अटूट संबंध के विषय में कहता है—

'मन भावन मीत सुजान सों नातो लग्यो तनको न तऊ टुटि है'

पहले प्रेम से पगी बातें की। लेकिन अब विधाता ने वियोग की दीवार को खड़ा करके उन दोनों प्रेमियों को अलग कर दिया। लेकिन मन तो प्रेम में इतना रंजित है कि वह कभी भी सुजान को नहीं भूल सकता।

सुजान कवि के काव्य को प्रेरणा ही है। सम्पूर्ण कविताओं में उसी के प्रेम को कवि ने बड़े ही मार्मिक ढंग से व्यंजित करके अपने हृदय की समस्त गहराइयों को पाठकों के सम्मुख रखने का सफल प्रयत्न किया है। कवि की आत्मा सुजान के प्रेम में निमग्न होकर उसको ईश्वरीय रूप देने में समर्थ हुई है।

घनानंद की काव्य कृतियाँ :—

घनानन्द की कृतियों की खोज होने पर उनके अनेक ग्रन्थ और कृतियाँ अनुसन्धानकर्त्ताओं को उपलब्ध हुए हैं। लेकिन उनके विषय में भी विद्वानों के मतों में विभिन्नता ही है। कुछ विद्वान उनके बहुत से ग्रन्थों को उनके लिखे नहीं बतलाते। उनका कथन है कि बाद में अन्य कविता प्रेमियों ने अन्य कवियों की रचनाओं को भी उन्हीं के नाम से जोड़ दिया। ऐसा करने का मुख्य कारण यह था कि घनानन्द की कविता कृष्ण विषयक थी और उन्होंने अपनी कविताओं में अनेक सम्प्रदायों के मूल सिद्धान्तों का निर्वाह उसी प्रकार किया है जिस प्रकार सूरदास आदि अष्टछाप के कवियों ने बल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का प्रतिपादन अपने पदों में किया था। यही कारण था कि घनानन्द के काव्य को सभी सम्प्रदायों के भक्तों ने अपना लिया और इस प्रकार उनकी ख्याति में चार चाँद लग गये। गोकुल की महिमा का गुण गान यमुना के

सौन्दर्य का वर्णन, ब्रजविलास, वृन्दावन की शोभा वर्णन, वृषभानपुर का महत्व आदि वर्णन सब इस बात का प्रमाण है कि घनानन्द ने कृष्ण की लीलाओं अथवा अन्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर ही अपने काव्य का सृजन किया।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने सं० २००० तक की खोज में निम्न-लिखित ग्रन्थों के हस्तलेख उपलब्ध किये थे।

१—घनानन्द कवित्त—(००–७६)
२—आनन्द घन के कवित्त—(६–१२५, २६-१२ ए)
३—कवित्त—(२६-११६ डी)
४—स्फुट कवित्त—(३२-७ सी)
५—आनन्द घन जू के कवित्त—(४१-१० ख)
६—सुजान हित—(१२-४ बी)
७—सुजान हित-प्रबन्ध—(२६-११६ बी)
८—कृपाकन्द निबन्ध—(२-६६)
९—वियोग-वेलि—(१७-८ बी, २६-११६ बी)
१०—इश्कलता—(१२-४६, ३२-७ ए)
११—जमुना जस—(४१-१० क)
१२—आनन्द घन जू की पदावली (२६-११ बी, दि० ३१-६)
१३—प्रीति पावस—(१७-८ ए, २६-११६ ए)
१४—सुजान विनोद—(२३-१४)
१५—कवित्त संग्रह—(३२-७ बी)
६१—रस केलि वल्ली—(००-७६)
१७—वृन्दावन सत—(३२-७ डी)

उपर्युक्त ग्रंथों की सूची में कुछ ग्रंथ घनानन्द कवि के नहीं हैं लेकिन फिर भी उनके नाम से भ्रमवश प्रचलित होगये है। जैसे, 'वृन्दावन सत' की रचना भगवत मुदित नाम के कवि ने की है जो श्री हरिदासजी के शिष्य माधवमुदित के पुत्र थे। इसी प्रकार और भी कुछ रचनाएँ हैं जो इनके नाम से भ्रम वश ही प्रसिद्ध हो गई हैं लेकिन उनके रचियता अन्य ही कवि हैं।

श्री शम्भुप्रसाद जी बहुगुना ने अपनी पुस्तक 'घन-आनन्द' में घनानन्द कवि द्वारा लिखित निम्नलिखित पुस्तकें मानी हैं—

(१) सुजान सागर, घनानन्द कवित्त, रस केलि वल्ली, सुजान हित।
(२) श्री कृपा कद (अथवा काण्ड) निबन्ध
(३) इश्कलता
(४) सुजान-राग-माला
(५) प्रीति-पावस।
(६) वियोग बेली।
(७) नेहसागर।
(८) विरह लीला (वियोग बेली)
(९) प्रेमपत्रिका।
(१०) बानी।
(११) छतरपुर का भारी ग्रन्थ जिसका उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने किया है किन्तु दरबार लायब्रेरी उसका भेद नहीं देती। साधारण रीति से जिसका अभाव उक्त पुस्तकालय में (वहाँ के लायब्रेरियन द्वारा) बतलाया जाता है।
(१२) गेय पद।

ऊपर घनानद की कृतियों के जो नाम दिये हैं वह कवि द्वारा सम्भवत: नहीं दिये गये वरन् उनके पश्चात् उनकी कविता के प्रेमियों ने उनको संग्रह करके इस प्रकार के नाम दे दिए। यही कारण है कि इन रचनाओं में बहुत से कवित्त और सवैये इस प्रकार के हैं जो प्रत्येक संग्रह में मिलते हैं।

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक 'घन आनन्द' में घनानद की ४० कृतियों को संग्रहीत किया है। उनका आधार घनानंद की कृतियों का छतरपुर वाला संग्रह और वृन्दावन वाला संग्रह दोनों ही हैं। इस प्रकार जो घनानन्द की पुस्तकें अब तक ज्ञात हुई हैं वह निम्नलिखित हैं—

१—सुजान हित
२—कृपाकद निबन्ध
३—वियोग बेलि
४—इश्कलता
५—कृष्ण कौमुदी
६—धाम चमत्कार
७—प्रिया प्रसाद
८—वृन्दावन मुद्रा

घनानंद का युग

कलाकार का युग पर तथा युग का कलाकार पर प्रभाव—

किसी कवि के काव्य तत्वों का विवेचन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उस कवि के युग विशेष की सम्पूर्ण परिस्थितियों का सिंहावलोकन किया जाय। क्योंकि कवि अपने युग की मान्यताओं और विश्वासों के ऊपर ही अपनी कला की नींव रखता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रतिभावान कलाकार युग की परिस्थितियों से प्रभावित भी होता है और साथ ही वह कभी २ अपने व्यक्तित्व के द्वारा उस युग विशेष को नवीन मार्ग भी प्रदर्शित करता है और इसी प्रकार एक युग की विचारधारा में परिवर्तन आ जाता है। हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल में लोक रुचि वीर गीतों की ही ओर थी और उनका कारण उस समय की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ ही थीं। अधिकतर कवि वीर प्रशस्ति लिखकर ही अपने कवि कर्म की सफलता मानते थे। किन्तु धीरे २ परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ २ कवियों की कला में भी परिवर्तन आया और 'विजय घोर निर्घोष' लिखने वाले कवियों का स्थान कबीर जायसी सूर, तुलसी आदि महाकवियों ने ले लिया। वीरता का स्थान भक्ति ने लिया। जहाँ वीरगाथाकाल के कवि केवल राजाओं की तलवार की प्रशंसा में लगे रहते थे वहाँ इन भक्त कवियों ने जनता को एक सम्बल देकर, ज्ञान, प्रेम, लोकमंगल और लोकरंजक गुणों से युक्त ईश्वर के रूप को सम्मुख रखा। जिस समय इन भक्त कवियों का उदय हुआ उस समय भारतीय जनता घोर निराशा के अन्धकार में निमग्न थी। उस समय इन भक्त कवियों की कविता जन-समाज की आत्माभिव्यक्ति के रूप में ही हुई। उनके मुरझाये हृदयों को प्रफुल्लित कर दिया। इस प्रकार युग की परिस्थितियों ने ही इन कवियों को उत्पन्न किया।

महाकवि घनानन्द का प्रादुर्भाव भी इसी प्रकार अपने युग की परिस्थितियों के अनुकूल ही हुआ। किन्तु वह स्वतंत्र चेता भी थे इसलिये उन्होंने उस युग के दोषों के सम्मुख सीना अड़ाकर उनका सामना किया और काव्यधारा को नवीन मार्ग की ओर उन्मुख करके अपना स्थान स्वतंत्र कवियों में रखा। इसलिये घनानन्द के काव्य पर विचार करने के पूर्व यह आवश्यक है कि हम उनके युग की उन परिस्थितियों को देखें जिन्होंने उस काल के कवियो को प्रभावित किया और घनानन्द पर भी कुछ प्रभाव पड़ा।

राजनीतिक परिस्थितियाँ—घनानन्द का रचना काल १८ वीं शताब्दी है। उस समय मुगल साम्राज्य अपना पूर्ण विकास करके अवनति की ओर जाने लगा था। इससे पूर्व जहाँगीर और उसका पुत्र शाहजहाँ विलासिता और शान-शौकत के साथ उत्तर भारत ही नहीं वरन् दक्षिण भारत के बीजापुर और गोलकुण्डा राज्यों तक अपनी धाक फैला चुके थे। हिन्दू राजा उनकी वीरता का लोहा मान चुके थे। राणा प्रताप जैसे वीरो का भारत वसुन्धरा पर अभाव हो चुका था। एक मानसिंह नहीं अब अनेकों मानसिंह दासता को ही गौरव समझने लगे थे। भामाशाह जैसे पूँजीपति भी अब विलीन हो चुके थे। मुगल दरबार की धाक सात समुद्र पार तक व्याप्त हो चुकी थी। संसार में मुगल बादशाह की समानता करने वाला अन्य कोई भी बादशाह नहीं था। मुगल साम्राज्यकी सीमायें उत्तर में कन्धारसे आगे तक दक्षिण में बीजापुर गोलकुंडा तक, पश्चिम में बिलोचिस्तान और सिन्ध तक तथा पूर्व में बंगाल तक फैली हुई थी। शाही खजाना अपार धन से भरा हुआ था। शासक लोग मदान्ध हो रहे थे। विलासिता का रंग भी अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। जहाँगीर और शाहजहाँ दोनों ने मुक्त हस्त से प्रजा की सम्पत्ति को अपनी शान और विलासिता के ऊपर खर्च किया। उस विलासिता के कारण बादशाह राजनीति से दूर पड़ गया और उसके सूबेदार उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे। शाहजहाँ के जीवन काल में ही उसके पुत्रों की राज्य लिप्सा ने पारस्परिक युद्ध प्रारम्भ करा दिया और उनका निरंकुश और कठोर हृदय पुत्र औरंगजेब अपने भाइयों को स्वर्गधाम पहुचा कर तथा अपने पिता को बन्दी बनाकर सिंहासनासीन हो गया।

औरंगज़ेब कट्टर मुसलमान था। उसका राज्यकाल स० १७१५ से १७६४ तक रहा। उसने हिन्दुओं को अपना व्यक्तिगत शत्रु समझा और साथ ही इस्लाम धर्म का भी। इसलिये उसने अपने पूर्वज अकबर की नीति को ठुकरा कर हिन्दुओं पर अत्याचार प्रारम्भ कर दिये। उनके धार्मिक स्थानों को नष्ट-भ्रष्ट करना प्रारम्भ किया। जो जनता अकबर की कूटनीति के कारण शान्त होकर दिल्ली के बादशाह को ही अपना बादशाह मानने लगी थी और यह भ्रम जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन-काल तक उस पर छाया रहा था औरंगजेब के अत्याचारों से पुकार उठी। किन्तु शासक की कठोरता और शक्ति का मुकाबिला करने के लिये वह काफी समय तक अपनी शक्ति का संचय करने में लगी रही। अन्त में यह समय भी आया जब औरंगज़ेब के विरुद्ध उपद्रव होने लगे। उत्तरी भारत में अनेकों स्थान पर विद्रोह की आग भड़की किन्तु औरंगज़ेब ने उसे और अधिक कठोरता के साथ दबाने का प्रयत्न किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि औरंगज़ेब स्वयं एक वीर और साधक बादशाह था इसलिये उपद्रवों को दबाने में वह सफलता ही पाता रहा। किन्तु फिर भी उसके अत्याचारों के विरोध में देश में कहीं न कहीं उपद्रव और विद्रोह अवश्य होते। औरंगजेब भी अधिक क्रोध के साथ निरीह जनता को तलवारों के घाट उतारता। उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को तुड़वाया, मथुरा के प्रसिद्ध मन्दिर के स्थान पर मसज़िद बनवाई; इसके अतिरिक्त और भी ऐसे कार्य किये जिनसे हिन्दुओं में उसके प्रति भयङ्कर घृणा उत्पन्न हुई।

औरंगज़ेब के अत्याचारों के विरुद्ध हिन्दुओं में अपने धर्म और स्वाभिमान की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया। राजपूताने के अनेकों राजा जो मुगल सिंहासन के प्रति अपनी भक्ति रखते थे, और उनके पूर्वज अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के काल से अपनी तलवार लेकर मुगल साम्राज्य की रक्षा में तत्पर रहते थे औरंगज़ेब के साम्राज्य की जड़ खोदने में लग गये।

पंजाब के सिक्खों ने एक संगठित सैन्य शक्ति बना कर अत्याचारों के विरोध में लड़ना प्रारम्भ कर दिया। उनके गुरू तेगबहादुर और गोविन्दसिंह आजीवन मुग़लों के विरुद्ध लड़ते रहे। सिक्खों की संगठित शक्ति को देखकर औरंगज़ेब की असहिष्णुता और भी अधिक बढ़ी उसने कठोरता के साथ

सिखों का दमन प्रारम्भ किया। फल यह निकला कि सिखों में विरोध भी तीव्र हुआ।

दक्षिण में शिवाजी ने मराठों की सेना बनाकर गुरिल्ला युद्ध प्रारम्भ कर दिया। औरंगजेब को स्वयं दक्षिण में रहना पड़ा किन्तु वह जीवन भर मराठों को न दबा सका। उधर बुंदेलखण्ड में चम्पतराय और उसके पुत्र छत्रसाल ने भी दिल्ली के सिंहासन के विरुद्ध अपनी तलवार को उठाया।

इस प्रकार सम्पूर्ण भारत में एक जातीय स्वाभिमान की लहर व्याप्त हुई। औरंगज़ेब जीवन भर इन विद्रोहों को दबाने का प्रयत्न करता रहा। वह एक ओर दबाने का प्रयत्न करता था तो दूसरी ओर से उसको चुनौती दी जाती। परिणाम स्वरूप साम्राज्य की जड़ें खोखली होने लगीं जिनको बादशाह ठीक करने में असफल होने लगा और अन्त में वह इन्हीं कठिनाइयों में ही इस संसार से चल दिया।

मुगलों ने अपने विशाल साम्राज्य को सूबेदारों और सामन्तों के ऊपर छोड़ रखा था। औरंगज़ेब के कठोर व्यक्तित्व के कारण वे लोग दबे रहे। किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उनमें स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता का प्राधान्य हुआ और धीरे २ उन्होंने अपना प्रभुत्व बढ़ा लिया। जागीरदारी की इस प्रथा के कारण जनता शोषण से पिस रही थी। किसानों की दशा अत्यन्त ही बिगड़ चुकी थी और वे खेती छोड़ कर मजदूरी करने को अच्छा समझते थे। जब ग़रीबी के कारण किसान लगान नहीं देते थे तो उनको ग़ुलाम के रूप में बेच दिया जाता था।

औरंगज़ेब के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में प्रबन्ध की क्षमता न होने के कारण वह अमीर और उमरावों की उँगली के इशारे पर नाचने लगे, उनमें अकर्मण्यता ने घर कर लिया था। विलासिता का दौर भी दिन प्रतिदिन अपनी वृद्धि पर था। महलों में अनेकों बेगमों और उनके प्रेमियों को लेकर विद्वेष की आग भड़कती रहती थी। बादशाह स्वयं विलास में लीन रह कर इन बातों की ओर ध्यान नहीं देते थे अमीर लोगों का सिक्का इतना जम रहा था कि बादशाह का अस्तित्व उनकी कृपा पर ही निर्भर था। इन कमजोरियों के कारण साम्राज्य में उपद्रवों का बढ़ना प्रारम्भ हुआ। भरतपुर के जाट,

औरंगज़ेब कट्टर मुसलमान था। उसका राज्यकाल स० १७१५ से १७६४ तक रहा। उसने हिन्दुओं को अपना व्यक्तिगत शत्रु समझा और साथ ही इस्लाम धर्म का भी। इसलिये उसने अपने पूर्वज अकबर की नीति को ठुकरा कर हिन्दुओं पर अत्याचार प्रारम्भ कर दिये। उनके धार्मिक स्थानों को नष्ट-भ्रष्ट करना प्रारम्भ किया। जो जनता अकबर की कूटनीति के कारण शान्त होकर दिल्ली के बादशाह को ही अपना बादशाह मानने लगी थी और वह भ्रम जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन-काल तक उस पर छाया रहा था औरंगजेब के अत्याचारों से पुत्कार उठी। किन्तु शासक की कठोरता और शक्ति का मुकाबिला करने के लिये वह काफी समय तक अपनी शक्ति का सञ्चय करने में लगी रही। अन्त में वह समय भी आया जब औरंगज़ेब के विरुद्ध उपद्रव होने लगे। उत्तरी भारत में अनेकों स्थान पर विद्रोह की आग भड़की किन्तु औरंगज़ेब ने उसे और अधिक कठोरता के साथ दबाने का प्रयत्न किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि औरंगज़ेब स्वयं एक वीर और सशक्त बादशाह था इसलिये उपद्रवों को दबाने में वह सफलता ही पाता रहा। किन्तु फिर भी उसके अत्याचारों के विरोध में देश में कहीं न कहीं उपद्रव और विद्रोह अवश्य होते। औरंगजेब भी अधिक क्रोध के साथ निरीह जनता को तलवारों के घाट उतारता। उसने हिन्दुओं के मन्दिरों को तुड़वाया, मथुरा के प्रसिद्ध मन्दिर के स्थान पर मसज़िद बनवाई, इसके अतिरिक्त और भी ऐसे कार्य किये जिनसे हिन्दुओं में उसके प्रति भयङ्कर घृणा उत्पन्न हुई।

औरंगज़ेब के अत्याचारों के विरुद्ध हिन्दुओं में अपने धर्म और स्वाभिमान की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया। राजपूताने के अनेकों राजा जो मुग़ल सिंहासन के प्रति अपनी भक्ति रखते थे, और उनके पूर्वज अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के काल में अपनी तलवार लेकर मुग़ल साम्राज्य की रक्षा में तत्पर रहते थे औरंगज़ेब के साम्राज्य की जड़ खोदने में लग गये।

पंजाब के सिखों ने एक संगठित सैन्य शक्ति बना कर अत्याचारों के विरोध में लड़ना प्रारम्भ कर दिया। उनके गुरू तेगबहादुर और गोविन्दसिंह आजीवन मुग़लों के विरुद्ध लड़ते रहे। सिखों की संगठित शक्ति को देखकर औरंगज़ेब की असहिष्णुता और भी अधिक बढ़ी उसने कठोरता के साथ

सिखों का दमन प्रारम्भ किया। फल यह निकला कि सिखों में विरोध भी तीव्र हुआ।

दक्षिण में शिवाजी ने मराठों की सेना बनाकर गुरिल्ला युद्ध आरम्भ कर दिया। औरंगजेब को स्वयं दक्षिण में रहना पड़ा किन्तु वह जीवन भर मराठों को न दबा सका। उधर बुंदेलखण्ड में चम्पतराय और उसके पुत्र छत्रसाल ने भी दिल्ली के सिंहासन के विरुद्ध अपनी तलवार को उठाया।

इस प्रकार सम्पूर्ण भारत में एक जातीय स्वाभिमान की लहर व्याप्त हुई। औरंगजेब जीवन भर इन विद्रोहों को दबाने का प्रयत्न करता रहा। वह एक ओर दबाने का प्रयत्न करता था तो दूसरी ओर से उसको चुनौती दी जाती। परिणाम स्वरूप साम्राज्य की जड़ें खोखली होने लगीं जिनको बादशाह ठीक करने में असफल होने लगा और अन्त में वह इन्हीं कठिनाइयों में ही इस संसार से चल दिया।

मुगलों ने अपने विशाल साम्राज्य को सूबेदारों और सामन्तों के ऊपर छोड़ रखा था। औरंगजेब के कठोर व्यक्तित्व के कारण वे लोग दबे रहे। किन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त उनमें स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता का प्राधान्य हुआ और धीरे २ उन्होंने अपना प्रभुत्व बढ़ा लिया। जागीरदारी की इस प्रथा के कारण जनता शोषण से पिस रही थी। किसानों की दशा अत्यन्त ही बिगड़ चुकी थी और वे खेती छोड़ कर मजदूरी करने को अच्छा समझते थे। जब ग़रीबी के कारण किसान लगान नहीं देते थे तो उनको ग़ुलाम के रूप में बेच दिया जाता था।

औरंगजेब के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों में प्रबन्ध की क्षमता न होने के कारण वह अमीर और उमरावों की उँगली के इशारे पर नाचने लगे; उनमें अकर्मण्यता ने घर कर लिया था। विलासिता का दौर भी दिन प्रतिदिन अपनी वृद्धि पर था। महलों में अनेकों बेगमों और उनके प्रेमियों को लेकर विद्वेष की आग भड़कती रहती थी। बादशाह स्वयं विलास में लीन रह कर इन बातों की ओर ध्यान नहीं देते थे अमीर लोगों का सिक्का इतना जम रहा था कि बादशाह का अस्तित्व उनकी कृपा पर ही निर्भर था। इन कमजोरियों के कारण साम्राज्य में उपद्रवों का बढ़ना प्रारम्भ हुआ। भरतपुर के जाट,

पजाब के सिख और दक्षिण के मराठों ने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित करने मे कोई कठिनाई नहीं पड़ी। दिल्ली का बादशाह नाम मात्र का बादशाह था जिस साम्राज्य की एकता के लिये औरगजेब जीवन भर लड़ता रहा था वह उसके निर्बल पुत्रों से न सँभल सका। सूबेदारों ने अपने २ स्वतन्त्र राज्य बना लिये। पुर्तगाल और हालैण्ड की व्यापारी कम्पनियाँ भी अपने पैर फैलाने लगी थीं। अंग्रेज़ और फ्रान्सीसी भी अब व्यापारी से राजा बनने का प्रयत्न करने लगे थे।

मुहम्मदशाह रगीले के समय में तो विलासिता का दौर इतना बढ़ा कि सम्पूर्ण हरम मदिरा और नृत्य की तरगो में झूमने लगा। सम्पूर्ण देश में छोटे छोटे राज्य बन गये और उनमें भी पारस्परिक विद्वेष की भावना अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। ऐसे समय मे ईरान के बादशाह नादिरशाह का आक्रमण हुआ। उसने रगीले बादशाह को बन्दी बना लिया और दिल्ली की निरीह जनता का भयङ्कर रक्तपात हुआ। इस आक्रमण के पश्चात् तो सल्तनत केवल नाम मात्र को रह गई। अवध और बगाल में सूबेदार ही शासक हो गये। दिल्ली के बादशाह की जो कुछ इज्जत थी उसको अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण ने निःशेष कर दिया।

धार्मिक परिस्थितियाँ—मुगल साम्राज्य के इस उत्तरकाल मे हिन्दू और मुसलमान दोनों मे धार्मिक कट्टरता के अनुयायी भी थे और ऐसे भी व्यक्ति थे जो धर्म के मामलों में सहिष्णु भी थे। हिन्दुओ मे ऐसे हिन्दू थे जो शास्त्रीय रीतिनीति के पक्के अनुयायी थे। उनकी धार्मिकतता ग्रथों में लिखित नियम, उप नियम के ही अनुसार चलती थी मुसलमानों में इस प्रकार के अनेक मुल्ला और मौलवी थे जो कुरान की आयतों को ही जीवन पर लागू करने के पक्षपाती थे। उनमें भी बाह्याचार और ढोंग की प्रधानता थी किन्तु इस्लाम धर्म शासक वर्ग का धर्म होने के कारण कुछ निरकुशता और घृणा का प्रचार भी अवश्य करता रहा। मुल्ला और मौलवियों ने हिन्दू धर्म के विरोध में बोलना अपना ध था। इस कारण हिन्दुओं को धार्मिक बातों मे निडरता नहीं थी त्यौहारों की स्वतन्त्रता अकबर से शाहजहाँ तक फिर भी थोड़

बहुत थी किन्तु औरंगजेब ने धार्मिक मामलों में भी हिन्दुओं को स्वतन्त्र नहीं रहने दिया।

वैष्णव मत का समस्त उत्तरी और दक्षिणी भारत में जोर था। राधा और कृष्ण की माधुर्य भाव की उपासना इन दिनों में अधिक विकास कर चुकी थी वल्लभाचार्य और फिर उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने अष्टछाप की स्थापना करके कृष्ण भक्ति के महत्व का प्रतिपादन किया था। बल्लभ सम्प्रदाय एव अन्य वैष्णव सम्प्रदायों की फिर कितनी ही शाखा प्रशाखायें हुईं और उनकी अलग २ गद्दियां स्थापित हो गई। जिस सम्प्रदाय को बल्लभ ने भक्ति और प्रेम के समन्वय को प्रदर्शित करने के लिये चलाया था, वह भी अब राजाओं और धनिक लोगों के लिये स्वर्ग में स्थान निश्चित करने में लग गया। बाह्य आचार विचार और ढोंग को इन वैष्णव धर्मानुयायियों ने भी अपनाया और इस प्रकार सम्प्रदाय और कर्म के रूप में कुछ लोग अपनी विलास प्रिय मनोवृत्ति को तृप्त करने में लग गये। बल्लभ-सम्प्रदाय की इन गद्दियों और उनके मन्दिरों की शान शौकत के सन्मुख राजा लोग भी अपने आपको हीन समझते थे। उनके ठाट-बाट को देखकर साधारण व्यक्ति तो उनको राजाओं का भी राजा समझता था। बल्लभ सम्प्रदाय के गोसाँई लोगों को देखकर लोग उनको भक्त नहीं कहते थे वरन् महाराज अथवा महाराजाधिराज के नाम से ही सम्बोधित करते थे। बगाल में चैतन्य महाप्रभु का सम्प्रदाय था। वह भी कृष्ण के उपासक थे। उन्होंने कृष्ण से अधिक राधा की उपासना पर जोर दिया था। इसीलिये इस सम्प्रदाय में शृ गार भावना अधिक थी। इस सम्प्रदाय में राधा को परकीया रूप में स्वीकार किया था और यही कारण था कि विद्यापति के जितने शृ गारी पद थे उनको भी इस सम्प्रदाय के भक्तों ने अपना लिया और उनको कीर्तन में भी प्रमुख स्थान दिया गया। कहने का तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण भारत में भक्ति क सरल रूप दे दिया गया था। जिस प्रकार की लोक-रुचि थी उसके अनुकूल ही भक्ति की पद्धतियाँ प्रचलित हो चुकी थीं। इसमें कोई सन्देस नहीं कि इन समस्त सम्प्रदायों का प्रारभ उन महात्माओं और तत्व चिन्तकों ने किया था जो धर्म और शास्त्रों के पूर्ण पंडित

थे। किन्तु आगे चलकर समाज की अभिरुचि ने उन सम्प्रदायों को भी अपनी विचारधारा के अनुकूल ही बना लिया। धीरे २ धर्म की आड़ में विलासिता और कामान्वना का प्रसार होने लगा जो इतना बढ़ा कि मन्दिरों में देवदासी के रूप में अनेकों स्त्रियों को स्थान मिलने लगा। इस प्रकार धर्म एक चोगा मात्र था जिसे धारण करके कैसा भी कार्य किया जा सकता था। मन्दिरों में नृत्य और संगीत की लहरियों पर भी भक्तों को अधिक आनन्द आने लगा इसलिये नृत्य और संगीत को भी भक्ति के अन्तर्गत ही रख दिया गया। भक्ति की इस शृंगार परकता के कारण समाज का नैतिक पतन तो हुआ ही किन्तु साथ ही यह भी हुआ कि विलासी से विलासी पुरुष भी अपने को सरलता पूर्वक भक्त की कोटि में समझने लगा। इस प्रकार भक्ति जिसको अत्यन्त ही कठिन समझा जाता था वह एक साधारण बात होगई। किन्तु वैष्णव धर्म में जाति-भेद के बन्धनों और छूआछूत के विचारों को जटिल रूप ही दिया। इसलिये निम्नवर्ग के अछूत और अन्य जाति के लोगों के लिए वैष्णव धर्म की किसी भी शाखा ने स्थान नहीं दिया। उनके प्रति घृणा की भावना ही विद्यमान थी। यही कारण था कि निम्न जातियों के लोग नानक, दादू आदि पन्थों की शरण लेते थे अथवा अन्य देवी, देवताओं, पीर, पैगम्बर और औलिया आदि को ही अपनी भक्ति भावना का केन्द्र बनाकर पूज्य मान लेते थे। निम्न जाति के लोगों में भी अनेकों अन्ध विश्वास घर किये हुए थे। जनता में अनेकों मेले आदि प्रचलित थे।

हिन्दुओं के समान ही मुसलमानों में भी वाह्याचार और ढोंग घर किये हुये थे। बहुत से पीरों की मान्यता दे दी गई थी। साधारण कोटि के मुसलमान अधिक अशिक्षित होने के कारण फकीरों और पीरों की कब्रों पर चद्दर चढ़ाने और दीपक जलाने को ही मजहब की मान्यता देने लगे थे।

इस प्रकार यदि १७ वीं और १८ वीं शताब्दी की धार्मिकता को देखा जाय तो वह एक खोखलापन लिये हुये थी। जिन उद्देश्यों को लेकर वैष्णव आचार्यों ने भक्ति के महत्व का प्रतिपादन किया था और सूरदास अथवा नन्ददास आदि अष्टछाप के भक्तों ने जिसे जनता के लिये सुलभ कर दिया था, जिस भक्ति में आत्मा की विभोरता और हृदय की तन्मयता थी, कृष्ण के लोक

और लोक रञ्जक रूप का दिग्दर्शन था, वह भक्ति अब पूर्णतः लोप हो और उसके स्थान पर केवल ऐन्द्रिकता और विलासिता की भावनाओं को ही भक्ति का रूप दे दिया गया।

गोस्वामीजी के राम का रूप अवश्य आदर्शों को लिये हुये ही रहा किन्तु की भक्ति कृष्ण के इस विलासी रूप के सम्मुख कुछ ही लोगों के लिये गई। रामचरित मानस का पाठ अवश्य कुछ धर्मप्राण लोगों के यहाँ कभी-ी हो जाता था अन्यथा सम्पूर्ण धार्मिक वातावरण शृंगार की आड़ में यिकाओं के भेद-प्रभेद से भर गया। राधा को अनेकों नायिकाओं के रूप में वा गया। कृष्ण को राधा के साथ केलि-करकर ही इन भक्तों की भक्ति का त्व रहता था। जिस मर्यादाके लिये गोस्वामीजी इतने सतर्क थे वही मर्यादा इन भक्तों के सम्मुख कातर होकर भाग गई थी। सम्पूर्ण उत्तर भारत में के के शृंगार परक रूप को अपना लिया गया था।

उपर्युक्त धाराओं के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी भक्त थे जो किसी भी सम्प्र-य और मत विशेष के नियमों को न मानकर बड़े प्रेम और विश्वासके साथ वर के प्रति अपनी अनन्य भक्ति को प्रदर्शित करते थे। इस प्रकारके कवियों सरसता और शृंगार प्रियता तो अवश्य थी किन्तु आत्मलीनता और प्रेम मोरता के कारण रीतिकालीन भक्तों में इनका नाम अधिक आदर के साथ लिया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूफी-मत की प्रेम की पीर भार-य भक्ति और उपासना में घर कर चुकी थी और इन भक्त कवियों ने भी म की पीर को अपनाया। रसखान इसी प्रकार के कृष्णभक्त थे जो केवल ष्ण की रूप माधुरी पर आकर्षित होकर व्रज की पवित्र भूमि पर ही जीवन-र्यन्त लोटते रहे। इसी प्रकार के भक्त कवियों में महाकवि घनानन्दजी भी थे न्होंने भी अपने लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप देकर उस समय के लीन समाज को चुनौती दी थी। प्रेम की पीर से अत्यधिक प्रभावित भक्त वि नागरीदासजी थे जो जीवन पर्यन्त राजकुल को छोड़कर वृन्दावन में ही श्वर भजन में अपना समय व्यतीत करते रहे। इस प्रकार उस शृंगारिक नोवृत्ति के काल में शृंगार परक भक्ति के भी दो रूप थे—एक अश्लील शृंगारिकता को प्रदर्शित करने केलिये ही राधा और कृष्ण के पवित्र नामों को,

पुकारते थे और दूसरे वह जिनकी भक्ति उनकी आत्मा की पुकार थी। लेकिन बहुमत उन्हीं लोगों का था जो भक्ति की आड़ में अपनी कुत्सित विचारधाराओं की तृप्ति करते थे।

सामाजिक अवस्था—घनानन्द के युग की सामाजिक अवस्था भी धार्मिक और राजनीतिक अवस्थाओं से भिन्न नहीं हो सकती थी। राजनीतिक अवस्था का चित्रण करते समय यहाँ पर समाज के निर्धन होने की चर्चा हो चुकी है और यह भी कह चुके हैं कि समाज में केवल दो वर्ग थे—शासक और शासित। विलासिता और शौकीनी भी उस समय अपनी चरम सीमा पर थी। साधारण लोग तो बेचारे रोटियों के लिये तड़पते थे और बादशाह एवं उनके चाटुकार इत्र में और गुलाब में स्नान करते थे। उनके महलों को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानो इन्द्र की अलकापुरी के महल ही पृथ्वी पर उपस्थित कर दिये गये हों। गर्मी के दिनों में राजाओं के तहखानों में सर्दी का अनुभव होने लगता था। जरी और सोने-चाँदी और जवाहिरात के कपड़ों को पहिनकर जिस समय मुगल बादशाह और उसके दरबारी लोग दरबार में उपस्थित होते थे तो दर्शकों की आँखें चकाचौंध में हो जाती थीं। सहस्रों सुन्दरियों के कण्ठों से अन्तःपुर में संगीत की गूँज प्रवाहित होती रहती थी। मदिरा के दौर में सम्पूर्ण राज महल विभोर होते रहते थे। इन विलासी राजाओं और जागीरदारों की दुश्चरित्रता के कारण समाज में आतंक छाया रहता था। हिन्दुओं में लड़कियों के विवाह पालने में ही होने लगे थे क्योंकि उनको शासक वर्ग की कामान्धता का भय था। परदे की प्रथा अत्यन्त कठोर रूप में थी। उस समय के पतनोन्मुख समाज की अवस्था का चित्रण डा० ईश्वरीप्रसाद ने इस प्रकार किया है—"मुगल पदाधिकारी तथा उच्च वर्गीय सामन्त आचरण भ्रष्ट होरहे थे। मदिरा पीने के कारण उनका नैतिक पतन हो गया था। उनकी सन्तान निकम्मी और अकर्मण्य थी। उनका समय नर्तकों, हिजड़ों, मसखरों आदि के साथ मनोविनोद करने में व्यतीत होता था। शूरवीरों की कमी थी। मुगल-सेनापति एवं सैनिक विलास प्रिय हो गये थे। बिना मुहूर्त देखे वे कोई भी काम नहीं करते थे। ज्योतिषियों की पूछ समाज में बहुत थी। समाज में और भी अनेक प्रकार के दोष आ गये थे। नैतिक पतन के कारण राजकर्मचारी घूस

लेने लग गये थे। किन्तु साधारण जनता का चरित्र इन दरबारियों की अपेक्षा अच्छा था।"

साहित्य और कला—समाज की मनोवृत्तियों का प्रतिबिम्ब ही साहित्य पर पड़ता है। जिस प्रकार का समाज होगा उसी प्रकार का साहित्य भी। इस पतनोन्मुखकाल के साहित्य पर समाज की जर्जरित अवस्था की प्रतिच्छाया पूर्णरूपेण पड़ी थी। औरंगजेब साहित्य और कला का शत्रु था। उसके पूर्वज अकबर, जहाँगीर तथा शाहजहाँ के समय में साहित्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। उनके समय में महान कवि, संगीतज्ञ तथा चित्रकार आदि पैदा हुये थे। उन बादशाहों ने कलाकारों का उचित आदर किया था और उसका परिणाम यह हुआ कि जनता भी साहित्य और कला की ओर अपनी अभिरुचि रखती थी। किन्तु औरंगजेब ने कला को दफन करवा दिया। दिल्ली के अनेकों कलाकारों की रोजी चली गई और उनको जान बचाकर दिल्ली से इधर-उधर भागना पड़ा। कवि लोग सामन्तों और जागीरदारों के यहाँ उनका मनोविनोद करने लगे। उनके आश्रयदाताओं में विलासिता ही अधिक मात्रा में थी इस कारण कवि लोग भी उनकी मनोवृत्तियों के अनुकूल ही विभिन्न नायिकाओं और उनके अंग-प्रत्यंग का वर्णन करने में लग गये। जो कवि अपनी कविता से जितनी अधिक कामुकता और ऐन्द्रिकता का रूप प्रस्तुत कर सकता था वह उतना ही सफल कवि माना जाता था। इसलिये काव्य भी भक्ति के समान बाह्य चित्रण और सजावट को लेकर ही चल रहा था। धीरे-धीरे यह बाह्य-सजावट और चमत्कार कविता में इतना बढ़ा कि नायिका अपनी साँसों के उतार-चढ़ाव के साथ छै-छै सात-सात हाथ आगे-पीछे आकर झूले के से झोंटे लेने लगी। विरहिणी के आँसू छाती पर गिरकर छनन-छनन की आवाज करने लगे। कवियों ने नायिका के हृदय को पत्थर के कोयले की भट्ठी बना दिया। राधा और कृष्ण को साधारण नायिका और नायकका रूप देकर उनको मुक्त रूप से विलास में रत करा दिया। परिणाम यह हुआ कि कभी यह रीतिकालीन राधा कृष्णाभिसारिका नायिका बनकर अपने नायक (कृष्ण) से मिलने जाती और कभी शुक्लाभिसारिका के रूप में। उसके अन-अग को इन रसिक कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के सन्मुख मुक्त रूप से वर्णित किया।

इस प्रकार इन कवियों ने उस काल की मनोवृत्ति को और भी दूषित किया।

कुछ साहित्यकार ऐसे भी थे जिन्होंने आश्रयदाताओं की चाटुकारी न करके समाज और देश की चिन्ता भी की जिनमें लाल, सूदन और भूषण का नाम उल्लेखनीय है।

कृष्ण प्रेमी कवियों में रसखान, घनानन्द ठाकुर, बोधा आदि कवियों ने भी उस काल के सन्मुख खड़े होकर अपनी स्वतन्त्र मनोवृत्ति का परिचय दिया। स्थापत्यकला और मूर्तिकला भी अपनी चरम सीमा पर थी। आगरे का ताजमहल, और राजपूताने में कई राजाओं के सुन्दर महलों का निर्माण भी इस काल की कला-प्रियता और साथ ही शान-शौकत का परिचय देने को पर्याप्त है। औरंगजेब के उत्तराधिकारियों ने उसके पश्चात् फिर कला को अपनाया और यहाँ तक अपनाया कि तलवार को सदा के लिये टाँगकर संगीत और नृत्य में झूमते-झूमते अपने को विलासिता के ऊपर ही बलिदान कर दिया।

•

तात्कालिक साहित्यिक परिस्थितियाँ
और
उनकी पूर्व-पीठिका

साहित्यिक परिस्थितियाँ—काव्य की धारा अनादिकाल से एक लम्बे समय से चली आ रही है। इस पर कभी भी कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया था। प्राचीन कवियों के काव्य में कोई ऐसी विशिष्ट परिपाटी नहीं थी जिसे अपनाकर ही कवि लोग अपने को सफल कवि बना सकते थे। वाल्मीकि और कालिदास काव्य को किसी संकुचित घेरे में बाँधने के पक्ष में नहीं रहे। उन्होंने अपने हृदय को मुक्त रूप से भाव-प्रवाह के सम्मुख रखा।

हिन्दी के भक्त कवियों में भी अपने हृदय की अभिव्यक्ति स्वतन्त्रता के साथ ही हुई। सूर, तुलसी, मीरा आदि जितने भी भक्त कवि थे वे सब अपनी कला को स्वच्छन्दता के साथ ही व्यक्त करते थे। किसी भी परम्परा विशेष का इन पर प्रभाव नहीं था। लेकिन १७ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में संस्कृत साहित्य के लक्षणग्रन्थों के आधार पर हिन्दी काव्य में भी अनेक परिपाटियाँ और सिद्धान्त बना दिये गये। कोई भी कवि इनका विरोध करके नहीं चल सकता था। काव्यशास्त्र के नियम उपनियमों के सिद्धान्त बन गये और उन पर चलना कवियों के लिये आवश्यक हो गया।

कृपाराम, केशवदास, चिन्तामणि आदि कवि आचार्य के पद पर आसीन हो गये। उन्होंने लक्षण ग्रन्थों की रचना की। नायिका भेद, अलंकार वर्णन, छन्दशास्त्र और ऋतु वर्णन आदि की परम्परा चल पड़ी। डा० नगेन्द्र ने इस काव्य के ग्रन्थों के विषय में रामचन्द्र शुक्ल के मत को ही अपनी भाषा में इस प्रकार रखा है—'जिन ग्रन्थों में काव्य के विभिन्न अंगों का लक्षण उदाहरण सहित विवेचन होता है उन्हें रीति ग्रन्थ कहते हैं। और जिस वैज्ञानिक पद्धति पर जिस विधान के अनुसार यह विवेचन होता है उसे रीतिशास्त्र कहते हैं (रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ १९६)।

हिन्दी काव्यधारा रीति के बन्धनों में जकड़कर राजाओं और नवाबों के दरबारों में ही सीमित रह गई। जनता से उसका सपर्क नाम मात्र को भी नहीं रहा। कामुकता और विलासिता का साम्राज्य छा रहा था इसलिए कवियों ने अपने स्वाभिमान को खोकर अपने आपको उन राजाओं और सामतों की कुरुचि का शिकार बनाया। इस प्रकार रीति कविता की प्रेरणा राजा सामंत और नवाब लोग ही थे। दिल्ली के शासक अपनी विलासिता में मदमत्त थे और उन्हीं के अनुकरण पर राजा और सामत भी अपनी वासनाओं के गुलाम होकर नैतिकतर से गिर चुके थे। कुछ राजनीतिक वातावरण भी ऐसा था कि अब युद्ध की ओर किसी की उतनी रुचि नहीं थी और न अब भगवान की उपासना में ही किसी का ध्यान लगता था। अब तो सुराही प्याला और सुन्दरी की ही चर्चा चारों ओर हो रही थी। रूप सौन्दर्य ही कवियों का विषय रह गया था। शृंगार रस की सरिता में काव्य निमज्जित और निमग्न हो रहा था। कवियों का और सौंदर्य का सम्बन्ध आदि काल से है वरन् कहना चाहिये कि सौन्दर्य के व्यापक रूप को लेकर ही कवि और कलाकार अपने को सरल बना सकते हैं। रीतिकालीन कवि भी सौन्दर्य के ही पुजारी थे। लेकिन सौन्दर्य भी स्त्री के अंगों में ही सकुचित रह गया। कालिदास और भवभूति के समान रीतिकालीन कवियों की दृष्टि व्यापक सौन्दर्य की ओर नहीं गई। यदि कहीं उनको सौंदर्य दिखलाई देता था वह नायिका के अग प्रत्यगों में ही। प्राकृतिक सौंदर्य भी अब नायिकाओं के अ गों की समानता में हेय समझा जाने लगा था। प्रत्येक कवि अ गों का नख से शिख तक वर्णन करना आवश्यक कार्य समझता था। अनेक प्रकार की नायिकाओं को लक्षणों में महत्व दिया गया। परिणाम यह हुआ कि बाह्य सौंदर्य की ओर ही कवियों का ध्यान अधिक रहा। आन्तरिक सौंदर्य की पिपासा, जो कि कवि को उत्कर्ष और विकास की सीढ़ियों पर चढ़ाती है देखने को नहीं मिलती। कविता को पिंगल के लक्षणों में बाँध दिया गया। छन्द और मात्राओं की ओर कवियों का ध्यान अधिक रहा भावों की ओर से वे उदासीन हो गये। मुख्य छन्द सवैया, कवित्त दोहा थे।

आध्यात्मिक प्रेम अथवा अलौकिक प्रेम का स्थान वासनाजन्य प्रेम ही ले

था। राधा और कृष्ण की पवित्रता को छिन्न भिन्न कर दिया गया और य में उनका स्थान यौवन की उमगों में चूर कामुक नायक और नायिकाओं दे दिया गया। उनके स्थूल और वासना जन्य प्रेम का चित्रण ही कवियों परम कर्त्तव्य समझा जाने लगा।

पूर्व पीठिका—रीतिकाल की मुख्य धारा शृंगार भावना थी। अन्य रसों नाम मात्र को यदि कहीं पर वर्णन मिल गया तो दूसरी बात है। किन्तु क्या शृंगार भावना कहीं से उसी समय अचानक आगई थी या किसी क्रमिक तास के द्वारा आई थी ? साहित्य में कोई भी विचारधारा कभी बिना क्रम के ीं आ सकती। यह परम्पराओं के द्वारा अनेक उत्थान और पतन के रूपों से र कर ही अग्रसर होती है। जिसमें शृंगार की भावना का उदय मानव यता और विकास के प्रथम चरण में ही हो गया होगा। सृष्टि के सृजन साथ ही शृगार भावना का उदय स्वाभाविक था। स्त्री-पुरुष का आकर्षण सृष्टि सृजन का कारण है और उसी आकर्षण से सौन्दर्य का जन्म हुआ। जिस वस्तु के प्रति मन का आकर्षण हो उसी वस्तु में मानव सौन्दर्य-बोष तत्व को खोजने लगता है। मानव का प्राकृतिक स्वभाव कि वह स्त्री की आकर्षित हो। यह सत्य है कि प्रारम्भ से ही वह उसकी काम पिपासा का थी और उस समय मानव केवल उसकी ओर इसी आकर्षण को लेकर ना। किन्तु जैसे २ उसकी बुद्धि का विकास हुआ तो उसने नारी के उन रूपों देखा जिनसे वह सृष्टि के विकास मे सहयोग देती है। वह अनेक कष्टों को न करके शिशु की सेवा मे रत रहती है। स्त्री रूप से वह अपने शारीरिक न्दर्य के द्वारा मनुष्य को आकर्षित करती है। माँ के रूप में उसके हृदय का न्दर्य समस्त ससार में बिखरा पड़ा है। इस प्रकार स्त्री के दोनों रूप सृष्टि के ादि काल से ही मोहक और आकर्षक रहे। वह कवि की प्रेरणा का केन्द्र ादि काल से ही बन चुकी थी।

सस्कृति के आदि कवि बाल्मीकि ने स्त्री के बाह्य सौन्दर्य और आत्मिक न्दर्य दोनों का ही समा वेश अपने काव्य में किया। इसी प्रकार महाभारत कुन्ती और द्रौपती दोनों को पुरुष के आकर्षण का कारण भी रखा है और ाथ ही उनका अपने पति और पुत्र के साथ जो हृदय का व्यापक सम्बन्ध था

उसको भी लिया है। कालिदास के मेघदूत में भी कवि ने यक्षिणी के रूप-सौन्दर्य के साथ उसके हृदय-गत सौन्दर्य को भी देखा है। एक नहीं संस्कृत के अनेक कवियों ने अपनी शृंगार भावना को परिपुष्ट करने के लिये नारी को ही अपने काव्य-ग्रंथों में रखा। किन्तु सबसे बड़ी बात उन कवियों के ग्रन्थों में यही थी कि उन्होंने नायिका के बाह्य-सौन्दर्य के साथ उस आन्तरिक सौन्दर्य को भी देखा जो उसके हृदय में संचित रहता है। किस प्रकार वह अपने पति पुत्र तथा अन्य लोगों के दुःख सुख में सहायक होती है। किस प्रकार अपने त्याग और कर्त्तव्य के द्वारा अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का बलिदान कर देती है। उन्हीं के मूल कार्यों से स्त्री पुरुष के हृदय में स्थान पाती रही। किन्तु संस्कृत साहित्य के उत्तर काल में आकर नारी के बाह्यसौन्दर्य की ओर ही कवियों का आकर्षण अधिक रह गया। इसका मूल कारण उस समय के समाज का रुचि परिवर्तन ही कहा जा सकता है। सामंतीय व्यवस्था में स्त्री केवल मनुष्य के विलास का कारण रह गई। उसके अंगों के सौन्दर्य को ही कवियों ने अधिक देखा। उसके हाव-भाव और मुद्राओं की ओर ही कवियों ने अधिक ध्यान दिया।

संस्कृत एवं प्राकृत साहित्यका प्रभाव—हिन्दी काव्य की शृंगार भावना का मूल स्रोत संस्कृत और प्राकृत के काव्यों में ही मिलता है। प्रथम शताब्दी की रचना गाथा सप्तशती है उसमें राधा को कृष्ण के द्वारा चुम्बित करने की चर्चा इस प्रकार है—

मुहमारुएणतं कह गोरअ राहिआये अवणेन्तो।
एताण वलवीण अण्णाण वि गोरअं हरसि॥

इसके अतिरिक्त बाणकी कादंबरी, शृंगार शतक, आर्या-सप्तशती, अमरु शतक, जयदेव का गीत गोविन्द आदि में शृंगार भावना के ही दर्शन होते हैं। विद्यापति के काव्य में संस्कृत की शृंगार पूर्ण भावराशि का ही संचय है।

संस्कृत से हिन्दी में आकर शृंगार की भावना दो पहलू लेकर चल पड़ी। एक आध्यात्मिक थी और द्वितीय लौकिक। भक्ति काल के कवियों ने शृंगार को राधा और कृष्ण के चारों ओर इस प्रकार से सजोया कि लौकिक होते हुए भी इसका अलौकिक रूप दृष्टिगोचर हुआ। भक्ति के आवरण में भक्त कवियों

ने सब कुछ कह डाला लेकिन उनके काव्य में शृंगार के सतुलित रूप के ही दर्शन होते हैं। राधा के बाह्यसौन्दर्य के साथ कवियों ने उसकी आन्तरिक भावनाओं और मनोवृत्तियों के प्रसार को भी दिखाया। लेकिन रीतिकाल के कवियों ने राधा के उस पवित्र रूप को हटाकर उसे सामान्य नायिका के रूप में चित्रत किया।

हम कह चुके हैं कि रीतिकाल की शृंगार भावना का मूल स्रोत सस्कृत साहित्य में ही मिलता है। हिन्दी का नायिका भेद और नख शिख वर्णन भी संस्कृत के आधार पर ही विकसित हुआ। किन्तु जहाँ सस्कृत में यह एक सामान्य विषय था वहाँ हिन्दी में आकर यह २००–२५० वर्ष तक मुख्य विषय बन गया। रीतिकालीन काव्य के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं कि किस प्रकार हिन्दी काव्य सस्कृत काव्य के तत्वों को अपने में समाहित करके विकसित हुआ। अमरुकशतक के निम्नलिखित श्लोक को बिहारी के एक दोहे से मिलाने पर स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार बिहारी ने अमरुक के भाव को अपनाया है—

> मुग्धे मुग्धतयैव नेतु मखिलः कालः किमारभ्यते
> मानं धत्स्व धृतिं बधान ऋजुता दूरे कुरु प्रेयसि।
> सख्यैव प्रतिबोधता प्रतिवच स्तामाह भीताननना,
> नीचैः शस हृदिस्थितो हि ननु मे प्राणेश्वर.श्रोष्यति।

किसी सखी की उक्ति है। वह मुग्धानायिका को समझा रही है कि वह (मुग्धा) इसी तरह अपने समय का दुरुपयोग करेगी। हाव भाव में दक्ष हो जाओ, धीरज को धारण करो तथा अपने प्रिय को इतना सरल मत समझो। सखी के इस प्रकार कहने पर वह उत्तर देती है 'धीरे बोलो, कहीं ऐसा न हो कि मेरे हृदय में स्थित प्रियतम न सुन ले। इसी भाव को बिहारीलाल ने भी प्रदर्शित किया है—

> सखी सिखावति मान विधि सैननि बरजति बाल।
> हरुए कहि मो हिय बसत सदा बिहारीलाल ॥

इसी प्रकार के अन्य संस्कृत ग्रन्थों के शृंगार परक श्लोकों को हिन्दी में

अपना लिया गया। रीतिकालीन कवियों के अनेकों भाव संस्कृत काव्यों से ह अपहृत किये हैं।

बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं उनकी रचना के कतिपय उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार इनके दोहों पर संस्कृत की शृंगार परक रचनाओं का प्रभाव था। इसी प्रकार अन्य रीतिकालीन कवियों की रचनाओं पर भी संस्कृत काव्य का ही पूर्ण प्रभाव था। बिहारी के प्रसिद्ध दोहे को ही लीजिए जिसके विषय में कहा जाता है कि यह इन्होंने राजा जयशाह के विलासिता के ऊपर अन्योक्ति के रूप में प्रस्तुत किया था—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बिन्ध्यौ आगे कवन हवाल॥

किन्तु बिहारीलाल का यह प्रसिद्ध दोहा भी उनका अपना मौलिक नहीं। यह भी गाथा सप्तशती के एक श्लोक का ही छाया अनुवाद है—

जाव्ण कोस विकासं पावइ ईसीस मालई कलिया,
मअरन्द पाण लोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि।

उपर्युक्त गाथा सप्तशती के इस उद्धरण का भाव है कि अभी मालती पूर्ण रूप से विकसित भी नहीं हुई है किन्तु रस के लालची भ्रमर तू उसका मर्दन भी करने लगा।

बिहारीलाल के दोहे के भाव में और इसमें तनिक भी अन्तर नहीं। वही शब्द वही भाव और वही आशय है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि रीतिकालीन कवियों की काव्य धारा अधिकतर संस्कृत कवियों की भाव धारा से ही निस्सरित हुई थी। देव मतिराम, पद्माकर तथा अन्य कवियों की रचनाएँ इस बात का प्रमाण है।

रीतिकाल का सम्पूर्ण नायिका भेद भी संस्कृत साहित्य की विरासत है किन्तु अन्तर इतना ही है कि संस्कृत में नायिका भेद को उतना व्यापक रू नहीं किया गया जितना कि हिन्दी के रीतिकाल में किया गया। हिन्दी क नायिका भेद संस्कृत के विश्वनाथ एवं भानुदत्त के अनुकरण पर हो है। विश्व नाथ ने मुग्धा के तीन भेद किए थे—प्रथमावतीर्ण यौवना, प्रथमावतीर्ण मद

विकारा और समधिक लज्जावती। इन्हीं के पर्याय रूप केशव और देव ने भी किये। अन्तर इतना ही है कि जहाँ विश्वनाथ ने मुग्धा के तीन भेद किए वहाँ न रीतिकालीन कवियों ने मुग्धा के भेद चार किये। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन अन्य कवियों ने इन भेदों के भी उपभेद कर डाले। इसके अतिरिक्त संस्कृत के 'रस मंजरी' नामक ग्रन्थ के अनुकरण पर चिन्तामणि, मतिराम आदि कवियों ने ज्ञात यौवना और अज्ञात यौवना के रूप में भी वर्गीकरण किया।

इसी प्रकार प्रौढ़ा के भेदों में भी रीतिकालीन कवियों ने वृद्धि की। किन्तु इसके भेदों की उतनी संख्या नहीं जितनी कि मुग्धा के भेदों की।

परकीया के भेद भी रीतिकाल के कवियों ने संस्कृत आचार्यों के आधार पर ही किया। किन्तु जहाँ संस्कृत के कवियों ने परकीया के दो भेद किये वहाँ हिन्दी के आचार्य कवियों ने ६ भेद करके उन रूपों को और अधिक बढ़ा दिया।

भिखारीदास रीतिकालीन आचार्यों में इस प्रकार के आचार्य थे जिन्होंने संस्कृत के भेदों के अतिरिक्त कुछ मौलिक भेद भी किये और उनके लक्षण भी उनकी अपनी खोज और बुद्धि का परिणाम था। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों ने नायिका भेद को सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार भी विस्तृत किया जो संस्कृत काव्य से नितान्त मौलिक और नवीन था। इस प्रकार रीतिकाल का सम्पूर्ण नायिका भेद रीतिकाल के कवियों की मौलिक कल्पना का परिणाम नहीं वरन् संस्कृत काव्य के आधार पर ही उसका उदय हुआ।

हिन्दी में नखशिख वर्णन की परम्परा का विकास भी संस्कृत के अनुकरण पर ही हुआ। संस्कृत में नखशिख वर्णन को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था शृंगार रस की आलम्बन प्रायः नायिका ही होती थी। इसलिये उसके अंगों का वर्णन रस-परिपाक में अत्यन्त सहायक था।

अलंकार शास्त्र—रीतिकाल की कविता वाह्य-रूप-निरूपण पद्धति पर आधारित थी इसलिये उसमें अलंकारों को अधिक महत्व दिया गया। रीतिकाल के प्रथम आचार्य केशव ने अलंकारों के विवेचन का आधार संस्कृत लक्षण ग्रन्थों को ही रखा। दण्डी का 'काव्यादर्श' ही उनका आधार रहा है। केशव ने दण्डी के उदाहरणों को भी उसी रूप में अपना लिया। किन्तु कुछ

अलकारों के भेदों में उन्होंने अपनी मौलिकता भी दिखाई। सामान्य अलकारों को केशव ने 'काव्य कल्पलता वृत्ति' और केशव मिश्र द्वारा रचित 'अलकार शेखर' के आधार पर ही रखा।

महाकवि देव ने भी केशव के आधार पर ही अलकार निरूपण किया। दास ने इस विषय पर कुछ मौलिक दृष्टिकोण से काम लिया लेकिन उनका आधार भी मूलत. सस्कृत ग्रंथों के ऊपर ही था।

लक्षण ग्रन्थों का प्रभाव—

रीतिकाल में शृगार की जो अजस्रधारा बही उस पर सस्कृत के लक्षण ग्रन्थों की शृगारिक भावना का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। नायिका-भेद, नखशिख वर्णन, अलकार निरूपण आदि सभी में यह शृगारिक भावना ओतप्रोत है। कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा कि सस्कृतमें शृगार भावना किस कोटि की थी। खण्डिता नायिका का एक उदाहरण देखिये—

तदामम गण्डस्थल निमग्ना दृष्टि नानैषीरन्यत्र।
इदानी सैवाह तौच कपोलौ न सा दृष्टिः॥

नायक नायिका के समीप स्थित है। वहीं पर उसकी प्रिय स्त्री भ खड़ी है। किन्तु नायक अपनी स्त्री के भय से उसको नहीं देख सकता। इसलिये वह अपनी स्त्री के कपोलों पर उस नायिका के प्रतिबिम्ब को इस प्रकार देखता है जिससे वह स्त्री यह समझे कि वह उसके कपोलों की कान्ति पर इतना अधिक अनुरक्त है कि एकटक दृष्टि से देख रहा है। किन्तु जब वह नायिका वहाँ से चली जाती है तो वह नायक उसके कपोलों पर उस विमोरता से देखना बन्द कर देता है। किन्तु नायिका उसको ताड़ जाती है और उस नायक से कहती है—'तब तो (जब तुम्हारी प्रियतमा यहाँ खड़ी थी) मेरे कपोलों से अपनी दृष्टि को हटाते भी नहीं थे परन्तु अब (जब वह चली गई) मैं वहीं हूँ और मेरे कपोल भी वे ही, हैं तथापि आपकी दृष्टि और की और हो गई है।'

इसी प्रकार एक व्यभिचारिणी नायिका का उदाहरण दिया गया है—

श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसके प्रलोकय: ।
मा पथिक रात्र्यन्धक शय्यायामावयोर्निमङ्क्ष्यसि ॥

किसी पथिक से जिसे रात्रि में वहाँ रहना है स्वयं दूतिका नायिका की है। हे रतौंधी रोग से पीड़ित पथिक ! तुम दिन में ही भली भाँति देख यह समझलो कि इस स्थान पर मेरी सास लेटती है और यहाँ पर मैं हूँ। कहीं रात को ऐसा न हो जाय कि तुम धोखे से हम लोगों की शय्या गिर पड़ो।

इसी प्रकार रीतिकाल के एक कवि भी अपनी स्वयं दूतिका नायिका से ी प्रकार की उक्ति कहलवाते हैं। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ संस्कृत में ल सास के सोने की चर्चा है वहाँ रीतिकालीन यह नायिका अपने प्रियतम प्रवास तक की चर्चा कर देती है—

ननद निनारी सास मायके सिधारी,
अहो रैन अँधियारी मरु सूझत नकरु है।
× × ×
× × ×
सावन की रात थोरी थोरी सियरात,
जागु-जागु रे बटोही यहाँ चोरनु की डरु है।

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं जिनमें रीतिकालीन यों ने उन उदाहरणों को भी अपना लिया है जो काव्य-प्रकाश और काव्य ण में उदाहरण रूप में प्रस्तुत किये गये थे। संस्कृत के इन ग्रन्थों में शृंगार धारा इस अबाध गति से चली कि रीतिकाल की परिस्थितियों में आकर वह न्त अनुकूल हो गई।

रीतिकाल के कवियों को यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो उसमें तीन वर्ग ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं—

—लक्षण ग्रन्थकार और रीति निरूपक आचार्य,

—वह कवि जिन्होंने रीति ग्रन्थों को आधार मानकर अपने काव्य का किया।

—चेट कवि जिन्होंने शृंगार के उदात्त रूप को अपनाकर रीतिबद्ध परपर से अपने को मुक्त रखा।

लक्षण ग्रन्थकार—रीतिकाल के कवियों में एक वर्ग इस प्रका के कवियों का था जो काव्य के लक्षणों का निरूपण करना ही अपनी प्रतिभ का परम लक्ष्य समझते थे। काव्य के लक्षणों की व्याख्या को कविता में बद्ध करके अपने आश्रयदाताओं के सम्मुख रखना ही इनका कर्त्तव्य था। कृपाराम केशवदास, चिन्तामणि आदि इसी प्रकार के कवि और आचार्य थे। इन्होंने हिन्दी काव्यशास्त्र की रचना करके हिन्दी काव्य की स्वच्छन्द धारा को एक सीमा में बद्ध कर दिया। रीति परम्परा के प्रचारक यह कवि ही कहलाये।

रीतिशास्त्र से प्रभावित—कवियों का दूसरा वर्ग उनका था जो रीति की परम्परा को मान कर ही कविता करते थे। इन कवियों ने लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे किन्तु इनकी कविता काव्य शास्त्र के नियम और उपनियमों की मान्यता को स्वीकार करके ही चली है। रीतिकालीन कवियों में बिहारी, देव, सेनापति मतिराम और पद्माकर इसी प्रकार के कवि थे।

स्वतंत्र कवि—तीसरा वर्ग उन कवियों का था जिन्होंने रीतिकालीन प्रभाव से अपने काव्य को प्रभावित होने से बचाया। उन्होंने शृंगार को ही अपने काव्य में स्थान दिया किन्तु उसको भक्त कवियों की सी उदात्त भावना और प्रेम के विशुद्ध रूप से उन्होंने गिरने नहीं दिया। घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि इसी प्रकार के कवि थे। उनका काव्य उनके हृदय की स्वाभाविक और सच्ची अनुभूति है। उनके ऊपर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था।

रीतिकाल के मुख्य विषय :—

नायिका भेद—रीतिकाल का मुख्य विषय नायिका भेद है जो अत्यन्त ही व्यापक और विस्तृत है। सम्पूर्ण रीतिकालीन कवियों ने दो शताब्दी तक नायिकाओं के भेद प्रभेदों को वर्णित करने में ही सफलता का मार्ग दिखलाई देता था, और यदि इसे पूर्ण सत्य भी मानें तो अत्युक्ति भी नहीं होगी। क्योंकि उस समय के राजाओं की अभिरुचि ही नायिका भेद को सुनने वाली थी और उन्हीं को प्रसन्न करके ही यह कवि लोग अपना जीवनयापन कर

सकते थे। हिन्दी का उस काल का कोई भी कवि, ऐसा नहीं कि जिसने नायिका के भेदों की व्याख्या नहीं की।

अनेकों प्रकार से नायिकाओं के भेद किये गये। अवस्था के अनुसार नायिकाओं के आठ भेद किये गये। प्रकृति के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद किये गये—उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा। नायक के प्रति नायिकाओं के जो सम्बन्ध हैं उनके विचार से भी नायिकाओं के तीन भेद हैं—१—स्वकीया २—परकीया और ३—सामान्या। इसी प्रकार इन के अनेकों भेद प्रभेद होते गये। रीतिकाल का सम्पूर्ण साहित्य नायिकाओं के महत्व को प्रतिपादन करने में ही लगा रहा। कुछ उदाहरणों से उस काल की प्रवृत्ति का पता लग जायगा। कवियों को इस प्रकार के वर्णनों को अपने स्वामियों की इच्छा के कारण ही करना पड़ता था। स्वकीया नायिका का वर्णन कितना सुन्दर है। उसके सम्पूर्ण रूप को कवि ने प्रस्तुत कर दिखाया है—

जानि कुरगन को मद मेल
लगाइये अगन रग सुचैती।
चार दिना न भये अब हीं
पति कौन चढ़ी चित पै पिक बैनी।
माइके की न मनै कर देहु
करे ससुरार की सारस वेनी
राजकुमारि विथा मरिये करिये
किहि कारण भौंह तनैनी॥

मुग्धानायिका को भी कवियों ने अनेक रूपों में देखा। मतिराम कवि ने मुग्धा के लक्षणों को अनेक सवैयों में दिखाया—

तब तो जितही जित ठाढ़ी हुती,
अब तो जन वे दिन मौनन के।
तब तो पट ओढ़न जान नहीं
अब तो दिन सेज बिछौनन के।

मतिराम कहै चतुराई गही
सु रही दिन चार न गौनन के।
अब आइ पिया सग केलि करौ
सु गये दिन खेल खिलौनन के॥

यही शृंगार उन विलासी राजाओं को चाहिये था और कवियों ने
प्रकार के शृंगार को ही प्रस्तुत किया। पद्माकर भी मुग्धा के लक्षणों को।
प्रकार प्रकट करते हैं—

ऐ अलि या बलि के अधरान पै
आनि चढ़ी कछु माधुरई सी।
ज्यों पद्माकर माधुरी त्यों
कुच दोउन की चढ़ती उनई सी।
ज्यों कुच त्योंही नितंब चढ़े
कछु ज्यों ही नितम्ब त्यों आतुरई सी।
जानी न ऐसी चढ़ाचढ़ी में
किहिधों कटि बीच ही लूटि लई सी॥

रीतिकालीन कवियों में इस प्रकार के लक्षणों को प्रस्तुत करके नायिका
भेदों को वर्णन करने की प्रकृति सामान्य थी।

अज्ञात यौवना नायिका और ज्ञात यौवना नायिका के बीच समानता करते
पद्माकर ने जिस भावना को प्रस्तुत किया है वह रीतिकालीन शृंगारिक प्रवृत्ति
की परिचायक है—

ऐ अलि हमें तो बात गात की न सूझि परे
बूझति न यामें ऐसी कौन कठिनाई है।
कहै पद्माकर क्यों अंग न समात आली
लागी कहाँ तोहि आगी उर में उँचाई है।
तोव तजि यौवन चली है चपलाई कत

बावरी विलोकि लेरी आखिन में आई है।
मेरी कटि मेरी भट्ट कौन घौं चुराई
तेरे कुचन चुराई धौं नितम्बन चुराई है॥

इस प्रकार ही ज्ञातयौवना नायिका, नवोढा नायिका को भी प्रत्येक कवि ने अनेक प्रकार से चित्रित किया है। मध्यानायिका और उसके भेद उपभेदों को भी कवियों ने विभिन्न रूप से देखा। नायिका के प्रथम लक्षण प्रस्तुत करके फिर उसका उदाहरण नीचे दिया जाता था—

यथा—॥अथ प्रेम गर्विता लक्षण॥

दोहा—

जाको पति के प्रेम को गर्व होइ चित आइ।
प्रेम गर्विता कहत हैं ताहि सकल कविराय॥

उदाहरण—

आखिन में पुतरी हो रहै
हियरा में हरा ही सबै सुख लूटै।
अंगन संग बसै अंग राग हो
जीव ले जीवन मूर न लूटे॥
देवजू प्यारे के न्यारे सबै गुण
मोमन मानिक से नहिं छूटे।
और तियान सों तो बतियाँ करै
मो छतियाँ ते छनो जब छूटै॥

नखशिख वर्णन :—इस प्रकार के वर्णनों से हिन्दी का दो सौ वर्ष का साहित्य भरा पड़ा है। नायिकाओं के भेद उपभेद, उनके अंगों का सौन्दर्य आदि ही काव्य के विषय थे। नखशिख वर्णन भी उन काल के कवियों का प्रिय विषय था। ऐसा कोई भी कवि नहीं था जिसने इस विषय को नहीं स्पर्श किया हो। केवल रूप सौन्दर्य का चित्रण ही कवियों को पर्याप्त नहीं था। उनको तो नायिका के रोम रोम का वर्णन करने में आनन्द आता था। वेणी,

केश, मुख, नासिका, कपोल, ओष्ठ, भृकुटी, नेत्र, दाँत, कुच, पेट, जंघा नाभी, त्रिवली आदि सभी अवयवों को रीतिकालीन कवियों ने अपने क[ाव्य] का विषय बनाया। कोई भी कवि नखशिख वर्णन किये बिना अपने काव्य [को] पूर्ण नहीं समझता था। देव, बिहारी, मतिराम, सेनापति, पद्माकर आदि म[हा] कवियों के काव्य में नखशिख वर्णन को एक व्यापक स्थान मिला। नीचे उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा कि किस प्रकार उस काल के कवि लोग [इ]स प्रकार अपने समय का दुरुपयोग इस ऐन्द्रिकता के प्रचार में कर रहे थे—

जंघा—

दोहा—जघ जुगल लोइन निरे करे मनों विधि मैन।
केलि तरुन दुख दैन ए केलि तरुन सुख दैन॥
(बिहारी)

कटि— हारी हार धार उर भार औ उरोज भार
यौवन मरोर जोर दावे दलमलु है।
पल पल पर यहै जिय होत संक
टूटि न परत कौन पुन्य मतिफल है।
कोऊ कहै रुरी नहि कोऊ कहै कटि हीन
मदन गोपाल देखे चित्त चरिफल है
काहू की न मानै साँच कहत ही आई नाक
ऐसे बाँके लंक पै उलंक चलिफल है।

इसी प्रकार के अनेकों विवरण उस काल के कवियों के मिलते हैं। उन्होंने भाव की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया उनको तो वस्तु का वर्णन म[ात्र] करना था।

इस प्रकारके वर्णनों के द्वारा उस समय के विलासी राजाओं और सा[मन्तों] की कामपिपासा उद्दीप्त होती थी और वह लोग इन कविराजों को धन देकर इसी प्रकार की कविता लिखने को प्रोत्साहित करते थे। नखशिख वर्णन में कवियों ने नायिकाओं के उन अंगों पर अपना ध्यान अधिक आकर्षित कि[या] जो काम को उत्तेजित करने वाले थे।

बाह्य सौन्दर्य की प्रधानता—

इस काल के कवियों की मुख्य प्रवृत्ति थी कि वह बाह्य-सौन्दर्य को ही अधिक महत्व देते थे। इस काल के कवियों की दृष्टि आन्तरिक सौन्दर्य की उन गुत्थियों की ओर नहीं गई जिनको सूर और तुलसी के काव्य में अधिक महत्व दिया गया। इसका मूल कारण यही था कि यह कवि रसिक थे और इनको नारी के बाह्य शरीर से ही अधिक मोह था। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने काव्य को भी बाह्य उपकरणों से ही सुसज्जित किया। भाव को प्रमुख स्थान बहुत कम मात्रा में मिला। भाषा, अलकार तथा नायिकाओं के भेदों को ही कवियों ने अधिक महत्व दिया। उन्होंने हृदय की सूक्ष्म वृत्तियों के सौन्दर्य को इन सब के सम्मुख विस्मृत कर दिया। यह बात दूसरी है कि कहीं पर अनायास ही भावराशि आ गई हो। इस प्रकार के भी अनेकों स्थल बिहारी, मतिराम, देव आदि कवियों में मिल जाते हैं। कवियों को अलकारों के प्रयोग कविता में आवश्यक जान पड़ते थे। महाकवि केशव का यह दोहा सिद्धान्तवाक्य हो रहा है—

> जदपि जाति सुलच्छिनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
> भूषण बिन न विराजही कविता बनिता मित्त॥

अभी तक कविता की आत्मा भाव ही थे और उन्हीं को पूर्व के कवियों ने अधिक महत्व दिया था। किन्तु रीतिकाल में आकर अलकारों को ही कविता का सौन्दर्य कहा गया। भाषा में समासपद्धति को अपनाकर भाषा सौन्दर्य का समावेश करना आवश्यक हो गया। पद्माकर जैसे अनुप्रास भक्त और सेनापति जैसे श्लेष अलंकार के प्रशसकों ने काव्य के मानरस को सर्वथा भुला दिया। इस प्रकार रीतिकालीन काव्य में चमत्कार का योग होने से फारसी और उर्दू के समान वाहवाही प्राप्त करने की शक्ति आ गई। कविता का मूलाधार भाव अब अप्रधान रूप प्राप्त करके कभी-कभी ही दिखाई देता था। अब काव्य अन्त चेतना प्रदान करने वाला न होकर केवल बुद्धि का चमत्कार प्रदर्शित करने वाला ही रह गया था। उपर्युक्त कथन से यह आशय नहीं लेना चाहिए कि रीतिकालीन काव्य में भाव पूर्णरूपेण थे ही नहीं। उस काल

में भी भाव पूर्णस्थल थे किन्तु अन्तर इतना था कि जहाँ भक्तिकाल के कवियों क
मूल प्रवृत्ति भावों को प्रधानता देने की ओर थी वहाँ इन रीतिकालीन कवि
की प्रवृत्ति कला के बाह्य उपकरणों को खोजने की ओर अधिक रही। विहार
जैसे कलाशास्त्री ने तो बाह्य-सौन्दर्य के साथ-साथ अन्तः वृत्तियों को भी अत्यन्
सुन्दरता के साथ प्रदर्शित किया है। किन्तु उनके काव्य की मूल प्रवृत्ति अल
कार और अन्य भाषा विषयक बाह्य उपकरणों की ओर ही अधिक रही। पद्
माकर भाषा के सजाने में रीतिकालीन कवियों में सबसे अग्रणी रहे। कहने क
तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार भक्तिकाल में काव्य की मूल प्रवृत्ति आन्तरि
भावों के प्रदर्शन की ओर अधिक थी उसी प्रकार रीतिकालीन काव्य की मूल
प्रवृत्ति बाह्य-सौन्दर्य के उत्कर्ष की ओर ही अधिक रही।

रीतिकाल और घनानंद

रीतिकाल में कृष्ण और राधा का रूप—घनानन्द का प्रादुर्भाव जिस समय हुआ उस समय हिन्दी-साहित्य का वातावरण शृंगार से आप्लावित था सर्वत्र शृंगार की धारा में ही कवि लोग डुबकी लगाकर अपने कवि-कर्म को सफल बना रहे थे। भक्ति, योग और अन्य उपासना पद्धतियों का ज़ोर समाप्त हो चुका था अब न तुलसी की राम-काव्य की धारा ही दिखाई देती थी और न कबीर, दादू आदि सन्तों की बानी का ही स्वर सुनाई देता था, न सूर के माखनचोर, और पैर में पैंजनी बाँधकर नाचने वाले कृष्ण का बालरूप ही दृष्टिगोचर होता था। कृष्ण का जो रूप मिलता था वह शृंगार में लथपथ और भोग-विलास में रँगा एक ऐसा रूप था जो तात्कालिक कुत्सित विचार-धारा के किसी भी युवक का रूप हो सकता था। अब कृष्ण का पतित-पावन दुष्ट-संहारक और ललितकलाओं के प्रचारक का रूप नहीं था वरन् एक विलासी और लम्पट नायक के रूप को ही कृष्ण नाम से सम्बोधित किया जाने लगा था। राधा भी कृष्ण के समान ही अपने पद से च्युत हो चुकी थीं। उनको भी साधारण नायिका का रूप देकर उनके उस प्रेमतत्व की अनुभूति को समाप्त कर दिया गया था जो शताब्दियों से हिन्दू जनता को एक गम्भीर भाव-धारा में निमज्जित करती चली आ रही थी। घनानन्द का रचनाकाल ऐसे समय में हुआ जिस समय साहित्य में अनेकों धारायें शृंगार के सागर को भरने का प्रयत्न कर रही थी। उन सब धाराओं के मूल में शृंगार भावना की ही प्रधानता थी।

तात्कालिक मुख्य प्रवृत्तियाँ—उस समय प्रधान रूप से काव्य-शास्त्र के अनेकों भेद-प्रभेदों की नाना प्रकार से व्याख्या हो रही थी। रस, अलंकार, ध्वनि आदि को ही काव्य में प्रधान रूप से स्वीकार कर लिया गया। नायिका

भेद, नखशिख वर्णन, ऋतु वर्णन तथा छन्दों में कवित्त, सवैये, दोहा आदि को प्रधानता दी गई। शृंगार रस को रसराजत्व दिया गया। भक्ति और उपासना को अधिक महत्व नहीं दिया। यदि उस काल में भक्ति का रूप कुछ मिलता भी है तो वह भी शृंगार की भावना से ओतप्रोत और निम्न स्तर का ही है। भक्ति की उस निर्मलता और स्वच्छता का चित्र केवल कुछ कवियों में ही मिलता है। घनानन्द आदि कवियों ने कृष्ण और राधा विषयक कुछ कवितायें लिखीं लेकिन उनमें भी उनकी मनोवृत्ति शृंगार के रूप को दिखाने की ओर ही अधिक रही है। लौकिक प्रेम का स्पष्टीकरण इन कवियों के द्वारा भी अधिक किया गया।

भक्तिकाल के कवियों ने काव्य के आन्तरिक सौन्दर्य को देखने का ही प्रयत्न किया था। उनके काव्य में उनकी आत्मा की सच्ची अभिव्यक्ति थी। किन्तु इस काल के कवियों ने अपनी कविता राज्याश्रय में ही लिखी इसलिए उन्होंने अपने स्वामियों की प्रसन्नता के लिये चमत्कार की ओर ही अपना ध्यान अधिक रखा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनकी कविताओं में कहीं-कहीं भाव भी उच्च कोटि के हैं किन्तु उनकी ओर ध्यान अधिक नहीं। देव अवश्य एक ऐसे कवि थे जिनमें इन रीतिकालीन नियमों की मान्यता के होते हुये भी भाव पक्ष भी गौण नहीं पाते। कहीं-कहीं तो उनके काव्य में भक्त कवियों की-सी ही तन्मयता प्रतीत होती है।

सतसई लिखने की एक परम्परा सी चल पड़ी थी। बिहारी, मतिराम आदि अनेक कवियों ने सतसइयों की रचना की जिनमें शृंगार रस को ही प्रमुखता दी गई।

इस काल में लक्षण ग्रन्थों की परिपाटी चल पड़ी। कवि लोग कविता को केवल नायिकाओं के लक्षण और भेदों के ही लिये लिखते थे। इस काल की विशेषताओं के विषय में आचार्य शुक्ल ने इस प्रकार अपना मत दिया—
"रीति ग्रन्थों की इस परम्परा के द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास में कुछ बाधा भी पड़ी। प्रकृति की अनेकरूपता, जीवन की भिन्न-भिन्न चिन्त्य बातों तथा जगत के नाना रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाने पाई। वह एक प्रकार से बद्ध और सीमित सी हो गई। उसका क्षेत्र संकुचित हो गया।

धाराएं बँधी हुई नालियों में ही प्रवाहित होने लगी जिससे अनुभव के बहुत-से गोचर और अगोचर दृश्य रस-सिक्त होकर सामने आने से रह गये। दूसरी बात यह हुई कि कवियों की व्यक्तिगत विशेषताओं की अभिव्यक्ति का अवसर बहुत कम रह गया।"

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि रीतिकालीन कविता में अनेक रूपता नहीं थी। वह केवल कुछ बँधी हुई परिपाटियों पर ही चलने लगी। कविता की सफलता इसी में थी कि वह पिंगल आदि के लक्षणों से युक्त हो और उसमें कोई भी ऐसा दोष नहीं जो कि काव्य-शास्त्र के नियमों के प्रतिकूल हों। यही कारण था जिससे कवि लोग अपनी कविता की सफलता अपने ही मुख से घोषित करने लगे—

> राखति न दोषै पोषै पिंगल के लच्छन कौं,
> बुध कवि के जो उपकण्ठ ही बसति है।
> जोए पद मन कौं हरष उपजावति है,
> तजै को कनरसै जो छन्द सरसति है॥
> अच्छर हैं विशद करति उषै आप सम,
> जातैं जगत की जड़ताऊ बिसरति है।
> मानो छवि ताकी उदवत सविता की सेना-
> पति कवि ताकी कविताई बिलसति है॥

ऊपर का कवित्त सेनापति कवि का है। कवि अपने कला-कौशल पर स्वयं मुग्ध है। किन्तु यदि उसके इस कवित्त को देखा जाय तो इसमें केवल श्लेष का चमत्कार है वह भी बड़ी खींचतान के साथ। अन्यथा कवि किसी भी प्रकार के भाव को इस कवित्त में नहीं दिखा सका। लेकिन फिर भी सेनापति कवि का स्थान रीतिकालीन कवियों में अपनी विशेषता रखता है क्योंकि उन्होंने रीति में बद्ध होकर ही कविता लिखी थी और उस काल की जनता कविता के बाह्य आवरणों की सजावट पर ही मुग्ध थी इसलिये सेनापति भी रीतिकाल के प्रमुख कवियों के अन्तर्गत ही माने गये।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि घनानन्द के काल

की मुख्य साहित्यिक प्रवृत्तियाँ थीं—(१) काव्य के विभिन्न अंगों का लक्षण और उनका उदाहरण सहित विवेचन होता था। नायिकाओं के भेद और प्रभेदों को भी काव्य में प्रमुख स्थान था। नखशिख वर्णन का प्राधान्य था। (२) मुख्य रस शृंगार था। शृंगार के संयोग और वियोग-पक्ष को कवियों ने अनेक प्रकार से वर्णित किया है। (३) अलंकारों के द्वारा अर्थ में चमत्कार विधान करने का प्रयत्न रहा। (४) नारी के प्रति सामन्तवादी दृष्टिकोण था पद पुरुष के भोग की ही वस्तु थी। उसके सामाजिक अधिकारों का पक्ष गौण था। (५) राधा और कृष्ण की प्रेमासक्ति के स्थान पर नायक और नायिकाओं की विलास प्रियता ही प्रधान थी।

स्वच्छन्द कवि घनानन्द—ऐसी परिस्थितियों में महाकवि घनानन्द उत्पन्न हुये। किन्तु उन्होंने शृंगार के उदात्त रूप को ही लिया और प्रेम की ऐसी तान छेड़ी जिसने सम्पूर्ण रीतिकालीन वातावरण की नीरसता को दूर कर दिया जो एक बँधी हुई परिपाटी के कारण उत्पन्न हो गई थी। उन्होंने अपने भग्न हृदय की ऐसी सच्ची और सरल अभिव्यक्ति की कि उस समय के कलापारखियों ने उनके काव्य को रीतिकालीन काव्य से अधिक महत्त्व दिया। घनानन्द का काव्य किसी प्रकार की संकुचित सीमाओं के बन्धनों में नहीं था। इसकी किसी सँकरी और गन्दी गली में नहीं चलना था वरन् एक प्रशस्त राजमार्ग का अवलम्बन करना था। घनानन्द को किसी राजा और सामन्तों की प्रशंसा या प्रसन्नता के लिये अपने काव्य का सृजन नहीं करता था वरन् अपने हृदय की कोमल और उदात्त भावनाओं को जनता के समीप पहुँचाना था। यही कारण है कि उनकी कविता में भावोद्वेग को ही प्रधान रूप मिला।

घनानन्द की विशेषता—रीतिकालीन कवियों और उनके काव्य से यदि घनानन्द और उनके काव्य की तुलना की जाय तो घनानन्द में और उन रीतिकालीन कवियों के काव्य में ज़मीन आसमान का अन्तर है। रीतिकालीन कवियों की मुख्य प्रवृत्ति थी कि उनमें भक्ति की विभोरता और तन्मयता का कहीं नाम नहीं था। केवल नायिकाओं के भोग-विलास, अभिसार और अन्य चेष्टाओं का वर्णन ही उनका मुख्य कविकर्म था किन्तु घनानन्द में ऐसी कोई भी बँधी परिपाटी नहीं थी। उनका काव्य उनके हृदय की मुक्तावस्था में ही

अभिव्यंजित किया गया था इस कारण उसमें अन्तःवृत्तियों का आलोड़न-विलो इन ही अधिक था। हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं को प्रत्यक्ष रूप देने में घनानन्द को जो सफलता मिली उसके विषय में रीतिकाल के कवियों को कोई ध्यान भी नहीं था। उनका काव्य तो उनके चमत्कारिक प्रयोगों का अखाड़ा मात्र था ठाकुर कवि ने इन रीतिकालीन कवियों के विषय में उचित ही कहा था—

> सीखिलीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
> सीखि लीनो जस औ प्रताप की कहानी है।
> सीखि लीनो कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामनि,
> सीखि लीनो मेरु औ कुबेर गिरि आनी है॥
> ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
> याको नहीं भूलि कहूँ बाँधियत बानी है।
> ढेल सों बनाय, आय मेलत सभा के बीच,
> लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानी है॥

अलंकारों की पिटी-पिटाई लीक पर ही कवि लोग अपना ध्यान केन्द्रित किये हुये थे। स्त्रियों के अंगों को कवियों ने अनेक रूपों से चित्रित करके काव्य का उद्देश्य ही सम्भवतः नखशिख को ही बना लिया था। भाषा की सजीवता शब्दों का सुन्दर चयन सभी कुछ इन रीतिकालीन कवियों में अपने चरमोत्कर्ष पर था किन्तु भाव-प्रवणता और भाव-गाम्भीर्य का जहाँ तक प्रश्न था वह इन कवियों में न्यून मात्रा में ही था। काव्य के बाह्य आवरण को सजाने में ही इन कवियों की प्रतिभा समाप्त हो जाती थी। शृंगार की उथली नालियों में ही यह कवि लोग अपनी प्रतिभा को नष्ट कर देते थे। यदि उस काल में स्वतंत्र शृंगार रस के गंभीर सागर में किसी ने डुबकी लगाई तो वह केवल कतिपय कवि थे। उनमें बोधा, ठाकुर और घनानन्द का नाम प्रमुख है। यह सम्पूर्ण कवि अपनी सच्ची अनुभूति को अभिव्यक्त करने के कारण उस काल में भी अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने में समर्थ हुये। प्रेम की गम्भीर और स्वाभाविक पीर का जितना सुन्दर रूनन्वय इन कवियों के काव्य में मिलता है उतना उस काल के कवियों

में देखने को नहीं मिलता। केवल देव ही एक ऐसे कवि अवश्य हैं जो रीतिकालीन वातावरण में भी अपनी मौलिकता को नहीं छोड़ सके। किन्तु उन पर भी रीतिकालीन उन मान्यताओं का इतना प्रभाव था इस कारण उनको रीतिकाल के कवियों के अन्दर ही स्थान मिला।

घनानन्द ने अपने काव्य की किसी भी परिपाटी एवं परम्परा के आधार पर नहीं रचा वरन् उसने तो अपने हृदय के उन उद्गारों को अभिव्यक्ति किया जिन्होंने उनको दिल्ली के भोग-विलास के वातावरण से हटाकर वृन्दावन की धूलि में लोटने को विवश कर दिया। घनानन्द की कविता हृदय के सच्चे भावोल्लास के रूप में निस्सरित हुई। उन्होंने उसको लिखने का प्रयास नहीं किया वरन् वह स्वतः ही उनके मुख से निकल कर उनके हृदय के भावोल्लास को रसिकों के सन्मुख प्रकट करने लगी। घनानन्दने स्वयं ही कहा है—

तीछन ईछन बान बखान सी,
पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्रानन प्यारे भरे अति पानिप,
मायल घायल चोप चढ़ावत॥
यों घन-आनन्द छावत भावत,
जान सजीवन ओर सों आवन।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत,
मोहि तो मेरे कवित्त बनावत॥

शृंगाररस का उदात्त रूप—इसमें कोई सन्देह नहीं कि घनानन्द ने भी रीतिकालीन कवियों की भाँति शृंगार-रस को ही अपने काव्य का चरम लक्ष्य रखा किन्तु उनके शृंगार और रीतिकालीन कवियों के शृंगार में एक बहुत बड़ा अन्तर था। रीतिकालीन कवियों ने भाव को उतनी प्रमुखता नहीं दी जितनी कि वस्तु व्यंजना को। बिहारी राधा के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं किन्तु सौंदर्य का इतना स्पष्ट रूप वह उपस्थित नहीं कर सके जितना कि यमक अलंकार के चमत्कार को प्रदर्शित करने में वह सफल हुये हैं—

तो पर वारौं उरबसी सुनि राधिके सुजान ।
तू मोहन के उर बसी ह्वै उरबसी समान ॥

उरबसी शब्द के चमत्कार की ओर कवि का ध्यान अधिक रहा है। परिणाम यह हुआ कि कवि जिस सौन्दर्य का चित्रण करना चाहता था वह उसकी राधा की उरबसी (आभूषण विशेष) में जाकर उलझ जाता है। इस दोहे में केवल सिर को हिला देने के अतिरिक्त और कुछ हो तो उन्हीं लोगोंके लिये जो दरबारी वातावरण में रह कर काव्य की परख करते रहे हैं।

रीतिबद्ध कवियों ने प्रेम का वर्णन किया किन्तु उनके प्रेम में शारीरिकता और मासलता की ही प्रधानता थी। उन कवियों ने नायिका के बाह्य शरीर को बड़ी रसिकता और सूक्ष्मता के साथ अपने काव्य में वर्णित किया है। उससे पाठक में ऐंद्रिकता और कामुकता का उद्दीपन ही हो सकता है भाव की विभोरता और तन्मयता का आभास उनको कहीं नहीं मिलता। काव्य शास्त्र के नियम उपनियमो को सन्मुख रखने के कारण इन रीतिकाव्य के प्रणेताओं की प्रतिभा उस सकुचित दायरे से बाहर नहीं जा सकी। बिहारी भी प्रेम के चित्र उपस्थित करने मे रीतिकाल के वातावरण से पूर्णरूप मे प्रभावित रहे हैं। नायक नायिका के साथ एक ककरीली गली से जा रहा है। नायिका के ककड़ी लगने से पीड़ा होती है और वह अपने मुख से जो सीवी करती है उसमें नायक को बड़ा आनन्द आता है। वह जानकर उसी मार्ग से चलता है ताकि नायिका के कंकड़ी चुभने से पीड़ा हो उससे वह पीड़ा को प्रकट करने वाली ध्वनियों से अपने को प्रसन्न कर सके।

नाक चढ़ै सीबी करै जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै प्यौ ककरीली गैल ॥

अजीब तमाशा है। प्रेमिका के तो वेदना के कारण प्राणों पर आ रही है और उधर उसके प्रिय को उसी वेदना में ही आनन्द आ रहा है। इस प्रकार के वर्णन प्रेम की गम्भीरता को कभी नहीं प्रकट करते। यह तो केवल

नायक की कामुकता को ही प्रगट करने में सफल है। प्रेम की गूढ़ता तो कुछ और ही वस्तु है। उस गंभीरता के दर्शन बिहारी में भी हैं किन्तु एक स्थान पर ही—

> प्रिय के ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
> आपु आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि॥

प्रेम की विभोरता और तन्मयता दोनों के ही दर्शन इस दोहे में मिलते हैं। प्रिय के ध्यान में प्रियतमा आरसी में अपने प्रतिबिंब को ही प्रियतम के रूप समझ कर प्रेमोन्माद की अवस्था में पहुँच जाती है। इस प्रकार के भावना मय चित्र रीतिकालीन कवियों में मिलते हैं लेकिन बहुत कम।

देव भी रीतिकालीन कवियों के प्रतिनिधि कवि हैं। लेकिन कहीं उनमें भी रीतिकालीन प्रतिबन्धों से आगे बढ़कर भाव की प्रबलता के दर्शन मिल जाते हैं और ऐसे स्थल उनके महत्व को अत्यधिक बढ़ा देते हैं—

> धार में धाय धसी निरधार ह्वै जाय फसी उकसी न अधेरी।
> री अँगराइ गिरी गहिरी गहि फेर फिरी न घिरी नहिं घेरी॥
> देव कछु अपुनो बसना, रस लालच लाल चितै भइ चेरी।
> बेगि ही बूड़ि गई पखियाँ अखियाँ मधु की मखिया भई मेरी॥

सौन्दर्य के प्रति नेत्रों के आकर्षण का कितना सुन्दर चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। यहाँ किसी प्रकार का चमत्कार प्रदर्शन नहीं किया गया। यह कारण है कि भाव के अभिव्यंजन में देव को सफलता मिली है। किन्तु जहाँ कवि अलकारों के चमत्कार प्रदर्शन में अपनी कला को लगा देता है वहाँ पर वह ठेठ रीति काव्य का प्रणेता हो जाता है।

घनानन्द का काव्य समग्र रूप से भावाभिव्यंजन को लेकर ही चला है उनमें प्रेम के चरमोत्कर्ष की झाँकी ही अधिक मिलती है। भावों के आलोड़न विलोड़न की ओर ही कवि का ध्यान अधिक गया है। रीतिकालीन कवियों की तरह वह भाषा, अलकार, और चमत्कार के विधान की ओर अधिक आकर्षित नहीं हुए।

रीतिकालीन कवियों ने राधा और कृष्ण को अपने काव्य का आलम्बन बनाया था किन्तु उन्होंने राधा को साधारण नायिका और कृष्ण को सामान्य नायक के रूप में ही चित्रित किया। किन्तु घनानन्द ने कृष्ण और राधा के उस पवित्र रूप को लिया जिसमें प्रेम-तत्व की प्रधानता रही। रीतिकालीन कवियों ने सकेत स्थलों के वर्णन, गुरुजनों को मूर्ख बनाने के उपायों में ही अपनी प्रतिभा का अपव्यय किया। किन्तु घनानन्द ने उस प्रेम को स्पष्ट किया जो कि उनके शरीर के रोम रोम में रम चुका था। उन्होंने उस प्रेम को अभिव्यंजित किया जिसे सरलता के साथ प्राप्त किया जाता है। चतुरता उस प्रेम के मार्ग में बाधक है। उस प्रेम को पाकर अपनत्व की भावना मिट जाती है। और इस प्रेम के मार्ग में कपटी और धूर्त लोग जाने में डरते हैं। घनानन्द ने मुक्त रूप से कहा—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेंकु सयानप बाँक नहीं।
जहाँ सूधे चलें तजि आपुनपौ झिझकें कपटी ते निसाँक नहीं॥

इस प्रकार की घोषणा करके घनानन्द ने रीतिकालीन कवियों को चेतावनी दी कि प्रेम का मार्ग बिल्कुल टेढा नहीं जैसा कि वह समझते थे। इस सरल प्रेम का सम्बन्ध हृदय से है। यह एक हृदय का दूसरे हृदय से सीधा सम्बन्ध है। इसमें किसी भी अन्य की आवश्यकता नहीं। रीतिकालीन कवियों ने प्रेम के रूप को न समझ कर केवल विलासप्रियता और कामुकता को ही प्रेम की सज्ञा दे दी थी। घनानन्द ने प्रेम को इससे विपरीत बतलाया। उसमें शारीरिक संबन्ध की तनिक भी चाह नहीं होती। केवल हृदय की उन तरंगों में ही बहना प्रेमियों को अच्छा लगता है। अपने प्रिय के ध्यान में प्रेयसी सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक बैठी रहती है। उसकी आँखें और कुछ भी नहीं चाहतीं केवल अपने प्रियतम के दर्शन ही उसको अभीप्सित है—

मोर तें साँझ लौं कानन ओर-निहारति बावरी नेंकु न हारति।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिवो तारनि सों इकतार न टारति॥
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घन-आनन्द आँसुनि औसर गारति।
मोहन सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति॥

धनानन्द के प्रेम के सम्मुख मछली का प्रेम भी कुछ नहीं। मछली अपने प्रेम में कायरता दिखाती है। वह अपने प्रिय से वियुक्त होकर अप प्राणों को ही छोड़ देती है। किन्तु घनानन्द को इस प्रकार की कायरता पस नहीं। उनको तो उस प्रेमी के वियोग में उत्पन्न वेदना और कसक सहन करने में भी एक असीम आनन्द मिलता है—

> हीन भये जल हीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि समानै।
> नीर सनेही को लाय कलङ्क निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै॥
> प्रीति की रीति सु क्यों समुझै जड़ मीत के पानि परै को प्रमानै।
> या मन की जु दशा घन-आनन्द जीव की जीवनि जान ही जानै॥

प्रेमिका के हृदय की दशा को जितना अच्छा उसका प्रिय जान सकता उतना और कोई नहीं जान सकता। इस प्रेम की ऊँचाई पर रसिक जन ही पहुँच सकते हैं। साधारण लोगों की कल्पना भी वहाँ पर नहीं पहुँच सक घनानन्द ने कृष्ण और राधा को आध्यात्मिकता देने का प्रयत्न सम्पू स्थलों पर किया है।

प्रेम की उच्चता को धनानन्द ने अपने शब्दों में इस प्रकार व्य किया है—

> प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै
> इहि बात की बात छकी।
> सुनि कै सब के मन लालच दौरै
> पै बौरै लखै सब बुद्धि चकी॥
> जग की कविताई के धोखे रहै ह्यां।
> प्रवीनन की मति जाति चकी॥
> समुझै कविता घन-आनन्द की।
> हिय आखिन प्रेम की पीर तकी॥

यहाँ पर कवि ने प्रेम की उदात्त भावना को पाठकों सन्मुख रख के उसक

यापकता को प्रदर्शित किया है। यह वासना का भोग नहीं वरन् आत्मा की वमोरता है।

घनानन्द ने शृंगार रस के दोनों पक्ष सयोग और वियोग का वर्णन बड़ी सफलता से किया है। किन्तु वहाँ भी उनका ध्यान भावगाम्भीर्य की ओर ही अधिक रहा है। सयोग में कृष्ण की रूप माधुरी से मत्त नयनों की दशा का चित्रण कवि की सफलता का परिचायक है। नेत्र छवि को निरख कर छक जाते हैं। उस मृगनयनी के नेत्र प्रेम से आर्द्र होकर विभोरता के भार से नमित हो जाते हैं और उसी समय आनन्दातिरेक की एक ऐसी लहर उस सुन्दरी के नेत्रों में थिरकती है कि उनमें चपलता के साथ २ आश्चर्य के भाव की झलक परिलक्षित होने लगती है। कभी पलकों को खोलती है और कभी उनको बन्द कर लेती है। इस रूप की उस असीमता को वह अपने नेत्रों में भर भर अघाती नहीं। कृष्ण के कटाक्ष की धार के सम्मुख वह प्रेम में बेसुध होकर एकान्त में आकर भी लाज से थकित हो जाती है—

> दृग छाकत हैं छवि ताकत ही,
> मृगनैनी जबै मधुपान छकै।
> घन-आनन्द भीजि हँसै सु लसै
> झुकि झूमति चौंकि पकै ॥
> पल खोलि ढकै लागि जात जकै
> न सभारि सकै झलकै ऽरु बकै।
> अलबेली सुजान के कौतुक पै
> अति रीझि इकौसी है लाज थकै ॥

प्रिय के सयोग में किन गूढ़ भावों के साथ राधा अपने पलग से उठती हैं—

> रस आरस भोय उठी कछु सोय
> लगी लसै पीक पगी पल कैं।
> घन-आनन्द ओप उठी मुख ओर

सु फैलि फबीं सुथरी अलकैं ॥
अँग राति जँभाति लसै अग अग
अनगाहि अग दियै झलकैं ।
अधरानि मे आधिय बात धरैं
लड़कानि की आनि परैं छलकैं ॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यहाँ पर कवि ने शृ गार की भावना को
प्रदर्शित किया है किन्तु इस भावना में नायिका की मनोदशाओं को चित्रित कर
की ओर भी कवि का ध्यान अधिक रहा है । उसने सयोग का विवरण इतना न
दिया जितना कि उन भावों का जो कि उस सुन्दरी के हृदय का परिचय दे
में समर्थ हैं । यदि रीतिकालीन कवि इस प्रकार के चित्रण को प्रस्तुत करता त
वह उस सयोग के अन्दर होने वाली घटनाओं की ओर अपने ध्यान को अधि
लगाता । किन्तु घनानन्द सर्वदा हृदय को ही खोलकर रख देने का प्रयत्न
करते हैं ।

✓वियोग पक्ष में भी कवि का ध्यान राधा और कृष्ण की उस वेदना
ओर रहा है जो उनके हृदय के तार तार को झकृत करने में समर्थ है । उन्हों
साँसों की सप्तावस्था के कारण शीतकाल में गरम हवाओं के चलाने का प्रय
नहीं किया और न उस गर्मी का ही वर्णन किया है जिसके कारण सखि
जाड़ो की रात मे भी नायिका के पास गीले कपड़ों को पहन कर जाती हैं और
उस विरह की अग्नि से धुआ ही इतना निकलता है जिसके कारण भोरा औ
कौआ काले होते हैं । यह तो केवल उस राधा के हृदय की अवस्था को कु
इस प्रकार का बना देता है कि उसे ससार में कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ भ
नहीं सूझता । वह कृष्ण की रट सी लगाती रहती है । विरह को नापने
प्रयत्न भी कहीं नहीं किया गया और न विरह की आग को सम्पूर्ण ज
को जलाने वाला ही कहा गया है ।

✓ घनानन्द की राधा तो अपने प्रिय से चातक और चकोर की भाति प्रे
करती है । विरह को वह अपने प्रेम की अनन्यता के लिये एक कसौटी मानत
है । उसे विरह के कारण मरना नहीं । वह तो प्रिय के ध्यान में इस विरह

काल को सरलता पूर्वक व्यतीत कर लेगी। लेकिन फिर भी अपने प्रियतम को उपालभ देने को उसका मन चाहता है और वह उन अतीत के चित्रों की स्मृति करते हुए अपने प्रिय से कहने लगती है—

क्यों हँसि हेरि हरयौ हियरा,
अब क्यों हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहे को बोले सुधासने बैननि,
चैननि मैन निसैन चढ़ाई ॥
सो सुधि मो हिय में घन-आनन्द
सालति क्यों हू कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीत की पाटी
इते पै न जानिये कौनैं पढ़ाई ॥

कितना मधुर उपालभ है। राधा नहीं पुकार रहीं वरन् इस कवित्त में विरहिणी का हृदय पुकार रहा है।

एक समय ऐसा था उस समय कृष्ण को राधा की तनिक सी दूरी भी सहन नहीं होती थी। यहाँ तक कि गले में पड़े हार के कारण जो अन्तर रहता था उसको भी पहाड़ के समान समझती थी किन्तु अब तो वियोग का भारी पहाड़ ही उनके सन्मुख आ गया है—

तब तौ छबि पीवत जीवत हे
अब सोचन लोचन जात जरे।
हित्पोष के तोष सु प्रान पले,
बिललात महादुख-दोष-भरे ।
घन-आनन्द मीत सुजान बिना,
सब ही सुख साज समाज टरे ।
तब हार पहार से लागत हे,
अब आनि के बीच पहार परे ॥

राधा कृष्ण को मीठे उपालम्भ दे रही है कि हे कृष्ण पहिले तो आपने मुझे प्रेम में रगकर अपना बना लिया और अब उस प्रेम को इस प्रकार तोड़ रहे हैं। आपने मुझे मँझधार में इस प्रकार डुबाने की क्यों ठान ली आपने तो मुझे आश्रय देकर अपना बनाया था और अब आप इस प्रकार निष्ठुर होते हैं। आपने मुझे प्रेम रस से सिक्त करके जीवन दान दिया और जीवन में आशा का सचार किया। मैं विश्वास कर बैठी थी किन्तु अब आप विश्वासघात कर मेरे हृदय को तोड़ रहे हैं—

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों
क्यों अब नेह कौं तोरिये जू।
निरधार अधार दै धार मँझार,
दई! गहि बाँह न बोरिये जू।
घन-आनन्द आपने चातक कों,
गुन बाँधि लै मोहन छोरिये जू
रस प्याय कै ज्याय, बढ़ाय कै आस,
बिसास में यों विष घोरिये जू॥

वियोग-जन्य दुःख को जिस सरलता से हम घनानन्द के काव्य में देखते हैं उस प्रकार रीतिकालीन किसी भी कवि के अन्तर्गत नहीं पाते। उन्होंने वेदना को मूर्तिमान करके दिखलाने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि बाबू श्यामसुन्दर दास जैसे विद्वान ने घनानन्द, बोधा और ठाकुर की अपनी पुस्तक 'भाषा और साहित्य' में मुक्त रूप से प्रशंसा की है—'रीति की परिपाटी के बाहर प्रेम सम्बन्धी सुन्दर मुक्तक छन्दों की रचना करने वालों में इन तीन कवियों का प्रमुख स्थान है। रीति के भीतर रहकर बँधे बँधाये विभाव, अनुभाव और संचारियों के सयोग से, और परम्परा प्रचलित उपमानों की योजना से काव्य का ढाँचा खड़ा करना कवि को विशेष ऊँचे नहीं पहुँचाता। प्रकृति के रम्य रूपों को सूक्ष्म दृष्टि से देखकर उन पर मुग्ध होना एक बात है और नायक नायिका की विहार-स्थली को उद्दीपन के रूप में दिखाना दूसरी बात है। एक में निसर्ग-सिद्ध काव्यत्व है, दूसरे में काव्याभास मात्र! उसी भाँति

अनेक नायक नायिकाओं के विभेद दिखलाते हुये, हावों आदि को पढ़ाकर देने में कवि की सहृदयता का वैसा पता नहीं लग सकता जैसा नता की अवस्था में प्रेम के मार्मिक उद्गारों और स्त्री पुरुष के मधुर र . के रमणीय प्रसंगों का स्वाभाविक चित्रण करने में। घनानन्द बोधा और ठाकुर (बुंदेल खंडी) तीनों ही प्रेम की उमंग' में मस्त सच्चे कवि हुये। यह ठीक प्रेम का लौकिक-पक्ष न ग्रहण करने के कारण उनकी कविता ऐकांतिक प्रेम सम्बन्धिनी अतः अलोकोपयोगी हो गई है, परन्तु उस काल की बधी परिपाटी से स्वतन्त्र होकर मनोहर रचना करने के कारण ये तीनो ही कवि हिंदी में आदरपूर्वक देखे जायेंगे।'

रामचन्द्र शुक्ल ने भी इनको रीतिकालीन प्रभाव से मुक्त ही माना है। अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में वह मुक्त रूप से घनानन्द की प्रशंसा करते हैं—'लौकिक-पक्ष पाकर ही वह भगवत्प्रेम में लीन हुये। कविता उनकी भाव-पक्ष प्रधान है। कोरे विभाव-पक्ष का चित्रण इनमें कम मिलता है। जहाँ रूप-छटा का वर्णन इन्होंने किया भी है वहाँ उसके प्रभाव का ही वर्णन मुख्य है। इनकी वाणी की प्रवृत्ति अन्तर्वृत्ति-निरूपण की ओर ही विशेष रहने के कारण बाह्यार्थ-निरूपक रचना कम मिलती है। होली के उत्सव मार्ग में नायक नायिका की भेंट, उनकी रमणीय चेष्टाओं आदि के वर्णन के रूप में ही वह पाई जाती है। संयोग का भी कहीं कहीं बाह्य वर्णन मिलता है किन्तु उसमें भी प्रधानता बाहरी व्यापारों या चेष्टाओं की नहीं है, हृदय के उल्लास और लीनता की ही है।'

घनानन्द के काव्य में प्रेयसी अपनी प्रेम-भावना को स्वयं ही व्यक्त करती है। उसे किसी दूती और सखी की आवश्यकता नहीं। रीतिकालीन परम्परा में दूती और सखी का प्रेम के परिपक्व कराने में एक विशेष स्थान था। वहाँ पर प्रेम की गहराइयों की ओर उतना ध्यान नहीं जितना कि नायक से मिल कर अपनी काम पिपासा को शान्त करने की चिन्ता थी। इसीलिये रीति-बद्ध कवियों की कविता समाज में अनैतिकता फैलाने में ही सहायक हुई। किस प्रकार कृष्णाभिसारिका और शुक्लाभिसारिका लोगों की आँख बचाकर संकेत-स्थल पर अपने नायक से मिलती हैं। किस प्रकार के संकेतों के द्वारा भरे

मयन में नेत्रों के द्वारा ही प्रेमालाप किया जाता है। कैसे खण्डिता नायिका अपने नायक का अन्य स्त्रियों से जो सबंध है उसको शरीर के चिन्हों के द्वारा पकड़ लेती है। किस प्रकार अज्ञात-यौवना अपने शरीर के विकास को देखकर ज्ञात यौवना से उनका कारण पूछती है। किस प्रकार नायक प्रिय के द्वारा चुम्बित किये पुत्र के मुख को चूमकर अपनी अदम्य वासना को तृप्त करती है और इस क्रिया से उसको पुलक हो जाता है। गर्भिणी स्त्री के नेत्र और शरीर की क्या दशा होती है ! किस प्रकार बच्चे को लेने के बहाने से लम्पट और धूर्त नायक अचानक ही नायिका के उरोजों का स्पर्श कर लेता है। इस प्रकार के अनेकों उपाय और तरीके बताने में ही रीतिबद्ध कवियों की प्रतिभा लगी रही। परिणाम यह हुआ कि समाज में कुत्सित मनोवृत्ति का प्रचार हुआ। कला का उद्देश्य है मनोवृत्तियों का परिमार्जन करना। जनता में उदात्त और पवित्र भावनाओं को प्रसारित करना। किन्तु रीतिबद्ध कवियों की कविता कुरुचि पूर्ण मनोवृत्ति को ही प्रोत्साहित करती थी यही कारण था कि २०० वर्ष की हिन्दी कविता में समाज की गति को रुद्ध करने वाले तत्वों की प्रधानता रही।

घनानन्द के काव्य में इस प्रकार के चमत्कार और कुत्सित विचारधाराओं को स्थान नहीं दिया गया। राधा और कृष्ण के कुछ शृंगारिक चित्रों को कवि ने उपस्थित किया किन्तु उन चित्रों को आध्यात्मिकता के रंग में रंगकर ही उपस्थित किया। परिणाम यह हुआ कि उनके काव्य के शृंगारिक चित्रों में अश्लीलता का वह दोष नहीं लगा जो रीतिकालीन परम्परा के पुजारियों के ऊपर थोप दिया गया। घनानन्द के काव्य में रति और संभोग के कितने ही चित्र हैं किन्तु उनमें भी सूरदास के समान आध्यात्मिक तत्व की प्रधानता है। साथ ही बाह्य चेष्टाओं और शरीर की अवस्था का चित्र कवि ने उपस्थित नहीं किया वरन् उस चरम-सुख की आन्तरिक भावना को व्यक्त करने में अपने सम्पूर्ण साधनों को जुटा दिया है। इसलिये उनके काव्य में खिलवाड़ नहीं होने पाई। घनानन्द का सम्पूर्ण काव्य उनके हृदय का बिम्ब प्रतिबिम्ब है। कहीं भी बुद्धि के चमत्कार से भावों की हत्या नहीं की गई।

रीतिकालीन कवियों में अलंकारों और अनुप्रासों के प्रयास में कविता का भाव पक्ष गौण हो जाता था उनका ध्यान इसी बात पर था कि अलंकार के

द्वारा किस प्रकार चमत्कार से लोगों को मुग्ध किया जा सकता है। घनानंद के काव्य में इस प्रकार के प्रयत्नों को स्थान नहीं। रीतिकालीन कवियों ने बिहारी, सेनापति, देव, ग्वाल, और पद्माकर कवि में अलंकार विधान की ओर ही अधिक ध्यान रहा है।

रीतिकालीन कवि—सेनापति का काव्य तो केवल अलकारों के विधान को लेकर ही चला है। एक तरफ में तो कवि श्लेष के द्वारा अर्थ के बिठाने में ही अपनी बुद्धि को घिस देता है। कहीं पर वह गोसाईं और भिखारी को एक साथ ही दिखलाता है। कहीं वर्षा और ग्रीष्म को एक ही कवित्त में श्लेष के द्वारा दिखाकर अपने को सरल कवि स्वयं ही मान लेता है। स्त्री के अंग प्रत्यंग के सौन्दर्य को देखकर कवि मुग्ध हो जाता है और स्त्री को कामदेव की वाटिका ही बना देता है—

> लाह सो लसति नग सोहत सिंगार हार,
> छाया छोन जरद जुही की अति प्यारी है।
> रमनीय रीस बाल अति हीं रसाल बनी,
> रूप माधुरी अनूप रंभाऊ निवारी है।
> जाति है सरस सेनापति बनमाली जाय,
> सींचे घन रस फूल भरी मैं निहारी है।
> सोभा सब जोवन की निधि है मृदुलता की,
> राजै नव नारी मानो मदन की बारी है॥

कहने का तात्पर्य यह है कि सेनापति के काव्य में अलकारों की सजावट को ही अधिक महत्व दिया गया है। कभी २ तो कवि ने ऐसा जादू किया है कि पाठक बरबस ही उनकी बुद्धि के घिसने की प्रशसा करने लगता है। इन्हीं कला बाजियों में कवि अपने काव्य को सार्थक समझता है।

बिहारीलाल रीतिबद्ध परम्परा के उन कवियों के अन्तर्गत हैं जिन्होंने हृदय की सूक्ष्माति-सूक्ष्म वृत्तियों की ओर अपना ध्यान कहीं-कहीं रखा है किन्तु उनके काव्य में भी अलंकारों के प्रति अधिक झुकाव है। किन्तु महाकवि बिहारी के

काव्य में यह अवश्य है कि उन्होंने अलकारो में अर्थालकारों को ही अधिक महत्व दिया। यदि शब्दालकारों का प्रयोग हुआ है वह तो कुछ स्थानों पर ही किया है—

निरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गभीर।
को घटि ये वृषभानुजा वै हलधर के बीर॥

श्लेष के द्वारा अर्थ में चमत्कार लाने का प्रयास है। इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं।

इसी प्रकार यमक के द्वारा भी कवि ने चमत्कार का विधान किया है—

कनक कनक सो सौ गुनी मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात हैं या पाये बौरात॥
तो पर वारों उरवसी सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन के उर वसी है उरबसी समान।

पद्माकर में भी अलकारों और अनुप्रासों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिये किया गया है—

'तीर पर तरनि तनूजा के तमाल तरे
तीज की तयारी ताकि आई तकियान हैं।'[1]

इसी प्रकार का अनुप्रासों का विधान एक नहीं कवि की रचना में भरे पड़े हैं—

'गुलगुली गिलर्मे गलीचा हैं गुनीजन हैं,
चाँदनी है चिक है चिरागन की माला है।
कहैं 'पद्माकर' त्यों गजक गिज़ा हैं सजी,
सेज है सुराही है सुरा है अरु प्याला है।
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हें,
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला हैं विनोद के रसाला हैं,
सुबाला हैं दुसाला हैं विसाला चित्रसाला है॥

इस प्रकार की अनुप्रास प्रियता काव्य में क्या सौंदर्य दे सकती है उसे प्रत्येक पाठक अनायास ही समझ सकता है। भाव नाम की कोई वस्तु इन कविताओं में ढूँढने से भी नहीं मिलेगी। इस प्रकार का चमत्कार केवल उन्हीं कवियों में अधिक रहा जो अपने आश्रयदाताओं की कुत्सित मनोवृत्ति को चमत्कार के द्वारा आकर्षित कर सम्पूर्ण दरबार को स्तमित करने का प्रयास करते थे।

ग्वाल कवि ने भी अपनी रचनाओं में इन चमत्कारिक प्रयोगों का विधान रखा है। उनकी रचनाओं में भी कला के निकृष्ट प्रयोग अनुप्रास-प्रियता का समावेश सर्वत्र है—

> गोरे गात वारी ग्वाल गोकुल गली में, जोकि
> गोरी करि दीनी परछाया मो अनन्द नै
> × × ×
> ताब मेहताब की न चारु चाँदनी की फाब दाब
> लीनी आब सब मेरे मुख चन्द नै॥

इस प्रकार का मोह रीतिबद्ध कवियों के काव्य में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। उन्होंने शब्दों के चयन की ओर जितना ध्यान रखा उतना भाव की खोज में समय नहीं लगाया। यही कारण था कि रीति के इन पुजारी कवियों की कविता शब्दों का आडम्बर बनकर रह गई। भाव को गौण स्थान दिया गया। सम्पूर्ण रीतिकालीन परम्परा के कवि उसी समस्या को सुलझाते रहे कि विलास और भोग के साधनों के गिना देने से क्या रस का परिपाक हो सकता है। कहीं सुराही लौर प्याला और हाला की चर्चा थी तो कहीं खस की और इत्रों की भरमार के द्वारा गर्मी का उपचार किया जा रहा था। सेनापति, पद्माकर आदि कवियों ने तो इस प्रकार के अनर्गल वर्णनों से ही काव्य को भर दिया।

घनानन्द ने अपने काव्य को अनुभूति प्रधान रखकर चमत्कार के विधान को सर्वत्र बचाया। किन्तु कहीं कहीं पर जहाँ अलकार और अनुप्रासों का प्रयोग हुआ भी है वह भावातिरेक के साथ अचानक ही हो गया है। इस-

लिये उनके काव्य में अलकारों ने भाव-सौंदर्य को नष्ट नहीं किया। भाव सर्वदा अपनी मुक्त और व्यापक अवस्था को बनाये रखते हैं। अलकार और अन्य कला के बाह्य उपकरण कवि के प्रयास से नहीं सजाये गये। एक हौ सवैये में आप देख सकते हैं कि भाव और वृत्तियों के स्वाभाविक उत्कर्ष में अनुप्रासों का प्रयोग कितना सहायक हुआ है—

मोर तें साँझ लौ कानन ओर
निहारति बावरी नेंकु न हारति।
साँझ ते मोर लौं तारनि ताकिबो
तारनि सौं इकतार न टारति।
जौ कहूँ भावतौ दीठि परै
घन-आनन्द आँसुन औसर गारति।
मोहन-सोंहन जोहन की
लगियै रहै आँखिन के उर आरति।

अनुप्रासों के प्रयोग में कवि की बुद्धि का चमत्कार बिल्कुल नहीं। स्वतः ही भाव तरंग के साथ उन्होंने अपने को उचित स्थान पर लगा लिया है।

रीतिबद्ध कवियों का प्रभाव :—धारा के विरुद्ध-चलने वाले व्यक्ति को अचानक ही सफलता नहीं मिलती। जिस समय कोई मनुष्य किसी नदी की धारा में बहाव के विपरीत चलता है तो उस विरोध के लिए कभी कभी उसको उस धारा में बहना पड़ता है। घनानन्द को भी इसी प्रकार रीतिबद्ध परम्परा का विरोध करना था। यदि वह उस अगाध सरिता के प्रवाह के विरोध में अपनी सम्पूर्ण शक्ति को लगा देते तो हो सकता था कि वह उस धारा को चीर कर अपने पथ को प्रशस्त नहीं कर पाते। किन्तु उन्होंने रीतिकालीन उस प्रमुख धारा के कुछ प्रचलित तत्वों को अपनाने का प्रयत्न भी किया। नायिका भेद, नखशिख वर्णन आदि के कुछ उदाहरण उनके काव्य में भी मिल जाते हैं। कारण भी स्पष्ट है। जनता की रुचि एक लम्बे समय से जिस मार्ग का अनुसरण कर रही थी उस मार्ग से उसे हटा देना एक साथ सरल नहीं था। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं लेना

चाहिये कि घनानन्द ने जागरूक होकर यह सब किया। यह तो उन परिस्थितियों का प्रभाव था जो उस समय के वातावरण को आच्छन्न किये हुये थीं, फिर घनानन्द पर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता। क्योंकि खडिता और अन्य नायिकाओं के वर्णन में भी वह आन्तरिक सौंदर्य की ओर ही अधिक झुके हैं। रीतिबद्ध कवियों की उस अश्लीलता को उन्होंने अपने काव्य में स्थान नहीं दिया। रीतिकालीन कवियों के समान उन्होंने शृंगार-रस को ही अपनाया किन्तु उसमें भी उन्होंने सयत होकर ही काम लिया। रीतिबद्ध कवियों ने सयोग शृंगार में अपने कुत्सित एवं जघन्य विचारों का समावेश करने में स्वतन्त्रता से काम लिया है। किन्तु घनानन्द ने सयोग शृंगार को प्रधानता न देकर वियोग की ओर ही अपना ध्यान आकर्षित किया है और इस प्रकार उनके वियोग वर्णन में मर्मस्थल की सुन्दर झाँकियाँ हैं। वियोग की मात्रा को ऊहात्मक वर्णनों के द्वारा नापने का प्रयत्न नहीं किया गया।

नायिका भेद के कुछ उदाहरण घनानन्द के काव्य में मिलते हैं। प्रौढा-धीराधीरा का एक उदाहरण रीतिबद्ध कवियों के भाव की समानता का परिचायक है—

रूप के भार न होति है सौंही
लजौंही ये डीठ सुजान पै भूली।
लागि ये आनन लागी कहूँ
निशि जागत ही पलको गति भूली।
बैठिये जू पिय बैठन आजु
कहा कहिये उपमा समतूली।
आये हो भोर भये घन-आनन्द
आँखिन मोंझ तौ साँझ सी फूली॥

देव कवि ने भी इसी प्रकार की एक उक्ति अपनी नायिका के द्वारा अभि-व्यंजित कराई है—

रावरे पाँयन ओठ लसैं
पग गूंजरी वार महावर ढारी।

सार अमारी हिये लहकै
छलकै छवि छोरन घुन घुनारी।
आहुन आहु दुराहु न मोसों
देव जू चन्द दुरै न अन्ध्यारी।
देखौं हौं कौन सी छैल छिपाय
तिरीछे हँसै वह पीछे दिहारी॥

कवियों ने इस प्रकार के वर्णन करना अपना उद्देश्य बना लिया था। बिहारीलाल ने तो अनेक प्रकार की उक्तियों के द्वारा नायिका से नायक को लज्जित कराने का प्रयत्न किया है—

पावकु सौ नयनन लगै जावक लाग्यो भाल।
मुकुर होउगे नेक में मुकुर बिलोकौ लाल॥
पल सोहैं पगि पीक रंग छल सोहैं सब बैन।
बल सोहैं कत कीजियत ए अलसोहैं नैन॥

घनानन्द ने प्रोषितपतिका नायिका का वर्णन तो अनेक स्थानों पर है। इसमें उनको रीतिबद्ध कवियों की परम्परा का अनुगामी कहा जा सकता है क्योंकि उस समय प्रोषितपतिका नायिका का वर्णन प्रत्येक कवि के काव्य में मिलता है। लेकिन रीतिबद्ध परम्परा के कवियों ने उन उक्तियों में चमत्कार का प्रयोग अधिक किया था। घनानन्द की प्रोषितपतिका नायिका अपने हृदय की वेदना को लेकर ही चली है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि घनानन्द के काव्य में प्रोषितपतिका नायिका के वर्णन तो अवश्य हैं किन्तु उनमें रीतिकालीन कवियों की सी स्थूलता न होकर अन्तः वृत्तियों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म दशाओं का ही दिग्दर्शन कराया गया है। इस दृष्टि से देखा जाय तो उनकी प्रोषितपतिका नायिका भक्त कवियों की प्रोषितपतिका की श्रेणी में ही आती है। सूरदास नन्ददास भक्त कवियों में इसी प्रकार की हृदय की गहराई को ही अधिक पाते हैं। घनानन्द की प्रोषितपतिका नायिका में भी प्रेम की व्यंजना अधिक है—

कितकौं ढरिगो वह ढार अहो

जिन ,मोतन आँखिन ढोरत हे।
अरसानि गही वह बानि कछू
सरसानि सों आनि निहोरत हे।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनो
तब तो सब मौतिन मोरत हे
मन माँझ जो तोरन हीं की हुती
विसवासी सनेह क्यों जोरत हे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह भी प्रोषितपतिका नायिका का कथन है किन्तु इसमें जो गूढ़ प्रेम की व्यंजना है वह रीति परम्परा के किसी भी कवि में नहीं मिलेगी उदाहरणार्थ पद्माकर का एक सवैया उद्धृत किया जाता है। उससे अन्तर स्पष्ट हो जायेगा—

अब ह्वै है कहा अरविन्द सो आनन
चन्द के हाथ हवाले परयो।
पद्माकर भावे न भावे बनै
जिय ऐसे कछू बकसाले परयो।
इन मीन बिचारयो बध्यो वनसी
पुनि जाल के जाय दुसाले परयो।
मन तो मनमोहन के सग मो
तन लाज मनोज के पाले परयो॥

दोनों सवैयों से स्पष्ट है कि घनानन्द के द्वारा जिस गम्भीर भाव की व्यंजना की गई है वह पद्माकर के द्वारा न की जा सकी। भाव की उत्कृष्टता जो घनानन्द में है वह पद्माकर में नहीं।

खंडिता नायिका की कुछ उक्तियाँ अवश्य रीतिपरम्परा के अनुकरण पर ही हुई है। उनमें मौलिक भावो का समावेश नहीं हो सका। कुछ सवैये तो ऐसे प्रतीत होते हैं मानों रीतिबद्ध कवियों के भावों से ही ओतप्रोत करके रख दिये हों—

रूप के भार न होत हँसो ही
लजौंही ये दीठि सुजान पै भूली ।
लागियो बान न लागी कहूँ
निसि पागी तहीं पलको गति भूली ।
बैठिये जू हिय बैठत आजु
कहा उपमा कहिये समतूली ।
आये हो भोर भये घन-आनन्द
आँखिन माँझ तो साँझ सी फूली ।।

खण्डिता नायिका की एक और उक्ति में भी इसी प्रकार नायक पर व्यंग है—

रति रंग रागे प्रीति पागे रैन जागे नैन
आये अब इतै घूमि झूमि छवि के छके ।
सहज विलोल भये केलि की कलानन में
कबहूँ उमँगि रहे कबहूँ अके थके ।
नीकी पलकन पीक लीक झलकन सो है
रस बल- कन धन मदन कदूस के ।
सुखद सुजान घन-आनन्द जू पोषे प्रान
अचरज आँखिन उघारे लाज कोट के ।।

खण्डिता के उपर्युक्त उद्धरणों में रीति परम्परा के कवियों के से भावों को ही दिखाया गया है। यदि घनानन्द और सुजान नाम को हटा दिया जाय तो उनकी इन रचनाओं को रीतिकालीन अन्य कवियों की रचनाओं में आसानी से मिलाया जा सकता है। एक अन्य कवित्त में तो केवल उक्ति का चमत्कार ही मिलता है—

जान प्यारे नागर सुरूप गुण आगर
उजागर सुजागर विलास रसमते हो ।
नवल सनेह साने आरसनि सरसाने

बिधना बनाय बाने अग अंग लसे हो।
छबि निबरे हो बड़े नीके ही लगत मोहि
आनद के घन गढ़ गॉसन से मसे हो।
मोर भये आये भाँति भाँति मेरे मन भाये
एहो घर बसी राति कौन घर बसे हो ॥

खण्डिता की इस प्रकार की उक्तियाँ रीतिकालीन कवियों के काव्य में प्रमुखता से हैं। नायिका वाक्य चातुर्य के साथ नायक को अपराधी घोषित करती है। इस प्रकार के वाक् चातुर्य को उस काल के रसिकों के द्वारा आदर दिया गया और उसी का यह परिणाम था कि घन-आनन्द जैसे प्रेम के उपासक कवि के ऊपर भी उस परम्परा का प्रभाव पड़ गया। आगे एक और उदहरण देकर दिखाया जाता है कि किस प्रभाव में आकर घनानन्द की कविता अपने स्वाभाविक गुण को छोड़ कर शाब्दिक जालों की रचना में लगी—

लोचन लाल गुलाल भरे
कि खरे अनुराग सौं भाग जमाये।
कै रस बावर चौचद मे
छतिया पर छैल नखक्षत छाये।
भीजि रहे अति नीर सुजान
घरी डग हू डग होत सुहाये।
भोर हू ऐसी खिलारन पै
घन आनन्द की छल छूट न पाये॥

पद्माकर के एक कवित्त में खण्डिता नायिका का वर्णन केवल उक्ति का चमत्कार मात्र है। नायिका किस प्रकार नायक के चिह्नों को देखकर अपने भावों को परिवर्तित करती है। इस भाव को ही यह उक्तियाँ परिलक्षित करने का प्रयास मात्र है—

बैठी परजक पै नवेली निरशंक जहाँ
जागी ज्योति जाहिर जवाहिर की जागे ज्यों।

कहैं पद्माकर कहूँ ते नन्द नन्द तहाँ
औचक हू आप अललाय प्रेम पागे ज्यों ॥
भरकोंहे पलन पिया के पीक लीक लखि
मुकि भहराइ हू नेक अनुरागे त्यों ।
वैसे ही मयक मुखी लागत न अक हुती
देखि कैं कलक ऐसी अक अब लागे क्यों ॥

रीतिकालीन काव्य परम्परा का अगर कहीं घनानन्द पर प्रभाव है तो वह ऐसे स्थलों पर ही अन्यथा कवि ने अपने भाव के उदात्त रूप की सर्वदा रक्षा की है। स्वाधीनपतिका नायिका का चित्रण भी घनानन्द के काव्य में मिलता है। परकीया स्वाधीनपतिका को उन्होंने अपने काव्य में अधिक स्थान दिया है। रीति परम्परा के कवियों का सा अनुप्रास प्रेम भी यत्र तत्र है और किन्तु उच्च कोटि का ही है—

अँगुरीन लौं जाइ भुलाइतहीं,
फिरि आइ लुभाय रह्यौ तरवा ।
चपचाइन चाइ ही एड़िन हूँ,
छपछाय छकी छवि छाइ छवा ।
घनआनँद यों रस भीति भिजो,
कबहू बिसराम न लोक नवा ।
अलबेली सुजान के पाइन पाइ,
परो न टरो मन मेरो भवा ॥

उपर्युक्त सवैये में कवि ने केवल यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि सुजान के पैरों की सुन्दरता को देखकर मेरा मन इतना मुग्ध हुआ कि वह अब उनको भुला भी नहीं सकता। इसके अतिरिक्त और क्या भाव कवि दिखाना चाहता है वह हमारी बुद्धि में तो आता नहीं। हाँ दो स्थानों पर अनुप्रास के सौन्दर्य को अवश्य यहाँ दिखाया गया। सम्पूर्ण पद केवल शब्दों का आडम्बर मात्र है इसके अतिरिक्त और कुछ-नहीं। घनानन्द जैसे कवि में यह रीतिकालीन

प्रभाव अधिक नहीं लेकिन फिर भी उनकी रचनाओं में अनेकों स्थल इस प्रकार के हैं जहाँ इस परम्परा का अनुकरण अनजाने में ही हो गया है—

रति साँचे ढरी अछिवाइ भरी,
परवीन गुराई पै पेखि पगै।
छवि घूमघरै मुरै मुरवान सों,
लोभी खरै रसझूम पगै॥
घनआनँद एड़िन आन मुहै,
तरवान तरे ते भगै न डगै।
मन मेरौ घने डरवाइ नचै,
तुव पायँन लाग न हाथ लगै॥

इस प्रकार के वर्णनो का घनानन्द की कविता में आधिक्य नहीं। यह तो केवल उस वातावरण का प्रभाव है जिसने शताब्दियों तक हिन्दी साहित्य के ऊपर अपना प्रभाव जमा रखा था।

फारसी काव्य का प्रभाव—घनानंद की भाषा पर भी उस काल के कवियों की भाषा का प्रभाव है या कहना चाहिये कि उस काल में फारसी शासक वर्ग की भाषा होने के कारण प्रत्येक कवि पर अपना कुछ न कुछ असर अवश्य डालती थी। घनानन्द के ऊपर भी ऐसा प्रभाव है। वियोगवेलि और इश्क-लता तो उस काल की उस प्रेम परम्परा के ही प्रतीक हैं जो सूफी सन्तों के प्रभाव से उस काल के साहित्य में अपना घर बना चुकी थी। पीर की चर्चा कवि ने वियोगवेलि में इस प्रकार की है—

लिखौं कैसे पियारे प्रेम पाती।
लगी अँसुअन भरी है ठूँक छाती
अनोखी पीर प्यारे कौन पावै।
पुकारौं मौन मैं कहिबौ न आवै॥

इश्कलता में तो कवि ने स्पष्ट रूप से प्रेम की पीर को वर्णित किया है। फारसी के शब्दों की भी भरमार है—

इश्क शहर के बीच है यह अकह कहानी।
अलकों से बाँधे रहे महबूब गुमानी॥
रहौ खुशी महबूब नन्द के मनमाने तित आवौ जू।
कदी-कदी घनआनँद जानी इन गलियन भी आवौ जू॥

'वियोगवेलि' की भाषा ब्रज है लेकिन उसमें कवि ने जो छन्द चुना है वह फ़ारसी भाषा का है। इसके अतिरिक्त उसमें जिस वियोग और प्रेम को कवि लेकर चला है उस पर भी फ़ारसी काव्य-पद्धति का ही प्रभाव है। जो रीति-काल के अधिकतर कवियों पर था। भारतीय प्रेम में वीभत्स चित्रों को उपस्थित नहीं किया जाता किन्तु फ़ारस के प्रेम में प्रेमी और प्रियतमा दोनों ही अपनी आँखों से आँसू के स्थान पर रक्त बहाने लगते हैं। इस प्रकार के वर्णन सूफी कवि जायसी, कुतुबन आदि में भी भरे पड़े हैं। घनानन्द में भी कुछ इस प्रकार के वर्णन हैं—

सैन कटारी आसिक उर पर तैं यारा झुकमारी है।
महर लहर ब्रजनन्द यार दी जिन्द असाडी प्यारी है॥

इसी प्रकार इश्कलता का एक और उदाहरण है—

पल पल प्रीति बढ़ाय हुआ बेदरद है।
आसिक उर पर जान चलाई कर्द है॥

'सुजान हित' 'कृपाकंद' आदि में भी इस प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं।

कारी कूर कोकिला कहा कौ बैर काढ़ति री
कूकि कूकि अब ही करेजौ किन कोरि लै।
× × × ×
× × × ×
जौ लौं करैं आवन विनोद बर सावन वे
तौ लौं रे ढरारे बजमारे घन घोरिलै।

इस प्रकार यदि घनानन्द के काव्य को व्यापक रूप से देखा जाय तो उसमें उस काल की प्रचलित परिपाटियों और मान्यताओं का समावेश भी मिल

जाता है। किन्तु ऐसा करने में कवि का सजग प्रयत्न कदापि नहीं वह तो केवल उस काल के वातावरण का प्रभाव था जिससे घन-आनन्द ने बचने का प्रयत्न किया था। लेकिन इस अवस्था में भी उनके ऊपर उस काल की प्रवृत्तियों के कुछ छींटे अवश्य पड़े। यदि घनानद के काव्य को पूर्ण रूप से देखा जाय तो उनके काव्य में भक्त कवियों का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। उनके पद भक्त कवियों का ही अनुकरण है। लेकिन यदि उनकी अन्य रचनाओं पर प्रकाश डाला जाय तो वह शृंगारी कवि ही प्रतीत होते हैं। शुक्लजी के शब्दों में उन्होंने काव्य के आन्तरिक पक्ष की ओर ही अधिक ध्यान रखा इस कारण इन पर वह दोष नहीं लगाया जा सकता जो रीतिकालीन कवियों पर लगाया जाता है।

घनानन्द ने काल की धाराओं के उदात्त रूपको ही अपनाया। उन्होंने शृङ्गार रस में ही काव्य की रचना की किन्तु शृंगार के उदात्त रूप को ही उन्होंने प्रस्तुत किया। यही कारण है कि शुक्ल जी ने उनको रीतिकाल के स्वच्छन्द कवियों में घोषित किया। उनकी कलाको भावनाप्रधान माना। वाह्यपक्ष की सजावट की प्रधानता से घनानद की कविता को मुक्त माना और उन्होंने अत. वृत्तियों के चित्रणों का सागोपाग रूप घनानन्द की कविता में ही बतलाया—

रीतिकालीन कवियों मे यह उस परम्परा में आयेंगे जो प्रेम की उमग के कारण ही कविता लिखते हैं। उन पर किसी राजा और सामत का प्रभाव नहीं था। घनानन्द, ठाकुर और बोधा की रचनाओं में प्रेमोल्लास को ही अधिक महत्व दिया गया इसलिये इनको हम वही स्वतन्त्र स्थान देंगे जो मुसलमान कवि रसखान को भक्तिकाल में मिला है।

घनानन्द की श्रृंगार भावना

शृङ्गार-रस की महत्ता—

आचार्यों ने शृङ्गार रस को सम्पूर्ण रसों में प्रमुख माना है और इस प्रकार इसका रसराजत्व स्वीकार कर लिया है। यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो शृङ्गार-रस की व्यापकता अन्य रसों की अपेक्षा अधिक है भी। मानव हृदय की मूल भावना प्रेम ही है जो कि शृङ्गार-रस का मूलाधार है। सम्पूर्ण सृष्टि का विकास इसी प्रेम अथवा रति नामक भाव का ही परिणाम है। शिशु अपने प्रारम्भिक जीवन में अपनी माँ के प्रति प्रेम करने लगता है। उसकी ज्ञानेन्द्रियों का विकास अभी तनिक भी नहीं हुआ किन्तु फिर भी वह अपनी माँ को न जाने किस दैवी प्रेरणा से प्रेम करता है। माँ के स्पर्श मात्र से ही वह समझ लेता है कि यह उसकी स्नेहमयी जननी है और यदि अन्य कोई उसको अपनी गोद में लेता है तो वह तुरन्त ही रो कर यह स्पष्ट कर देता है कि यह उसकी माँ नहीं। पशु पक्षियों में भी सर्व प्रथम रति-भाव का ही उदय होता है। गाय का बच्चा अपनी माँ की अनुपस्थिति में चिल्लाने लगता है। चिड़ियों के बच्चे अपनी माँ के आगमन पर घोंसलों में चीं चीं करके अपने प्रेम को व्यक्त करते हैं। सम्पूर्ण चराचर में इस प्रेम तत्व की ही सत्ता भासित हो रही है। भरत, रुद्रट आदि आचार्यों ने इस की महानता को स्वीकार किया है। प० रामदहिन मिश्र ने काव्यदर्पण में शृङ्गार-रस के विषय में भरत आदि विद्वानों के मत को इस प्रकार प्रकट किया है—"नौ रसों में शृङ्गार रस की प्रधानता है। भरत आदि आचार्यों ने इसकी प्रथम गणना की है। इसे आदि रस भी कहते हैं और रस-राज भी। कारण यह है कि इसकी तीव्रता और प्रभावशीलता सब रसों में बढ़ी चढ़ी है। दूसरी बात यह है कि काम विकार सर्व-जाति सुलभ, हृदयाकर्षक तथा अत्यन्त स्वाभाविक है। इस रस के प्रभाव में महामुनियों के

हृदय भी बदल गये हैं। उनका आसन डगमगा गया है। इसीलिए आचार्य कहते हैं कि नियमत: संसारियों को। शृङ्गार-रस का अनुभव होता है। अपनी कमनीयता के कारण यह सब रसों में प्रधान है।...... ..

नव रस सब ससार मे नव रस मे ससार।
नव रस सार सिंगार रस युगल सार शिगार॥

रुद्रट कहते हैं कि शृङ्गार रस आबाल-वृद्ध में व्याप्त है। रसों मे कोई रस नहीं जो इसकी सरसता को प्राप्त कर सके।"

शृङ्गार रस के आलम्बन नायक और नायिका ही निश्चित हैं जब कि अन्य रसों में इस प्रकार की कोई निश्चित बात नहीं। यही मुख्य कारण है जिससे मनुष्य का हृदय इस रस में जितनी स्वाभाविकता से रमता है उतना अन्य रसों में नहीं। मानव हृदय में रतिभाव सर्वदा उस परिपक्व दशा में है जो तनिक भी सहारा पाकर उद्दीप्त हो जाता है। अन्य रसों को उद्दीप्त करने मे तथा उन के अनुकूल स्थित उत्पन्न करने में कलाकार को अधिक प्रयत्न करना पड़ता है। नायक और नायिका इस आदि रस में अन्योन्याश्रित है। उनके पारस्परिक प्रेम के परिणाम स्वरूप ही शृङ्गार रस का परिपाक होता है। शृङ्गार-रस ही एक ऐसा प्रमुख रस है जो मानव जीवन को सम्पूर्ण परिस्थितियों मे किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है जब कि अन्य रसो में यह स्थिरता नहीं। वीर, करुण आदि अन्य रस एक विशेष स्थिति में उत्पन्न होकर तिरोहित हो जाते हैं। किन्तु प्रेम का साम्राज्य असीम है। यह कभी भी मनुष्य का साथ नहीं छोड़ता। प्रेम की इस महत्ता का प्रतिपादन नन्ददास जी ने बड़ी सुन्दरता के साथ किया है—

प्रेम प्रेम सों होय प्रेम सों पारहिं जइये।
प्रेम बन्ध्यौ ससार प्रेम परमारथ पइये॥

ससार का सम्पूर्ण कार्य-व्यापार प्रेम पर ही अवलम्बित है।

काव्यगत सौन्दर्य —सौन्दर्य की ओर आकर्षण ही प्रेम का मूल कारण है। सौन्दर्यानुभूति ही मनुष्य को आदि काल से आकर्षित करती रही है। आदि कवि बाल्मीकि से लेकर आधुनिककाल तक काव्यानुभूति का मूल कारण सौन्दर्य

ही रहा है और उसी को देखकर कवि का हृदय भावातिरेक में थिरक उठा है। सुन्दर ही काव्य का विषय है असुन्दर नहीं। यदि असुन्दरता का चित्र काव्य में प्रस्तुत किया गया है तो वह भी केवल सुन्दरता की अतिशयता को प्रकट करने के ही लिये। काव्य में बाह्य सौन्दर्य ही नहीं वरन् आन्तरिक सौन्दर्य को प्रमुख स्थान दिया जाता है। बाह्य-सौन्दर्य केवल पृष्ठ भूमि के रूप में प्रस्तुत होकर उस हृदय-गत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में अधिक उत्कर्ष लाता है। केवल बाह्य-सौन्दर्य का निरूपण काव्य में अपेक्षित नहीं। काव्य में कलाकार संसार के आन्तरिक-सौन्दर्य को ही व्यक्त करके अमर कलाकार बनता है। यही कारण है कि महाकवियों की रचनाओं में हृदय को सत्त्वाविष्ट्ड वृत्तियों को ही अधिक अङ्कित किया गया है। रीतिकाल की कविता में बाह्य सौन्दर्य की ओर कवियों का ध्यान अधिक रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि उस काल की कविता उच्च कला के आसन पर आसीन न हो सकी किंतु भक्तिकाल के महाकवियों ने बाह्य सौन्दर्य के साथ २ उस आन्तरिक सौन्दर्य की पर्तों को भी खोल कर रखा जो प्रत्येक मनुष्य को रसानुभूति प्रदान करने में सहायक होते हैं। सूर और तुलसी ने अपने काव्य में सौन्दर्य के आन्तरिक तत्वों को ग्रहण किया और हिन्दी साहित्य के सूर और चन्द्रमा बनकर आज भी प्रकाशित हो रहे हैं।

शृङ्गार-रस की परम्परा—

शृङ्गार-रस के महत्व का प्रतिपादन भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में ईसा से पूर्व ही कर दिया था। शृङ्गार का उदय मानव में सर्व प्रथम हुआ। काम-वासना मनुष्य की सर्व प्रथम वासना थी और इसी वासना का परिणाम सृष्टि का विकास है। साथ ही नारी के प्रति आकर्षण ही इस रस का मूल कारण है। अग्नि पुराणकार ने भी शृङ्गार को आदि रस स्वीकार किया है—

> अक्षर ब्रह्म परम सनातनमज विभुम्,
> श्रायते: सहजस्तस्य व्यज्यते काऽदाप्यत,
> व्यक्तिः सा तस्य चैतन्य चमत्कार रसाह्वया,
> आनन्दस्य विकारोऽयं सोऽहंकार इतिस्मृत.
> ततोऽभिमानस्तत्रेदं समाप्तं भुवनत्रयम्,

अभिमानाद्रति सा चपरिपोषमुपेयिषु,
रागाद्भवति शृङ्गारो रौद्रस्तैक्ष्ण मान् प्रजायते,
वीरोवष्टम्भजः सकोचभूर्वो भत्स इष्यते,
शृंगाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणोरसः
वीराच्चाद्भुतनिष्पत्तिः स्याद्बीभत्साद् भयानकः

उपर्युक्त उद्धरण मे रति की उत्पत्ति ममता सवलित अभिमान मे मानी गई है और रति के द्वारा ही शृगार-रस की उत्पत्ति होती है।

काव्य दर्पणकार ने भी शृंगार-रस के महत्व का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—

शृंगंहि मन्मथोद्भेदस्तदाग मनहेतुकः
उत्तम प्रकृति प्रायो रसःशृगार इष्यते

समाज में आदिकाल से ही स्त्री के प्रति पुरुष का आकर्षण और पुरुष के प्रति स्त्री का आकर्षण एक प्राकृतिक नियम है। स्त्री के सौन्दर्य का चित्रण काव्य में प्राचीन काल से रहा है किन्तु सामाजिक नियमों की जटिलता स्त्री के पक्ष में उतनी उदार नहीं रही। स्त्री को भी पुरुष आकर्षक लगता है किन्तु इस सत्य को वह काव्य में स्पष्ट नहीं कर सकती। यही कारण है कि स्त्री अपनी स्वाभाविक इच्छाओं को उस स्वतन्त्रता से प्रकट नहीं कर सकी जिस प्रकार कि मनुष्य प्रकट कर सकता है। मीरा आदि कवयित्रियों की अभिव्यक्ति आध्यात्मिकता के आवरण में ही हुई। उन्होंने ईश्वर के प्रति ही अपने नारी हृदय के प्रेम का समर्पण किया। किन्तु पुरुष ने स्त्री को अधिकतर उसके लौकिक आधार पर ही रखकर देखा। कालिदास से लेकर आजतक अनेकों कवियो ने शृङ्गार-रस का आधार प्रमुख रूप से नायिका को ही रखा। उन्होंने सयोग और वियोग के दोनों पक्षों म नायिका के हृदय के भावों की अभिव्यक्ति की। शृङ्गार रस का स्रोत साहित्य में किसी न किसी रूप में प्रवाहित होता रहा। वीर गाथा काल और भक्तिकाल में भी शृङ्गार-रस का लोप नहीं हुआ वरन् उसकी धारा इनके दोनों रसों समानान्तर बहती रही जो रीतिकाल में अपने पूर्ण विकास पर पहुँच गई।

कालिदास ने मेघदूत में जो श्रृङ्गार रस की सरिता प्रवाहित की वह अनुपम थी। यक्ष की वियोग जनित वेदनाओं को जिस भावुकता के साथ महाकवि कालिदास ने अपने काव्य में अङ्कित किया वह अपनी समानता नहीं रखता—

नीवी बन्धोच्छ्वसित शिथिल यत्र बिम्बाधराणा
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपा—
न्ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥

सम्पूर्ण मेघदूत श्रृंगार के अनुपम वर्णनों से ही भरा पड़ा है। वियोगी यक्ष ने अपने हृदय के समस्त उद्गारों को इस काव्य में प्रकट किया है। सौन्दर्य का जो चित्र कालिदास के मेघदूत में मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है। यक्ष अपनी पत्नी के सौन्दर्य का चित्रण उपस्थित करता है—

तन्वी श्यामा शिखरि दशना पक्व बिम्बाधरोष्ठी,
मध्येक्षामा चकित हरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः
श्रोणीभारा दलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टि राद्येव धातुः ॥
तां जानीथा. परिमितकथा जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकी मिवैकाम
गाढोत्कण्ठा गुरुषु दिवसेष्वेषुगच्छत्सु बाला
जातामन्ये शिशिर मथिताम्पद्मिनी वान्य रूपाम् ॥

यक्ष के द्वारा उसकी पत्नी के सौन्दर्य का कितना सुन्दर चित्र कवि ने प्रस्तुत कराया है—'वह कृशाङ्गी है, यौवनवती है, पैने दाँतों वाली है, पके बिम्बाफल के ओष्ठों वाली, कटि भाग में क्षीण, चकित हरिणी के नेत्रों वाली, गम्भीर नाभि वाली, नितम्बों के भार से आलस करके चलने वाली, कुचों के भार से कुछ-कुछ झुकी मानो युवतियों के मध्य में ब्रह्मा की पहली सृष्टि सी, मुझ साथी के वियुक्त हो जाने के कारण चकवी के समान अकेली रहने वाली, थोड़ा बोलने वाली, मेरे प्राणों की प्यारी अथवा मेरा ही हृदय,' प्रेम की प्रतिमा तथा इन

वियोग के कठिन दिनों में शिशिर से कमलिनी की .सी कान्ति वाली यह सुन्दरी हो गई है।

संस्कृत के महाकवि श्री हर्ष ने शृङ्गार के चित्रण में अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया। दमयन्ती के रूप सौन्दर्य को प्रस्तुत करते हुए कवि ने उसके स्तनों का जो वर्णन प्रस्तुत किया है वह इस बात का प्रमाण है कि संस्कृत साहित्य में शृङ्गार रस को कितनी प्रमुखता मिल चुकी थी—

कलसे निज हेतु दण्डज किमुचक्रभ्रमकारिता गुणः।
स तदुच्चकुचौ भवन् प्रभाभरचक्रभ्रममातनोति यत्॥

हे नृप उस दमयन्ती के उच्च स्तनों को देख कर यह भ्रान्ति होने लगती है कि चक्रवाक पक्षी है अथवा लावण्य प्रभाव में घूमने वाले कुलाल दण्ड के निमित्त कलश हैं। अर्थात् दमयती के विशाल स्तन घड़ों के समान तथा चक्रवाक पक्षी के समान हैं और उन स्तनों की चारो ओर जो कान्ति फैल रही है उससे यह ज्ञात नहीं होता है कि वे स्तन हैं वरन् कान्ति पुंज में घूमने वाला भ्रमारथ है।

संस्कृत साहित्य में शृंगार को पद्य के अतिरिक्त गद्य में भी महत्व मिला। बाणभट्ट जैसे महाकवि ने तो संस्कृत गद्य में भी शृङ्गार रस की अजस्रधारा बहा दी। राजा तारापीड का वर्णन करते समय महाकवि कहता है—'तथाहि कदाचिदुल्लसत्कठोर-कपोल-पुलक-जर्जरित-कर्णपल्लवाना प्रणयिनीना चन्दन-जलच्छटाभिरिव स्मित-सुधाच्छविभिरभिषिच्यमानः, कर्णोत्पलैरिव लोचनांशुभिस्ता ड्यमानः, कुंकुमधूलिभिरिवाभरणप्रभाभिराकुलीक्रियमाण -लोल - लोचनः, धवला-शुककैरिव कर-नख-मयूख-जालकैराहन्यमान- चम्पक-कुसुम-दल मालिकाभिरिव भुजलताभिरावध्यमान., दण्डाधर-धूत-करतल-चलन्मणिवलय-कलकल रमणीयम, भतिरभसदलित-दन्त-पत्र-दन्तुर शयनम्, उत्क्षिप्त चरणतल गलदलक्तकलचशेखरम सरभस-काच-प्रदचूर्णित मणिकर्णपूरम्, उल्लसितकुच-कुम्भ गुरुपङ्क-पत्र-लवांकित प्रच्छदपटम्, अच्छश्रमजल लुलित गोरोचना तिलकरत्न-भङ्गम अनवरतरवशः सुरतमाततान।'

अर्थात् जिस समय राजा चन्दन जल की धारा के समान प्रिय युवतियों के

शृङ्गार रस के दर्शन होते हैं यह कोई नवीन मार्ग का अवलम्बन नहीं वरन् प्राचीन परम्परा का ही पिष्टपेषण है।

बज्रयान के प्रभाव से भी शृङ्गार की प्रधानता को काव्य में प्रोत्साहन मिला। जिसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर स्पष्ट है। कौलधर्म का सिद्धान्त वाक्य शृङ्गार को ही प्रधानता देता है—

'वामे रामा रमणकुशला दक्षिणे पानपात्रम्'

जयदेव ने तो हरिस्मरण का मार्ग ही विलास कला को मान लिया। विद्यापति ने भी अपने काव्य में शृङ्गार-रस को ही अपनाया।

हिन्दी के आदि काल में वीर रस की कविता का प्राधान्य अवश्य रहा। किन्तु शृङ्गार रस भी उसके साथ साथ चलता रहा। यदि चन्दवरदाई ने 'बज्जिय घोर निसान रान चहुआन चहुँदिस' आदि वीर-रस की कविता लिखी तो साथ ही उन्होंने यह भी लिखा—

'मनहुँ कला ससि भानु कला सोरह सो बन्निय।

भक्तिकाल में आकर शृङ्गार के रूप को आध्यात्मिक रंग मिला। जायसी कबीर आदि ने प्रेम और ज्ञान के आवरण से शृङ्गार को ढककर देखा। तुलसीदास और सूरदास ने भी शृङ्गार को संयत भाव से ही देखा। इतना अवश्य रहा कि रामकाव्य में शृङ्गार का भी एक मर्यादित रूप ही रखा गया किन्तु कृष्ण-काव्य में प्रेम की प्रधानता के कारण अथवा राधा और कृष्ण की विलास क्रीड़ाओं के कारण शृङ्गार के लौकिक पक्ष को ही महत्व दिया गया और उसको ही आध्यात्मिक रूप दिया गया। कृष्ण को ब्रह्म और गोपियों को आत्मा के रूपक में रख कर शृङ्गार की लौकिकता को अलौकिकता में परिणत कर दिया गया। इस अलौकिकता के कारण घोर से घोर शृङ्गार भी श्लील ही माना गया। सूरदास तथा अन्य कृष्ण-भक्त कवियों के संयोग वर्णन भी धार्मिक रूप में ही स्वीकार किये गये।

रीतिकाल में आकर कृष्ण के उस असामान्य रूप को एक सामान्य रूप में परिवर्तित कर दिया तथा गोपियों का स्थान अनेकों नायिकाओं ने ग्रहण कर लिया। लौकिक शृङ्गार को ही प्रधानता दे दी गई। अश्लील चित्रों के द्वारा

ही कवि लोग अपने आश्रयदाताओं की कुत्सित मनोवृत्ति को तृप्त करने लगे। संस्कृत साहित्य के लक्षण ग्रन्थों एवं सतसई आदि शृङ्गार प्रधान रचनाओं को आधार मान काव्यधारा प्रवाहित हो चली। संयोग के अश्लील चित्रों की ओर रीतिकालीन कवियों का ध्यान अधिक रहा। विरह वर्णन में ऊहात्मक वर्णन और चमत्कार का समावेश कर दिया गया विरह की नाप तोल की ओर ही इस काल के कवियों का ध्यान अधिक रहा। अन्तर्वृत्तियों को इनके काव्यों में उतना स्थान नहीं मिला जितना बाह्य-व्यापारों और क्रिया-कलापों को दिया गया। किन्तु बहुत से लोगों के इस प्रकार प्रवाह में बह जाने पर कुछ इस प्रकार के लोग भी थे जो अधिक विचार-शील थे और जिन्होंने अपने व्यक्तित्व को इस प्रवाह में बहाया नहीं। घनानंद, ठाकुर और बोधा इसी प्रकार के स्वतंत्र चेता थे।

घनानन्द का संयोग-शृङ्गार—

घनानन्द का काव्य भी पूर्ण रूपेण शृङ्गार रस से ही प्लावित है। शृङ्गार की भावराशि इनके काव्य में भरी पड़ी है। संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इनके काव्य में समावेश है। किन्तु वियोग की अन्तर्दशाओं को ही इस सुजान के वियोगी ने अधिक महत्व दिया। सूरदास ने भी अपने काव्य में संयोग और वियोग दोनों का समन्वय किया है। उनके प्रेम में रूप लिप्सा और साहचर्य दोनों का योग है। बालक्रीड़ा के सखा सखी यौवन क्रीड़ा के सखा सखी हो जाते हैं। किन्तु घनानन्द के प्रेम में रूपलिप्सा का योग तो अवश्य है किन्तु साहचर्य का उतना विस्तृत वर्णन नहीं जितना सूर के काव्य में मिलता है। संयोग पक्ष में कृष्ण की लीलाओं को उतनी प्रमुखता नहीं दी गई, न उनकी यौवन कालीन क्रीड़ाओं को ही अधिक महत्व दिया गया है। इतना अवश्य है कि रूप के माधुर्य के कारण ही कृष्ण की ओर गोपियों का आकर्षण होता है। घनानन्द ने कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन किया है और उसी भावुकता और तल्लीनता से किया है जिससे अन्य कृष्ण भक्त कवियों के काव्यों में पाया जाता है :—

मोर चन्द्रिका सिर धरैं, गरें गुंज की माल।
धातु चित्र कटि पीतपट, मोहन मदन गुपाल॥
अति कमनीय किशोर बपु, गोपीनाथ उदार।
कमल नैन क्रीड़ा निपुन, कान्हर गोप-कुमार॥
काम केलि क्रीड़ा कुसल, कलानाथ रसवन्त।
गोवरधन बासी सदा, गोप-कामिनी-कन्त॥
लटलहानि-जोबन उदै, ब्रजमोहन अंग अंग।
महारूप सागर उमगि, उठति अमोघ तरंग॥

श्याम का रूप रूपी अंजन ही घनानन्द की राधा के नेत्रों में लगता है। घनानन्द की गोपियाँ भी मुरली की मधुर ध्वनि की ओर आकर्षित होती हैं।

घनानन्द ने राधा की रूप माधुरी को भी संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत दिखलाया है। उनके शरीर की ओर ही कवि का ध्यान नहीं रहा वरन् उनके हाव भाव और चेष्टाओं को भी सूक्ष्म दृष्टि से चित्रित किया है। राधा की चितवन लज्जा के आवरण से युक्त और गम्भीर भावों से पूर्ण है। उसकी कटाक्ष पूर्ण आँखें अत्यन्त ही चंचल और सुन्दर हैं। राधा का मुख सौन्दर्य की निधि है, उसका मस्तक भी रुचिर है। जिस समय वह स्मित का प्रसार करती है उस समय रस धीरे २ निचुड़ने लगता है। जिस समय राधा हँसती है उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसके वक्षस्थल पर पड़ी मोती की माला सम्भवतः उसकी हँसी की ही चमक है। इस प्रकार चंचल राधा का एक एक अङ्ग और उसकी चेष्टायें यह प्रदर्शित करती हैं कि उसके अङ्ग में अनङ्ग का रङ्ग पूर्णरूप से व्याप्त है—

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी
लसति ललित लोल चख तिरछीन में।
छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यान में॥
दसन दमकि फैलि हियें मोती माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि में।

आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल
अंगनि अनग-रग ढुरि मुरजानि मे ॥

इसी प्रकार प्रेम में छकी राधा का एक और चित्र घनानन्द की शृङ्गार प्रियता को स्पष्ट करने को पर्याप्त है—

छलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि व्है।
हँसि बोलन मे छवि फूलन की, बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै।
लट लोल कपोल कलोल करै, कलकंठ बनी जलजावलि द्वै।
अङ्ग अङ्ग तरंग उठै दुति की, परि है मनौं रूप अबै धरच्वै ॥

सूरदास के काव्य में कृष्ण और राधा का प्रेम रूप की ओर आकर्षित होने पर ही हुआ था—

खेलन हरि निकसे व्रज खोरी
गये स्याम रवितनया के तट अङ्ग लससि चन्दन की खोरी
औचक ही देखी तहँ राधा नैन विसाल भाल दिये रोरी
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगोरी

कृष्ण ने राधा से प्रश्न किया कि हे गोरी तुम कौन हो, कहाँ रहती हो और किसकी बेटी हो। राधा इस पर अपने कुल का गौरव प्रदर्शित करते हुए कहती हैं—

'काहे कौं हम व्रजतन आवति खेलव रहति आपनी पौरो'

इस प्रकार का संभाषण घनानन्द के कृष्ण और राधा में तो नहीं मिलता। हाँ एक स्थान पर एक गोपी और कृष्ण का संभाषण अवश्य कराया गया है जिसमें गोपी और कृष्ण एक दूसरे से व्यंग्यात्मक शैली में वार्तालाप करते हैं—

गोपी—छैल नये नित रोकत गैल मुकैलत कापै अरैल भये हो।
ले लकुटी हँसि नैन नचावत बैन रचावत मैन-तए हौ।
लाज अँचै बिन काज खगौ तिनहीं सौं पगौ जिन रग रए हौ।
पैंड सबै निकसैगी अबै घनआनन्द आनि कहा उनए हौ ॥

मोर चन्द्रिका सिर धरैं, गरैं गुंज की माल।
धातु चित्र कटि पीतपट, मोहन मदन गुपाल॥
अति कमनीय किसोर बपु, गोपीनाथ उदार।
कमल नैन क्रीड़ा निपुन, कान्हर गोप-कुमार॥
काम केलि क्रीड़ा कुसल, कलानाथ रसवन्त।
गोवरधन वासी सदा, गोप-कामिनी-कन्त॥
लहलहानि-जोबन उदै, ब्रजमोहन अंग अंग।
महारूप सागर उमगि, उठति अनोप तरंग॥

श्याम का रूप रूपी अंजन ही घनानन्द की राधा के नेत्रों में लगता है घनानन्द की गोपियाँ भी मुरली की मधुर ध्वनि की ओर आकर्षित होती हैं।

घनानन्द ने राधा की रूप माधुरी को भी संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत दिखलाया है। उनके शरीर की ओर ही कवि का ध्यान नहीं रहा वरन् उनके हाव भाव और चेष्टाओं को भी सूक्ष्म दृष्टि से चित्रित किया है। राधा की चितवन लज्जा के आवरण से युक्त और गम्भीर भावों से पूर्ण है। उसकी कटाक्ष पूर्ण आँखें अत्यन्त ही चंचल और सुन्दर हैं। राधा का मुख सौन्दर्य की निधि है, उसका मस्तक भी रुचिर है। जिस समय वह स्मित का प्रसार करती है उस समय रस धीरे २ निचुड़ने लगता है। जिस समय राधा हँसती है उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसके वक्षस्थल पर पड़ी मोती की माला सम्भवतः उसकी हँसी की ही चमक है! इस प्रकार चंचल राधा का एक एक अङ्ग और उसकी चेष्टायें यह प्रदर्शित करती हैं कि उसके अङ्ग में अनङ्ग का रङ्ग पूर्णरूप से व्याप्त है—

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाव भरी
लसति ललित लोल चख तिरछीन में।
छवि को सदन गोरो वदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यान में॥
दसन दमकि फैलि हियें मोती माल होनि,
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि में।

आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल
अगनि अनंग-रग ढुरि मुरजानि मे ॥

इसी प्रकार प्रेम में छकी राधा का एक और चित्र घनानन्द की शृङ्गार प्रियता को स्पष्ट करने को पर्याप्त है—

छलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत कानिनि छ्वै ।
हँसि बोलन में छवि फूलन की, बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै ।
लट लोल कपोल कलोल करैं, कलकंठ बनी जलजावलि द्वै ।
अङ्ग अङ्ग तरग उठै दुति की, परि है मनौं रूप अबै धरच्वै ॥

सूरदास के काव्य में कृष्ण और राधा का प्रेम रूप की ओर आकर्षित होने पर ही हुआ था—

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी
गये स्याम रवितनया के तट अङ्ग लसत चन्दन की खोरी
औचक ही देखी तहँ राधा नैन विसाल भाल दिये रोरी
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन नैन मिलि परी ठगोरी

कृष्ण ने राधा से प्रश्न किया कि हे गोरी तुम कौन हो, कहाँ रहती हो और किसकी बेटी हो। राधा इस पर अपने कुल का गौरव प्रदर्शित करते हुए कहती है—

'काहे कौं हम ब्रजतन आवति खेलत रहति आपनी पौरी'

इस प्रकार का समावेश घनानन्द के कृष्ण और राधा में तो नहीं मिलता। हाँ एक स्थान पर एक गोपी और कृष्ण का समावेश अवश्य कराया गया है जिसमें गोपी और कृष्ण एक दूसरे से व्यंग्यात्मक शैली में वार्तालाप करते हैं—

गोपी—छैल नये नित रोकत गैल सुछैलत कापै अरैल भये हो ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत बैन रचावत मैन-तए हौ ।
लाज अँचै बिन काज ग्वगौ तिनहीं सौं पगौ जिन रग रए हौ ।
ऐंड सबै निकसैगी अबै घनआनन्द आनि कहा उनए हौ ॥

किन्तु घनानन्द के कृष्ण भी चुप होने वाले नहीं थे। उन्होंने गोपी से स्पष्ट कह दिया कि तू क्या यह हमारी नई चाल देखती है। तू हमारी अकड़ को क्या ताना मारती है? तुझे क्या अपने बड़े २ नयनों का गर्व है जो इस प्रकार की उक्तियाँ कहती है। आज तुझे बिना कर लिये नहीं जाने दूंगा। पहले बचकर निकल गई है आज तो अपना अभीप्सित पूरा करके ही छोड़ूँगा–

> हैं उनए सु नए न कछू, उरटे कत ऐंड अमैड अयानी।
> बैन बड़े २ नैनन के बल बोलति क्यों है इती इतरानी।
> दान दिये बिन जान न पाइ है आइहे जो चलि स्वोरि बिरानी।
> आगे अछूती गई सो गई घन आनन्द आजु भई मनमानी॥

गोपी और कृष्ण के इस संवाद में कवि ने जिस प्रेम की व्यञ्जना की है वह अत्यन्त ही भावुकता पूर्ण है। व्यंग के द्वारा कृष्ण ने उसकी आँखों की प्रशंसा की है उसमें कृष्ण के आकर्षण का पता चलता है।

घनानन्द के संयोग पक्ष में रीतिकालीन कवियों की तरह तहखाने खसखाने का विलास नहीं। न घनानन्द की प्रेयसी को गुरुजनों के बीच में प्रिय को सिर से कमल लगाकर अपने प्रेम की पुष्टता की दुहाई देनी पड़ती है और न उसकी राधा आरसी में कृष्ण का प्रतिबिम्ब देखकर प्रेम की दृढ़ता का विश्वास दिलाने का ही कोई उपक्रम करती है। घनानन्द की राधा तो कृष्ण के प्रेम में इतनी पगी है कि उसको तो केवल कृष्ण की रूपमाधुरीको देखकर उसमें विभोर होने में ही आनन्द आता है। और आये भी क्यों न? घनानन्द के कृष्ण भी साधारण कृष्ण नहीं वह तो सुजान ही हैं। उनको तो कवि उसी प्रकार प्रेम करता है जिस प्रकार कि चातक बादल को करता है। घनानन्द के प्राणों को तो कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। वह तो अपनी बुद्धि, स्मृति, नेत्र, और वाणी को कृष्ण के ऊपर ही न्यौछावर कर चुके हैं। इनका काम कृष्ण के विषय में ही सोचना, उन्हीं के रूप सौन्दर्य का पान करना और उन्हीं के गुणों का उच्चारण करना है—

> मन जैसे कछु तुम्हें चाहत है सु,
> बखानिए कैसे सुजान ही हौ।

इन प्राननि एक सदा गति रावरे
बावरे लौं लगि है नित लौ ॥
बुधि औ सुधि नैननि बैननि में
करि बास निरन्तर अन्तर गौ ॥
उघरौ जग छाय रहे घन आनँद,
चातिक त्यौं तकियै अब तौ ॥

घनानन्द का ध्यान सयोग के उन प्रभावपूर्ण स्थलों की ओर ही अधिक रहा है जिनका सम्बन्ध हृदयगत भावों से अधिक है। सयोग वर्णन में जिस प्रकार रीतिकाल के कवि सकेतस्थल और मरगजी माला की ओर ही अपने ध्यान को अधिक आकर्षित करते थे उस प्रकार घनानन्द ने नहीं किया। उनके काव्य में तो आन्तरिक प्रभावों को ही अधिक दिखाया गया है। घनानन्द की नायिका की सुन्दरता को देखकर छवि भी लज्जित है। अन्य कवियों की प्रेमिकायें 'लाड़' (प्रेम) पाकर लाड़ली बनती हैं किन्तु घनानन्द के काव्य में प्रेमिका का शरीर ही लाड़ से निर्मित किया गया है—

तेरी निकाई निहारि छकै
छवि हू को अनूपम रूप कढ्यो है।
ईठि है दीठि पै नीठि कटाछनि
आप मनोज को चोज चढ्यो है॥
आनँद के घन राग सों पागि,
सुजान सुहागहि भाग बढ्यो है।
लाड़ ते लाड़िली होति है और,
पै तो तन लाड़हि लाड़ चढ्यो है॥

कृष्ण और राधा होली के रँग में व्यस्त हैं। राधा की अलकें सुगन्धि से युक्त होकर उसके मुख पर बिखरी हैं। यौवन की दीप्ति से चन्द्रमा भी फीका लगता है। राधा के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में जो शोभा है उसके सम्मुख सम्पूर्ण उपमान

देय हैं) राधा मोहन के साथ फाग खेल रही है जिसे देखकर गोपियाँ आनन्द से पुलकित होकर अपने वस्त्रों को गीला कर लेती हैं—

> सौंधे सनी अलकैं बगरी सुख,
> जोवन जोति सौं चन्दहि चोरनि ।
> अगनि रंग-तरंग बढ़ी सु,
> किती उपमानि के पानिय ढोरति ॥
> मोहन सौं रस-फाग मची,
> सु भली भई हौं लखते ही निहोरति
> आनँद के घन रीझनि भीजि,
> मिजै पठई कहा चीर निचोरति ॥

कृष्ण के प्रेम में गोपियाँ तन्मय हैं। उनके नैन और बैन में कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। गोपी गोरस बेचते-बेचते अपने प्रेम की अतिशयता में मोहन को बेचने लगती हैं—

> एक डोलै बेचति गोपालहिं दहेंड़ी धरे,
> नैननि समान्यौ सोई बैननि बनात है।
> × × ×
> × , × ×
> गोकुल-बधून की बिकानि पै बिकाय रहे,
> गोरस है गली-गली मोहन बिकात है ॥

प्रियतम के प्रेम में भरी गोपिका इतनी सुन्दर लगती है कि उसकी समानता कहीं खोजने पर भी नहीं मिलती। वह अत्यन्त प्रसन्न है। प्रेम के खेल की खिलाड़िनि है। डफ बजाकर गाली गाती है। प्रेमिका अत्यन्त ही सुकुमार है। जब वह मन्द गति से चलती है तो उरोजों के भार से उसकी कटि लचक जाती है। उसके पैरों के टलनों को देखकर दृग घायल हो जाते हैं—

पिय के ,अनुराग सुहाग भरी
रति हेरैं न पावत रूप-छकै।
रिझवारि, महा रसरासि-खिलार
सु गावत गारि बजाय टकै ॥
अति ही सुकुमारि उरोजनि भार
भरैं मधुरी डग लक-लकै।
लपटै घन-आनन्द घायल है
दृग पायल छ्वै गुजरी गुलकै ॥

इस प्रकार के अनेकों चित्र घनानद ने संयोग-पक्ष में दिखाये हैं। नायक नायिकाओं की प्रेम लीला सम्बन्धी अनेक सुन्दर और सूक्ष्म भावों को जिस मनोहरता के साथ इस भावुक कवि ने दिखाया है उस प्रकार का वर्णन रीति काल के ही नहीं वरन्; कृष्णभक्ति-धारा के कवियों में भी एक दो कवियों में ही मिलेगा।

रीतिकालीन कवियों के संयोग शृङ्गार में दूती और सखियों के द्वारा प्रेमी और प्रेमिकाओं के मिलन का प्रयत्न चलता रहता था किन्तु घनानद के काव्य में प्रेम एक आन्तरिक भावना है। इसमें किसी प्रकार की चतुरता दिखाने की आवश्यकता नहीं। और न किसी प्रकार की वक्रता की ही आवश्यकता है। यह तो आत्मा की पुकार है और यदि शारीरिक मिलन नहीं होता तो उसकी तनिक भी चिंता नहीं। यहाँ तो आत्मा का और परमात्मा का मिलन है। इसे कोई भी नहीं रोक सकता। घनानद स्वयं अपने इस प्रेम मार्ग का रूप स्पष्ट करते हैं—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
जहाँ सूधे चलैं तजि आपुनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥

घनानंद ने कृष्ण और राधा तथा अन्य गोपियों को संयोग-पक्ष के अन्दर अनेक क्रीड़ाओं में प्रवृत्त किया है। किंतु सूरदास के कृष्ण ने जितनी क्रीड़ाओं और लीलाओं में अपने संयोग काल को व्यतीत किया वह घनानद में नहीं। लेकिन फिर भी कुछ क्रीड़ाओं का सुन्दर वर्णन उनके काव्य में मिलता है।

संयोग-पक्ष में दानलीला, झूला और हिंडोले पर झूलना, होली के रंग में रंगना, वंशी निनाद, गोचारण आदि अनेकों लीलाओं को प्रदर्शित किया गया है। कृष्ण की वंशी, पीताम्बर आदि का सुन्दर चित्रण है। वंशी का जादू घनानंद के सम्पूर्ण काव्य में भरा पड़ा है—

कैसे धीरज रहै हाथ हमें मुरली-ध्वनि बौरावै हो।

बाँसुरी की तान ब्रज बालाओं की लज्जा का निवारण करके उनको प्रेम में रंग लेती है। वंशी की ध्वनि यमुना की गति को भी रोक लेती है—

मोहन के बदन निदाघ भरी तानें मिदि,
मीडियै लगति बत निलै सब डाटि लै।
मोरे नैन गोपिनि की लाजव्याज तोरि तोरि
ओर करि देति खेद बाधा ब्याई आदि लै।
ऐसी विषवासिनि बजाय बैर बाढति है
बादनि बरनि तें उसासनि उचाटि लै॥
बाँसुरी की बाजनि बिराबै बन ब्यापक ह्वै
देखौ गति जमुना की राखी रोप पाटि लै।

वृन्दावन की शोभा वैसे ही अत्यन्त रमणीय है और फिर उसमें कृष्ण का सौन्दर्य और भी चार चाँद लगा देता है। कृष्ण भी अकेले ही नहीं हैं उनके हृदय में राधा का सौन्दर्य विराजमान है—

स्याम मामें बसें यह बसै स्याम हिये सदा
मामें अब राधा बसै क्यों अब सो निहारिये।

घनानंद ने प्रेमिका में यौवनागमन के साथ २ आनन्द, उत्साह आदि नवीन सम्भावनाओं को दिखलाया गया है—

ललित उमङ्ग बेली अलि बाल अन्तर में
आनन्द के घन सींची रोम-रोम ह्वै चढ़ी।

आगम उमाह चाह छायौ सु उछाह रंग
अङ्ग अङ्ग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी ॥
बोलति बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग
दसा सुम सगुनौती नीकैं इनपै चढ़ी।
कंचुकी तरकि, मिलैं सरकि, उरजि, भुज,
फटकि सुजान, चोप-चुहल महा बढ़ी ॥

दृगों का 'दौरि दौरि' के बधाई देना कि यौवन रूपी महीपति का आगमन हो रहा है कितना सुन्दर और भावपूर्ण है। यौवनागमन पर नेत्रों में चचलता का आना स्वाभाविक है। किन्तु कवि ने जिस ढङ्ग से यहाँ पर उसे प्रदर्शित किया है उससे नेत्रों के क्रिया-कलापों का चित्र उपस्थित कर दिया है।

घनानन्द ने सयोग शृङ्गार में प्रियतम और प्रियतमा के सभोग एव विलास के चित्रणों को भी स्थान दिया है। किन्तु उन चित्रणों में भी कवि की अन्तर्दृष्टि भाव के सागर के अन्तस्तल में बैठकर ही वृत्तियों के अनेक मोतियों की खोज कर रही है। ऊपरी सतह पर घनानन्द ने अपनी दृष्टि को कभी नहीं गया। नायिका रात्रि को नायक के साथ विलास में प्रवृत्त रही। उस समय की शोभा का चित्रण घनानन्द की लेखनी ने कितना सुन्दर किया है—

रस आरस भोय उठी कछु सोय
लगी लसैं पीक पगी पलकैं
घन-आनन्द ओप बढ़ी मुख और
सुरैलि, गईं सुथरी अलकैं।
अगरानि जँभाति लसै सब अङ्ग
अनगहि अग। दिये झलकैं।
अधरानि में आधिय बात धरैं
लड़कानि की आन परैं छलकैं॥

प्रेमातिरेक से नायिका के नेत्रों के पलक झुक गये हैं। उसके मुख पर कुछ और ही प्रकार की दीप्ति व्याप्त होगई है जिसे कवि कहने में असमर्थ है। इस-

लिये ही उसने उसे 'और ही ओप' कहा है। वह कभी अँगड़ाई लेती है और कभी जँभाई लेकर अपनी तृप्ति का आभास दे रही है। उसके मुख से अस्फुट शब्द ही निकल रहे हैं। उसके मुख पर बच्चों का सा सारल्य झलक रहा है। उपर्युक्त सवैये में कवि की दृष्टि उन बाह्यव्यापारों की ओर नहीं गई जो कि नायक और नायिका के विलास के मध्य में हुये थे। और न बाह्य रूप-चित्रण को ही प्रधानता दी गई। कवि ने तो नायिका की आन्तरिक भावनाओं को उसकी चेष्टाओं, मुद्राओं और हावों के द्वारा प्रकट किया है। रीतिकालीन कवियों के समान न यहाँ दीपक बुझाने का अश्लील चित्रण है और न यहाँ नायिका की करधनी आदि आभूषणों की ध्वनि के द्वारा किसी अश्लील भावना को पुष्ट किया गया है। घनानन्द के संयोग वर्णन में तो उन भावों का ही चित्रण है जिनका सम्बन्ध हृदय से है। बिहारी में भी संयोग-वर्णन में इस प्रकार के आन्तरिक भावों को नायिका की चेष्टाओं और हावभाव के द्वारा ही स्पष्ट किया गया है। उन्होंने बाह्य चित्रणों में अपने हृदय को रमाया है किन्तु बहुत ही कम स्थानों पर। महाकवि बिहारी में आन्तरिक भावनाओं को भी कहीं कहीं अधिक महत्व दिया है—

मोंहनि त्रासनि मुख नटनि, आँखिन सों लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति कर इँची, आगे आवति जाति॥

इसी प्रकार विलास के पश्चात् के एक चित्र को देखिये—

रंगी सुरत रंग पिय हिये, लगी जगी सब राति।
पैड़ पैंड़ ठठकि चलै, ऐंड भरी ऐंड़ाति॥

घनानन्द ने भी इसी प्रकार आन्तरिक भावों को बाह्य-चेष्टाओं द्वारा ही व्यक्त किया है। साथ ही शृङ्गार भावना को परिपुष्ट करने के योग्य ही कोमल-कान्त पदावली भी है—

मुख स्वेद कनी मुखचन्द बनी
बिथुरी अलकावलि भाँति भली।
मद जोबन रूप छकी अँखियाँ
अवलोकनि आरस रंग रली।

घनआनँद श्रीपति ऊँचे उरोजनि,
चोज मनोज के ओज दली ।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली
सुजान मनोरथ बेलि फली ॥

संयोग की चेष्टाओं का एक और चित्र कितनी सरलता पूर्वक चित्रित किया गया है । सचारी भावों को किस स्वाभाविकता के साथ दिखाया है । संयोग में प्रेम की तल्लीनता और विमोरता का इतना सुन्दर चित्रण महाकवि की लेखनी ही कर सकती थी । प्रेम भाव को नेत्रों के सन्मुख इस रूप में चित्रित किया है कि मानो सम्पूर्ण भावों का चित्र ही उपस्थित कर दिया हो—

सोये हैं अङ्गनि अङ्ग समाये,
सुमोए अनङ्ग के रङ्ग निम्बौकरि ।
केलि कला रस आरस आसव,
पान छके घनआनँद यौं करि ॥
प्रेम निसा मधि रागत पागत,
लागत अङ्गनि जागत ज्यों करि ।
ऐसे सुजान विलास निधान हौ,
सोए जगे कहि ल्योंगिये क्योंकरि ॥

संयोग वर्णन में राधा और कृष्ण को सर्वत्र आनन्द ही दृष्टिगोचर होता ✓ है । राधा और कृष्ण के चारों ओर सुहावना वातावरण है । युगल जोड़ी प्रेम और आनन्द की तरङ्गों में डूब रही है—

अति सुगन्ध मलयज घनसार मिलाय, कुसुम जल सौं छिरकाय ।
उशीर सदन बैठे मदनमोहन सग लै राधा प्रान प्यारी रति रगनि
जमुना तीर बानीर कुंज, मंजु त्रिविधि पवन सुख पुंज
परसि रोमाच होत छबीले अगनि ॥
वृन्दावन सदनि दपति हुलसत बिलसत

ऐसे अपनी भरि भरि उमँगनि।
आनँदघन अभिलाष भरे भीजे सगम
रस सागर की अतुल तरगनि ॥

शृङ्गार रस के परिपाक में घनानन्द ने आलम्बन की चेष्टाओं और हाव-भावों को जिस सूक्ष्म दृष्टि से अङ्कित किया है वह उनकी प्रतिभा का परिचायक है। राधा और कृष्ण दोनों की अनेकों चेष्टाओं और मुद्राओं को इस भावुक कवि ने अपनी कविता में स्थान दिया।

सयोग शृङ्गार के अन्तर्गत कवि ने रासलीला, कृष्ण और राधा की अन्य विलास लीलायें, मुरलीवादन, होली का रंग, वृन्दावन की शोभा, कृष्ण और गोपियों का पारस्परिक प्रेम-विवाद आदि अनेकों विषयों को अपनी पदावली में स्थान दिया। इसमें सन्देह नहीं कि घनानन्द को जो सफलता शृङ्गाररस के परिपाक में सवैये और कवित्तों में मिली वह पदावली में नहीं। पदावली के पदों में केवल एक परम्परा का निर्वाह किया गया है। जिस प्रकार अन्य कृष्ण भक्तों ने अपने इष्टदेव की भक्ति को पदों में गाया था उसी प्रकार घनानन्द ने भी प्रयास किया। उन्होंने भी कृष्ण के जन्म से लेकर और लीलाओं को भी इन पदों में वर्णित किया किन्तु उनको इसमें केवल अपने इष्टदेव कृष्ण और राधा की लीलाओं को स्मरण कराने मात्र की ही सफलता मिली। इनके पदों में कृष्ण के ईश्वरत्व की झाँकी देने का भी प्रयत्न है। साथ ही उस आध्यात्मिक तत्व को भी दिखाने का प्रयत्न किया गया है जो कि निम्बार्क और वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तों में निहित था। काव्य-कला की दृष्टि से यदि देखा जाय तो पदावली में रस परिपाक नहीं होता। कला पक्ष भी बड़ा सरल और सगील तथा तुकों के अभाव के कारण पाठक बहुत ही शीघ्र उनसे ऊब जाता है। लेकिन फिर भी इन पदों में शृङ्गार के अनेक चित्रों को चित्रित करके अपनी भक्ति भावना को व्यक्त किया है। 'सुजानहित' और 'प्रेम-पत्रिका' आदि में लिखे सवैये और कवित्त भाव-पक्ष की सफलता के प्रतीक हैं। सयोग के जो कुछ वर्णन इन कवित्त और सवैयों में हुये हैं वे अत्यन्त उच्च कोटि के हैं और उनमें सयोग पक्ष की बहुरूपता के अनेक चित्र ऐसे हैं जो घनानन्द को महाकवि

स्वीकार करने को पाठक को विवश करते हैं। किन्तु यह प्रेम का पुजारी तो जीवन पर्यन्त वियोगाग्नि में जलता रहा। उसको मिलन का अवसर आने से पूर्व ही कृष्ण की शरण में आना पड़ा और अपनी सांसारिक प्रेम साधना को पारलौकिक रंग में रँगना पड़ा। कृष्ण ही सुजान प्यारी के स्थान पर उनके प्रेम-पीड़ित हृदय को साहस देते रहे। संयोग के वर्णन में घनानन्द को उतना आनन्द नहीं आया जितना वियोग-वर्णन में। वियोग वर्णन में कवि ने अपने हृदय का सम्पूर्ण भाव-कोष लुटा दिया। वियोग जन्य अवस्थाओं का जितना सुन्दर चित्रण इनकी कविता में मिलता है उतना सुन्दर सूर को छोड़कर अन्य किसी भी कृष्ण-भक्त कवि के काव्य में नहीं मिलता।

वियोग वर्णन—

प्रेम के अगाध सागर की थाह पाने को वियोग का महत्व माना गया है और इसकी अनेक अवस्थाओं के द्वारा ही प्रेम के गूढ़ तत्वों के दर्शन होते है। इसीलिये विद्वानों ने वियोग को प्रेम की कसौटी कहा है। जिस प्रकार कसौटी पर असली और नकली सोने की परख होती है उसी प्रकार वियोग की अन्तर्दशाओं के द्वारा ही प्रेम की गंभीरता का पता चलता है। संयोग में नायक और नायिका एक दूसरे के समीप रहते हैं इसलिये उनके प्रेम में स्थिरता रहती है एक समान गति रहती है किन्तु वियोग में उनके हृदय में अनेकों भाव तरंगें उठ कर एक भयंकर उथल पुथल मचा देती हैं। संयोग शृङ्गार में वासना और कामुकता का समावेश होना स्वाभाविक है किन्तु विरह की अवस्था में विरही की भावनायें उदात्त रूप धारण कर लेती हैं। वासनाओं का अन्धकार विलीन होकर प्रेम की उच्चभूमि के दर्शन होने लगते हैं। संयोग में केवल शारीरिक सुखों के आनन्द में ही मन लिप्त रहता था किन्तु वियोग में मन अनेक दशाओं में सचरण करता फिरता है। संयोग में प्रेमियों की दृष्टि संकुचित रहती है किन्तु विरह में उनकी दृष्टि संसार के व्यापक तत्वों को समझ लेती है और उसका प्रेम भी व्यक्तिगत सीमा के संकुचित घेरे से निकल कर संसार के व्यापक क्षेत्र में विचरण करने लगता है। उसकी कोई सीमा नहीं रहती। संसार की जड़ वस्तु भी विरही के लिये सहानुभूतिपूर्ण हो जाती है।

प्रेम में स्वार्थ का होना उचित नहीं। संयोग-श्रृङ्गार में प्रेमियों को शारीरिक सुख का स्वार्थ होता है इसलिए उसके प्रेम की पवित्रता में सन्देह रहता है। किन्तु वियोग की अग्नि में तपकर प्रेम सुवर्ण के समान उज्ज्वल और खरा हो जाता है। उसके सम्पूर्ण कलुष हट जाते हैं और उसके पश्चात् ही निस्वार्थ प्रेम की संज्ञा दी जाती है। यही कारण है कि संसार की उत्तमोत्तम काव्य-कृतियों में वियोग वर्णन को प्रमुख स्थान दिया गया। भारतीय महाकवियों ने भी संयोग से वियोग पक्ष को अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया।

वियोग का महत्व—संस्कृत के वाल्मीकि, कालिदास, हर्ष, आदि महाकवियों तथा हिन्दी के विद्यापति, जायसी, कबीर, सूर, तुलसी आदि महाकवियों ने विरह-वर्णन को अपने काव्यों में प्रमुख स्थान दिया। उन महाकवियों की आत्मा का रुदन विरहिणी की आत्मा में प्रवेश कर संसार को प्रभावित करता है। विरह की असीम वेदनाओं का सजीव चित्रण ही पाठकों को द्रवीभूत कर महाकवियों की उच्च भाव-भूमि पर उतार ले जाता है और अनायास ही उनकी महानता के सम्मुख मस्तक झुक जाता है। वियोग की पीड़ा को जो कवि जितनी सरलता के साथ चित्रित करेगा वह उतना ही सफल कवि होगा। वियोग की गम्भीरताओं को एवं जटिलताओं को प्रस्तुत करने ही महाकवि की उपाधि प्राप्त होती है।

महाकवि पन्त ने वियोग के महत्व का प्रतिपादन निम्नलिखित पंक्तियों में किया है—

> वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान
> उमड़ कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।

साहित्य दर्पणकार ने भी श्रृङ्गार रस में संयोग की परिपुष्टि के लिये वियोग श्रृङ्गार का होना आवश्यक कहा है—

> 'न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते
> कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते'

तात्पर्य है कि श्रृङ्गार-रस की पुष्टि बिना वियोग-श्रृङ्गार के नहीं हो सकती वस्त्र यदि 'कषायित' करके रँगा जाता है तभी उसके ऊपर अच्छा रंग चढ़ताहै।

महाकवि कालिदास ने विरह को अपने कई काव्यों में महत्व दिया । मेघदूत अभिज्ञान शकुन्तला आदि में मुख्य विषय विप्रलम्भ शृङ्गार ही है । महाकवि ने यक्ष के विरहोद्गारों को वर्णन करके ही एक ऐसा काव्य लिखा जो कि संसार के काव्यों में अपनी समता नहीं रखता । अपनी प्रिया यक्षिणी के संयोग पक्ष की स्मृतियाँ उसकी वेदना को तीव्र कर देती हैं और वह अपनी प्रिया के दुख की कल्पना करके अत्यन्त दुखी होता है—

> उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्यवीणा
> मद्गोत्राङ्कं विरचित पदं गेयमुद्गातुकामा ।
> तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचि-
> द्भूयो भूयः स्वयमपि कृता मूर्च्छना विस्मरन्ती ॥

(अर्थात् हे सौम्य ! या वह मेरे नाम के रचित पदों को ऊँचे गाने की इच्छा करती हुई, मैले वस्त्र वाली, गोदी में वीणा रखकर अपनी आँखों से निस्सरित जल से भींगे तारों को जैसे-तैसे पोंछकर और अपनी तानों को भी बार-बार भूलती हुई आपको मिलेगी ।)

प्रिय को अपने हृदय की वेदना के साथ-साथ अपनी प्रेमिका के हृदयगत भावों का भी ध्यान रहता है । यक्ष को अपनी उतनी चिन्ता नहीं जितनी कि अपनी यक्षिणी की चिन्ता है । मेघ को सन्देशवाहक बनाने वाला यक्ष उसे समझा देता है कि यदि वह विरह-व्यथिता यक्षिणी सो रही हो तो उसको जगा मत देना वरन् अपनी गरज को बन्द कर एक पहर ठहर कर प्रतीक्षा कर लेना । कहीं ऐसा न हो कि मेरी प्रिया स्वप्न में मेरे गाढालिंग में हो और तुम्हारी गरज से उसकी भुजलता की गाँठ कण्ठ से तुरन्त छूट पड़े—

> तस्मिन काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखास्या-
> दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व ।
> मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचि
> त्सद्यः कण्ठच्युत भुजलता ग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥

कालिदास ने हृदय की सच्ची अनुभूति को अभिव्यक्त करके ही अपनी कवित्व

की है। सूफ़ी दर्शन में विरह को अधिक महत्व दिया गया। नागमती के विरह-वर्णन ने जायसी के 'पद्मावत' को अमरता प्रदान की। नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य में अपना उच्च स्थान रखता है। कवि ने विरह के द्वारा लौकिक प्रेम को आध्यात्मिकता प्रदान करके अपने सम्प्रदाय एवं मत के दृष्टि-कोण को जन साधारण के लिये सुगम बना दिया। नागमती के हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म वृत्ति को कवि ने विरह की प्रधानता के कारण ही सफलतापूर्वक दिखाया है।

सूर और तुलसी के काव्य में भी विरह की प्रधानता स्वीकृत है। सूर ने तो स्पष्ट कहा कि प्रेम की प्रगाढ़ता विरह के कारण ही होती है—

'ऊधो विरहौ प्रेम करै'

वास्तविकता भी इसी में है। विरह की कठिनाइयाँ ही प्रेमियों की प्रेम-साधना को स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर ले जाती हैं। संयोग में प्रेमी और प्रेमिका को सामीप्य के सुख का अनुभव रहता है। सर्वदा सुख, विलास और क्रीड़ाओं के उपभोग में ही दोनों रत रहते हैं। किन्तु वियोग में उन सुखों की कल्पना ही उनको अधिक उद्दीप्त करती है।

तुलसी के राम भी सीता के विरह में अपनी महानता को छोड़कर साधारण मनुष्य के समान ही व्यथित होकर अपने विरहोद्गारों को व्यक्त करते हैं। प्रेम की अतिशयता में उनको पशु और मनुष्य का भेद नहीं रहता। वह उन्माद की अवस्था में आकर खग, मृग और मधुकर श्रेणी से मृगनयनी, सीता को पूछने लगते हैं।

उपरोक्त कवियों में विरह की प्रधानता इस बात की परिचायक है कि कवियों ने विरह को इसीलिये अधिक महत्व दिया क्योंकि यह एक ऐसी दशा है जो कि प्रत्येक मनुष्य को समान भाव-भूमि पर लाकर खड़ी कर देती है। आत्मा और परमात्मा को भारतीय दार्शनिकों ने अंश-अंशी के रूप में माना था। आत्मा उस परमात्मा से ही पृथक होकर इस संसार में रहती है और उस वियोग में वह जीवन पर्यन्त उद्विग्न रहती है। कबीर ने आत्मा को विरहिणी का रूप

देकर निर्गुण भक्ति की पद्धति को जन्म दिया। आत्मा और परमात्मा के इसी रूप को वैष्णव आचार्यों ने अपनी सगुण भक्ति में स्थान दिया। कृष्ण को परमात्मा स्वरूप मानकर समस्त गोप-गोपी समुदाय को निम्बार्क और वल्लभ ने आत्मा रूप मानकर ही अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। यही कारण है कि उनके सम्प्रदाय में विरह को अधिक उच्च स्थान मिला। कृष्ण के विरह में समस्त व्रजमण्डल व्यथित हो गया। सूर की अमरता का मुख्य कारण उनका विरह-वर्णन ही है। गोपियों के विरहोद्‌गारों का चित्रण सूर की रचनाओं को उच्च कोटि की भाव-प्रवणता प्रदान कर गया। सम्पूर्ण कृष्णकाव्य विरह की प्रधानता को ही प्रदर्शित करता है।

रीतिकालीन कवियों में विरह के अनेक रूपों के दर्शन मिलते हैं। बिहारी देव, मतिराम, सेनापति, घनानन्द, ठाकुर, बोधा पदमाकर आदि अनेक कवियों ने विप्रलम्भ शृङ्गार को अपने काव्य में अधिक महत्व दिया और वियोग की अन्तर्दशाओं का इतना सुन्दर चित्रण किया जो हिन्दी साहित्य का अक्षय भंडार है। किन्तु साथ ही इन रीतिकालीन कवियों के विरह वर्णन में चमत्कार का प्रयोग होने से कहीं-कहीं उनका वियोग वर्णन ऊहात्मक और खिलवाड़ मात्र ही रह गया। बिहारी जैसे महाकवि के काव्य में, भी इस प्रकार के, दोषों का अभाव नहीं। केवल घनानन्द, ठाकुर और बोधा आदि इस प्रकार के कवि थे जिन्होंने विरह की बाह्य अवस्थाओं को न दिखाकर आन्तरिक अवस्थाओं को ही अधिक दिखाया। इन कवियों ने विरहिणी की करुणोत्पादक अवस्था के साथ-साथ उसके हृदय के उतार-चढ़ाव की ओर अधिक ध्यान दिया। इसमें सन्देह नहीं कि इन कवियों के वियोग-वर्णन में भी रीतिकालीन प्रभाव का कहीं-कहीं समावेश हुआ है लेकिन फिर भी उनके काव्य में अन्त वृत्तियों के चित्रण की ओर ही अधिक ध्यान रहा। यही इन कवियों की विशेषता है जिसके कारण ये रीति-मुक्त कवि प्रसिद्ध हुये।

घनानन्द का वियोगवर्णन—घनानन्द के काव्य में वियोग को दो कारणों से प्रधानता दी गई—प्रथम तो कवि को अपनी प्रेमिका सुजान का वियोग, था और द्वितीय निम्बार्क और वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण। किन्तु यदि ध्यानपूर्वक

देखा जाय तो सुजान का वियोग ही मूल कारण था जिसने उनके हृदय के भावों की सच्ची अभिव्यक्ति को उनके काव्य में प्रदर्शित किया। उनके हृदय का कोना-कोना उस विरहाग्नि से तचकर आहत हो गया और उसकी वेदना ही उनके काव्य में प्रस्फुटित हुई। उन्होंने अपनी प्रेमिका को ही कृष्ण के रूप में देखा किन्तु उनकी आत्मा में उसी की वियोगाग्नि प्रज्ज्वलित होती रही। 'सुजान हित' नामक शीर्षक के अन्तर्गत लिखी उनकी सम्पूर्ण कवितायें उनके वियोगी हृदय की पुकार हैं।

वियोग में सयोगावस्था की स्मृति—वियोगिनी को अपने प्रियतम की स्मृति ही विरह में जीवित रखती है। संयोग के सुखद क्षणों की याद करके उसके हृदय में वेदना का संचार होता है और भविष्य में उसी प्रकार के सुखों को उपभोग करने के लिये ही उस विरहावस्था में भी उसके प्राण उसको नहीं छोड़ते। अपने प्रियतम की छवि की स्मृति करके प्रियतमा व्यथित होती है। वह अपने उन रूप के प्यासे नेत्रों को कृष्ण की छवि से तृप्त करने को बेचैन है। उसको कृष्ण की मुरली बजाने की मुद्रा, उनका मन्द-मन्द मुस्कराना देखने और मधुरता पूर्वक मीठी-मीठी बच्चों की सी उक्तियाँ सुनने की इच्छा जाग्रत होती है। उसके विरह की ताप उन्हीं कृष्ण के दर्शनों से दूर होगी—

छवि को सदन मोद मण्डित बदनचन्द,
तृषित चखन लाल कबधौं दिखाय हौ।
चटकीलौ भेष करैं मटकीली भाँतिसौं ही,
मुरली अधर धरैं लटकत आय हौ॥
लोचन दुराय कछु मृदु मुस्काय नेह,
भीनी बतियानि लड़काय बतराय हौ।
बिरह जरत जिय जानि आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि आनँद कौ धन बरसाय हौ॥

प्रेमिका के लिये आवश्यक हो गया है कि वह अपने प्रेमी की रूप माधुरी का स्मरण करके ही अपने जीवन को व्यतीत करे। प्रेम की अनन्यता ही उसका उद्धार करेगी। प्रेमिका स्वय इस बात को कहती है कि अब उसके हिस्से में तो

सुजान (कृष्ण) की स्मृति ही आई है और सुजान के हिस्से में उसकी स्मृति को विस्मृत कर देना आया है। लेकिन वह तो फिर भी अपने प्रेम में दृढ़-प्रतिज्ञ है। उसने कृष्ण को पूर्ण रूप से अपना बना लिया है। उनके मन में जो कुछ आये उसे करें उसे तो अपने प्रेम को समान रूप से ही निभाना है। अब तो प्रियतम की संयोगावस्था की बातों के सहारे ही जीवन व्यतीत करना है। प्रेमिका वियोग की अवस्था में भी अपनी प्रबल इच्छा इसी बात में प्रकट करती है कि उसका प्रियतम सुखी और कुशलता पूर्वक रहे—

'इत बाँट परी सुधि, रावरे भूलनि कैसे उराहनौ दीजिये जू।
अबतौ सब सीस चलाय लई जु कछू मन भाई सु कीजिये जू॥
घनआनँद जीवन प्रान सुजान! तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ तुम्हे चाट कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू

प्रेमिका उस प्यार की दुहाई दे रही है जिसको प्रियतम ने उसके ऊपर प्रदर्शित किया था। प्रेम प्रदर्शन करने के मनोरम हाव-भाव अब इस वियोगावस्था में आकर उसके दुख का निवारण क्यों नहीं करते? उस समय तो प्रियतम ने प्रेम का ऐसा रूप दिखाया कि प्रेयसी को भ्रम में डाल दिया। लेकिन अब न जाने वह प्रेम कहाँ चला गया। अगर प्रियतम को ऐसा ही विश्वासघात करना था तो प्रथम ही इस प्रेम नाटक को न खेलना चाहिए था

'कितकौं ढरिगो वह ढार अहो जिहि मोतन आँखिन दोरत हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सों आनि निहोरत हे॥
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ तब यौं सब भाँतिनि मोरत हे।
मन माँहि जो तोरन ही की हुती, विसवासी सनेह क्यों जोरत हे॥'

संयोग की अनेकों स्मृतियाँ उस वियोगाग्नि को प्रज्ज्वलित तो करती ही है किन्तु साथ ही प्रियतम की रूप माधुरी उसके नैनों के सम्मुख आकर उसको वही आनन्द देने लगती है जो कि उसको संयोगावस्थामें देती थी। इस प्रकार कुछ समय के लिये वह उस वियोग की विषमता से छुटकारा पाती है।

मानसिक अवस्थाओं की अनेकरूपता—

घनानन्द ने अपने काव्य में विरहिणी की मानसिक स्थितियों को अनेक रूपों में चित्रित किया है। प्रत्येक प्रेमी अपने प्रेम की दृढ़ता संसार में सम्पूर्ण प्रेमियों से अधिक मानता है। उसके हृदय की दशा कुछ ऐसी है जिसे कोई नहीं जान सकता। घायल की गति को तो घायल ही जान सकता है। मछली अपने प्रियतम नीर से वियुक्त होने पर अपने प्राणों का परित्याग कर देती है लेकिन वह मूर्खा है क्योंकि वह अपने प्रियतम को कलंक लगाती है। वह विरह की अग्नि में जलकर प्रेम के सच्चे रूप का अनुभव करने की शक्ति नहीं रखती। वास्तव में वह एक जड़ प्रेमी की प्रेमिका है उसे प्रेम की गम्भीरता का क्या बोध! किन्तु घनानन्द की विरहिणी अपने प्रियतम को अवश्य ही अपनी विरह-साधना के बल से अपने पास बुला लेगी। प्रेम की दृढ़ता ही उसे प्रिय से मिलाने में सहायक होगी—

> हीन भये जलमीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि समानै।
> नीर सनेही कौं लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै॥
> प्रीति की रीति सु क्यों समुझै जड़ मीति के पानि परे कौं प्रमानै
> या मनकी जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जानही जानै॥

विरहिणी प्रियतम से उसकी कराई के विषय में कहती है कि पहले तो उसने स्नेहपूर्वक मुझे अपना बना लिया और अब वह उस प्रेम में इस प्रकार की निष्ठुरता दिखलाता है। पहले तो मुझे मँझधार में डूबने से बचाया परन्तु अब मेरी बाँह को पकड़कर ही मुझे डुबा रहे हैं। कम से कम यह तो न करना चाहिये। मैं तो उनके प्रेम में उसी प्रकार अनुरक्त हूँ जिस प्रकार चातक बादल के प्रेम में होता है। मुझको प्रेम का रस पिला करके जीवित किया था और आशाओं का संसार मेरी आँखों में बसा दिया था। परन्तु अब विश्वास में इस प्रकार का धोखा देकर मुझे तड़पाकर मारा जा रहा है। उसकी यह रीति तो कुछ ठीक नहीं—

'पहिले अपनाय सुजान सनेह सौं क्यों फिर नेह कौं तोरिये जू।
निरधार अधार दै धार-मझार, दई ! गहि बाँह न बोरिये जू॥
घनआनँद आपने चातिक कौं, गुन बाँधिलै मोहन छोरिये जू।
रस प्यायकै ज्याय, बढ़ायकै आस बिसास में यौं बिस घोरिये जू॥

प्रियतम के प्रेम को प्रेमिका ने अपने हृदय में इस प्रकार सँजोया है कि उसको सोते में भी उसकी ही स्मृति आती है। प्रियतम के आलिङ्गन करने की उत्कट अभिलाषा ने उसके हृदय में एक घर बना लिया है। यही अभिलाषा उसकी सुप्तावस्था में भी उसके मुख से अचानक ही निकल पड़ती है। प्रेम की बात भला किस प्रकार सोचे उसे तो प्रेम-पत्र लिखने का अवसर ही नहीं मिल पाता—

जगि सोवनि में लगिये रहै चाह यहै बरराय उठै रतिया।
भरि अंक निःसंक ह्वै भेंटन कौं अभिलाख अनेक भरी छतियाँ
मननें मुख सों नित फेर बढ़ो कित ब्योरि सकौ हितकी बतियाँ
घनआनँद जीवनप्रान लखौ सुलिखौ किहि भाँति परै पतियाँ॥

प्रियतमा ने जिस प्रियतम के दर्शनों को प्राप्त करने के लिये लोक और कुटुम्ब वालों को देखना छोड़ दिया अब उसी ने इस वियोग-जनित अवस्था में उसके प्रति इतनी उपेक्षा दिखाई है। विरहिणी कहती है—'अरे निष्ठुर मुझे केवल तुझसे ही मोह था किन्तु तूने इतनी निष्ठुरता का व्यवहार किया जैसा शत्रु भी नहीं करते। तेरी कथा जो वियोग की अवस्था में विषवत लगती है मैं उसको भी सुधा के सदृश मानकर सुनती हूँ। अरे निर्दयी ! इस प्रकार निठुरता मत दिखला। प्रेम दिखलाकर कोई किसी को नहीं मारता। इस संसार में यह न जाने क्या विपरीत अवस्था है कि किसी को भी प्रेम करो वह उस प्रेम का बदला उपेक्षापूर्ण व्यवहार दिखलाकर ही देता है। किन्तु यह भी सत्य है कि अपने प्रेमी को मार कर किसी को भी चैन नहीं मिलता—

तेरे देखिबे कौं सबही त्यौं अनदेखी करी,
तू हू जो न देखै तो दिखाऊँ काहि गति रे।

सुनि निरमोही एक तोही सों लगाव मोही,
सोही काहि कैसे ऐसी निठुराई अति रे॥
विष सी क्यानि मानि सुधा-पान करौं जान,
जीवन निधान ह्वै बिसासी मारि मति रे।
जाहि जो मजै सो ताहि तजै घनआनँद क्यों,
हति कै हितून कहौ काहू पाई पति रे॥

प्रेमिका की स्मृति मे केवल अपना प्रियतम ही विद्यमान है और उसी के ध्यान में वह प्रत्येक क्षण लगी रहती है। व्याकुलता सर्वदा उसके हृदय मे वास करती है और वह सदा ठगी सी रहती है। उसका हृदय उड़ा-उड़ा सा रहता है। विरह के कारण शरीर सूखकर काँटा हो गया है। रक्त की कमी के कारण पीलापन छा गया है। जीवन मे अब कोई भी सार नहीं। दु:ख प्रतिक्षण दूना लगता है। किन्तु उस निष्ठुर ने उसकी इस अवस्था पर भी ध्यान नहीं दिया।

वियोग में विरहिणी की आँखों की जो अवस्था हो गई है उसका चित्रण घन-आनन्द ने बड़ा ही मार्मिक किया है। वियोग के कारण वियोगिनी के नेत्र ऊबे हुये से रहते हैं। दु:ख से रँगी हुई आँखें प्रियतम को दर्शन लालसा से सदैव व्याकुल हैं। बिना प्रियतम के रूप-दर्शन के इन नेत्रों मे एक जलन सी रहती है। अनेक यत्नो के द्वारा ठीक करने पर भी इन नेत्रों की अवस्था में कोई सुधार नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनको मस्मक रोग ने घेर लिया है इस कारण ही अब इनको लघन करने पड़ रहे हैं अर्थात् जिन आँखों का भोजन प्रिय की रूप माधुरी थी वही आँखें अब उनके वियोग मे लघन कर रही हैं—

घेर घबरानी उबरानी ही रहति घन–
आनँद आरति-राती साधनि मरति हैं।
जीवन अधार जान रूप के अधार बिन
व्याकुल बिकार-भरी खरी सु जरति हैं॥
अतन जतन तें अनखि अरसानी वीर
प्यारी पीर भीर क्यों हू धीर न धरति हैं।

. देखिये दसा असाध अँखियाँ निपेटनि की
मसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं ॥

संयोगावस्था में इन नेत्रों को सुन्दर वस्तुओं और दृश्यों के देखने में आनन्द आता था। प्रकृति के सुरम्य दृश्यों में यह जाकर उलझ जाती थीं। किन्तु अब इनकी अवस्था कुछ विपरीत ही हो गई है। यदि यह विकसित कमल को देखती हैं तो इनमें एक उदासी छा जाती है। न जाने कैसी उलझन उत्पन्न हो गई है। यदि सुगन्धित समीर का झोंका आकर लगता है तो इन नेत्रों में अग्नि भड़कने लगती है। संयोग में इन्हीं वस्तुओं के कारण अनुराग का रँग गाढ़ा होता था। किन्तु अब तो इन सुन्दर वस्तुओं के द्वारा विरह की वेदना अत्यधिक उद्दीप्त हो जाती है। वियोगिनी के हृदय में वैराग्य हो जाता है। जहाँ प्रिय के रूप-गुण का प्रकाश नहीं मिलता वहाँ उसके हृदय में दुःख की गाँठ पड़ जाती है। कुछ उसकी अवस्था इस प्रकार की हो गई है कि उसके सुलझाने का कोई भी उपाय नहीं दिखलाई देता—

विकच नलिन लखें सकुच मलिन होति,
ऐसी कछु आँखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ समीर आये बहकि दहकि जाय,
राग भरे हिय में विराग मुरझनि है॥
जहाँ जान प्यारी रूप-गुन कौ न दीप लहै,
तहाँ मेरे ज्यौं परे विषाद गुरझनि है।
हाय अटपटी दसा निपट चटपटी सौं,
क्यों हू घन-आनँद न सूझै सुरझनि है॥

वियोगिनी अपने वियोग में प्रियतम को अनेक प्रकार से उपालम्भ भी देती है। संयोग के सुखों को जिनका उपभोग उसने प्रियतम के द्वारा किया था उनके विषय में वह विरह-दग्धा प्रियतम को उपालम्भ देती है। इस प्रकार के उपालम्भ देने की प्रवृत्ति सूर आदि अनेक कवियों में मिलती है। सूर ने इसी प्रकार के उपालम्भों से कृष्ण को दोषी सिद्ध किया है—

'मधुकर हम न होहिं वे बेली।
जिनको तुम तजि भजत प्रीति बिनु करत कुसुम रस केली॥'

इसी प्रकार के उपालम्भ घनानन्द की कविता में भी भरे पड़े हैं। उनकी विरहिणी भी कहती है कि यदि वियोग में इसी प्रकार जलाना था तो पहले प्रेम का नाटक क्यों खेला? अनेकों सुखों को देकर तथा अब वियोग के इस गम्भीर दुःख को देकर न जाने कहाँ चले गये। जिस शरीर के अङ्ग-अङ्ग में कामदेव का वास था उसी शरीर के अन्दर अब वियोग की प्रबल अग्नि प्रज्वलित करदी। और इन प्राणों ने उन्हीं का पीछा क्यों नहीं किया जबकि वह मेरे इस हृदय को जीतकर यहाँ से गये थे। हे सखी अब तो इस वियोग के कारण मैं अत्यन्त ही अधीर हो गई हूँ। मुझे दुखों ने घेर लिया है और मन-भावन इस प्रकार मुझे इस व्यथितावस्था में अकेली ही छोड़कर चले गये—

तब है सहाय हाय कैसे धौं सुहाई ऐसी,
सब सुख संग लै बिछोह दुःख दै चले।
सींचे रस-रंग अङ्ग अङ्गनि अनङ्ग सौंपि,
अन्तर में बिषम बिषाद बेलि बै चले॥
क्यों धौ ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के
गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले।
अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरिलई,
हेली मन भावन अकेली मोहि कै चले॥

अन्तिम पंक्तियों में वियोगिनी की वेदना का सम्पूर्ण रूप परिलक्षित होने लगता है। अनेक भाव चित्रों के द्वारा घन-आनन्द ने अपनी विरहिणी की मानसिक अवस्था के चित्रों का विधान किया है।

प्रथम तो प्रेम-नाट्य प्रदर्शित करके अरे निष्ठुर तूने मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। किन्तु अब तुझे इस प्रकार निष्ठुरता करना शोभा नहीं देता—

मोही मोह जनाय कैं, अरे अमोही! जोहि।
सोही मोही सों कठिन, क्यों करि सोही तोहि॥

वियोगिनी की दशा से जितने महाकवि घनानन्द परिचित थे उतना रीति-कालीन कवियों में कोई भी कवि नहीं था। वियोगिनी की दशा अनोखी है जिसमें बिना प्राणों के जीना पड़ता है और बिना मृत्यु के मरना पड़ता है। हृदय सर्वदा दाह से दग्ध है। आँखों से आँसुओं का प्रवाह चलता रहता है। न सोते चैन न जगते, न हंसा जाता है और न रोने में ही कुछ विशेष चैन मिलता है। इसलिये विरहिणी अपने आप में ही लीन रहती हैं किन्तु उसमें भी उस को अधिक चैन नहीं पड़ता। इतना अवश्य है कि उस विरहिणी को यह विश्वास है कि उसका प्रियतम उसके हृदय में विद्यमान है। किन्तु यह भी गूँगे का गुड़ है। उस दशा से अन्य कोई भी परिचित नहीं हो सकता—

> अन्तर उदेग-दाह, आखिन प्रवाह आँसू,
> देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
> सोइवो न जागिवो हो, हँसिवो न रोइवो हूँ,
> खोय खोय आप ही में चेटकि लहनि है॥
> जान प्यारे प्रानन बसत पै आनन्द घन
> विरह विषम दशा मूक लौं कहनि है।
> जीवन मरन, जीव मीन बिना बन्यौ आय,
> हाय कौन विधि रची नेही की रहनि है॥

जिस प्रकार बिहारी की नायिका अपने व्यथित हृदय की दशा को अपने नायक तक नहीं पहुँचा सकती थी। और उसके उसासों की गर्मी के कारण कागज जलने लगता था अथवा आँसुओं के प्रवाह के कारण कागज के गलने का भय था उसी प्रकार घनानन्द की विरहिणी नायिका भी अपने हृदयगत भावों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ है। विरह की दाह के कारण उँगलियाँ भी पत्र-लिखने में असमर्थ हैं। यदि वह किसी मनुष्य के द्वारा अपने संदेश को प्रियतम के पास भेजने का उपक्रम करे तो उसमें भी अनेकों व्यवधान आ पड़ते हैं। यदि उस सन्देश वाहक के कान के समीप आकर कहा जाय तो साँसों की गरमी के कारण उसका कान जलने लगता है। जिस समय स्नेह युक्त बातों को जिह्वा पर लाया जाता है उस समय विरह की अग्नि जो कि हृदय में भड़क रही

है वह और अधिक तीव्र हो जाती है और इस प्रकार सदेश भेजने में अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। उस समय विरह की वेदना इतनी अगाढ़ हो जाती है कि मानों अनेकों मशालों की गर्मी से शरीर जल रहा हो—

पाती मधि छाती–छत लिखि न लिखाये जाहिं,
काती लै विरह घाती कीने जैसे हाल है।
आँगुरीं बहकि तहीं पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल माल है॥
जान प्यारे जौअव कहूँ दीजिये सन्देसौ तौअव
आवा सम कीजिये जुकान तिहिकाल है।
नेह-भीजी बातें रसना पै उर आँच लागै,
जागै घन-आनन्द ज्यौं पु जनि-मसाल है॥

विरही की अवस्था कुछ ऐसी हो जाती है कि उसे चेतन और अचेतन में कोई भी भेद नहीं प्रतीत होता। अपने प्रियतम को किसी न किसी प्रकार वह अपनी उस दयनीय दशा का परिचय करा देना अपना आवश्यक कार्य समझता है। कालिदास ने मेघ को यक्ष का सन्देश वाहक बनाया था और उसके द्वारा यक्ष की सम्पूर्ण वेदनाओं को उसकी प्रियतमा यक्षिणी के समीप भेजने का उप क्रम किया था। सूर और नन्ददास के काव्य में भी इस प्रकार के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। नन्ददास की गोपियाँ पवन के द्वारा कृष्ण के समीप अपना सन्देश पहुँचाती हैं—

अरे पौन सुग मौन सबै थल गौन तिहारौ।
क्यों न कहौ राधिका रौन सौं मौन निवारौ॥

इनसे पूर्व सूफ़ी कवि जायसी मे भी इस प्रकार की भावना के दर्शन होते हैं—

'मकुतेहि मारग उड़ि परै कन धरैं जेहि पायँ'

नागमती अपने विरहोद्गारों को कौए के द्वारा अपने प्रिय के समीप पहुँचाती है—

पिउ सौं कहेउ सँदेसड़ा हे भौंरा हे काग।
उहि धनि विरहै जरि मुई तेहि को धुत्राँ हम लागि॥

विरहिणी के मन की अवस्था वियोग में कुछ इस प्रकार की होती है कि उसको अपने प्रियतम के समीप किसी न किसी प्रकार अपनी दशा का सन्देश पहुँचाना आवश्यक सा जान पड़ता है। इसमें जो कुछ भी हो किन्तु यह तो एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि वह अपने प्रेम की गम्भीरता को दिखलाकर उसके प्रेम की सच्ची अधिकारिणी बनना चाहती है। घनानन्द की विरहिणी भी इस प्रकार के अनेक सन्देशों को अपने प्रियतम के समीप पहुँचाने का उपक्रम करती है। कभी वह अपने आँसुओं को बादलों से अपने प्रियतम सुजान के आँगन में बरसाने को कहती है तो कभी पवन से प्रियतम के चरणों की रज लाने को कहती है। विरहिणी बादलों को परोपकारी कहती है। उनके द्वारा संसार की ताप और उष्णता नष्ट होती है। बादल अपने पानी का दान देकर चराचर को जीवन दान देते हैं। इसलिये वियोगिनी उनसे प्रार्थना करती है कि उस जैसा परोपकारी ही उसके कार्य को पूर्ण कर सकेगा। कार्य भी कोई विशेष कठिन नहीं। केवल यही है कि उस वियोगिनी के वियोग के कारण सतत बहने वाले आँसुओं को उसके प्रियतम के आँगन में बरसा दिया जाय। ऐसा करने से बादल को कोई विशेष कष्ट तो होगा नहीं, क्योंकि उसका कार्य तो पानी भरकर बरसाना ही है। किन्तु वियोगिनी को जो लाभ होगा वह तो अपरिमित है। उसके प्रियतम को उसके आँसुओं की मात्रा से उसके प्रेम का परिचय हो जायगा—

परकाजहि देह को धारे फिरौ
परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ
सब ही विधि सज्जनता सरसौ॥
घन-आनन्द जीवन दायक हौ
कछु मेरी यौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ या बिसासी सुजान के आँगन
मौं अँसुवान कौं लै बरसौ॥

पवन भी इसी प्रकार प्रत्येक स्थान पर जाने में समर्थ है। विरहिणी उसकी कृपा की भी आकांक्षा करती है। पवन समदृष्टि के द्वारा छोटे और बड़े गरीब और अमीर सबको आनन्द देता है। दुखियों को पवन के द्वारा ही आनन्द का उपभोग होता है। विरहिणी पवन से प्रार्थना करती है कि मेरे प्रियतम मुझको अपने प्रेम के गम्भीर सागर में बहाकर अब कहीं दूर जाकर बैठ गये हैं। इसलिये हे पवन! तनिक तू इतना ही कर दे कि उनके चरणों की रज मेरे पास आ जाये और मैं उसको अपने मस्तक पर रख कर अपने जीवन को धन्य समझूँ—

ऐरे बीर पौन तेरौ सबै ओर गौन बारी
तो सौ और कौन मनैं ढरकौंही बानि दैं।
जगत के प्रान ओछे बड़े तो समान घन—
आनन्द निधान सुखदान दुखियान दै॥
जान उजियारे गुन भारे अति मोहि प्यारे
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचान दै।
विरह विथा की मूरि आखिन में राखौं पूरि
धूरि तिन पाँयन की हाहा नैंकु आनि दै॥

अंतिम पंक्ति में 'हा हा' शब्द के द्वारा कवि ने विरहिणी की दयनीय दशा का पूर्ण रूप से बोध करा दिया है। कितनी विवशता उनके इन शब्दों से प्रकट हो रही है। घनानन्द ने विरह की आन्तरिक अवस्थाओं को ही प्रकट करने का प्रयत्न अधिक किया। उनके काव्य में साँसों को झूला झुलाने के लिये नहीं प्रयुक्त किया गया। न माघ के महीने में लुओं के चलाने का उपक्रम ही कवि की कविता में दिखाई देता है। उनकी कविता में तो केवल उन प्रभावों को दिखाने का प्रयत्न है जिनके कारण विरहिणी रात दिन बेचैन रहती है।

वियोग जन्य अवस्थायें—आचार्यों ने विरह की दस अवस्थायें मानी है। विद्यापति, सूरदास आदि कवियों की रचनाओं में इन अवस्थाओं का विशद चित्रण है। घनानन्द के काव्य में भी उन दस अवस्थाओं को देखा जा सकता है। वे हैं—स्मृति, गुणकथन, अभिलाषा, मूर्च्छा, व्याधि, उद्वेग, प्रलाप

जड़ता, उन्माद और मरण। अन्तिम मरणावस्था को भारतीय काव्य-शास्त्रियों ने काव्य में दिखाना वर्जित माना है इसलिए वियोगजन्य कृशता के कारण जो अत्यन्त ही शोचनीय अवस्था हो जाती है उसी को इस अवस्था में देख लिया जाता है। घनानन्द के काव्य में यदि इस शास्त्रीय कसौटी को एक ओर रखकर देखा जाय तो दस ही नहीं ऐसी अन्य कितनी और भी अवस्थायें मिलेंगी जिनको कवि के विरह व्यथित हृदय ने देखा। किन्तु शास्त्रीय कसौटी की मान्यता को सन्मुख रख के देखा जाय तो घनानन्द ने इन अवस्थाओं को भी बड़ी गहराई और भावुकता के साथ चित्रित किया है। उन्होंने अपने हृदय की सच्ची अनुभूति को अपने काव्य में उंडेल दिया है।

प्रिय की स्मृति घनानन्द के सम्पूर्ण काव्य में ही है। उनकी विरहिणी आत्मा उसी स्मृति के कारण ही रुदन करती है—

> हित भूलि न आवति है सुधि क्यों हू
> सु यों हूँ हमें सुधि कीजत है।
> चित भूल तौ भूलत नाहि सुजान
> जु चन्चल ज्यों कछु धीजत है॥
> इद आस की पाउनि फटतें फेरिकें
> धेरि उसासन लीजत है।
> अब देखिये कौ लौं धिरे घन-आनन्द
> आग को दाग सो दीजति है॥

प्रियतम ने क्यों मेरे हृदय को अपनी मृदुल हँसी के द्वारा अपने वश में किया? क्यों मीठे वचनों को सुनाकर जादू सा किया? मेरे चैन को कामदेव की सीढ़ियों पर चढ़ा दिया? वही संयोग की बातें आज भी मेरे हृदय में कसक उत्पन्न कर रही हैं। अब वह इतने अन्यायी होकर मुझे दुःख दे रहे हैं—

> क्यों हँसि हेरि हरयौ हियरा
> और क्यों हित कै चित चाह बढाई।
> काहे कों बोले सुधासने बैननि

नैननि मैन - निसैन चढाई ।
सो सुधि मो हिय में घनआनन्द
सालति क्यों हू कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीत की पाटी
इतै पै न जानिये कौने पढाई ॥

स्मृति के अनेकों उदाहरण उनके काव्य से दिये जा सकते हैं।

वियोगिनी को प्रिय के गुणों का स्मरण वियोगावस्था में एक संबल बन जाता है। उन गुणों के स्मरण से ही वह अपने प्रेम को दृढ़ता देती है। प्रेम का कारण भी यही गुण थे। इन्हीं के कारण तो आकर्षण हुआ था—

'रावरे रूप की रीति अनूप
नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिये'

कृष्ण के रूप को और गुणों को विरहिणी प्रत्येक समय याद करती है—

छवि कौ सदन, मोद मंडित बदन-चन्द
तृषनि चखन लाल! कब धौं दिखाय हौ।

वियोगिनी के हृदय में अनेकों अभिलाषायें जाग्रत होती रहती हैं। किन्तु उनमें सबसे उग्र और बलवती अभिलाषा प्रियतम के दर्शनों की ही है। वह रात दिन प्रियतम के मिलन के लिये ही व्याकुल होती है। घनानन्द की विरहिणी की अभिलाषा भी उसी मुखचन्द के दर्शन मात्र तक ही सीमित है। प्रियतम के नाम में ही रसना अपने को सार्थक समझती है। उसका जीवन अब इसी कारण है कि वह प्रियतम के दर्शनों की अभिलाषा अपने हृदय में लिये हुये है—

दृग नीर सौं दीठहि देहुँ बहाय पै वा मुख की अभिलाख रही।
रसना विष बोरि गिराहि गर्यो, यह नाम सुधा निधि भाखि रही।
घन-आनन्द जान सुबैननि त्यों रचि कान बचे इन्हि साखि रही।
निज जीवन पाय पलै कबहूँ पिय कारन यों जिय राखि रही ॥

चित्त में केवल उस प्रिय के मुख को देखने की ही अभिलाषा है। किन्तु

नेत्र अब निराश से हो चले हैं। उनको प्रियतम के दर्शन कहीं भी नहीं मिलते। इस हृदय में इतनी अभिलाषाओं ने अपना नीड़ बना लिया है कि अब उसकी साँस भी बड़ी कठिनता से आरही है। बुद्धि की गति रुद्ध है। प्रियतम ने कहा था कि वह उसकी सुधि लेते रहेंगे और अपनी सुधि देते रहेंगे किन्तु अब उनका कोई भी पता नहीं। इसी कारण अब उसको भी अपने शरीर का होश नहीं रहा—

'मुख चाहनि कौं चित चाहत है चख-चाहनि ठौरहि पावत ना।
अभिलाषनि लाखनि भाति भरे हियरा मधि साँस सुहावत ना।
घनआनन्द-जान तुम्हें बिन यों गति पंगु भई मति धावति ना।
सुधि दैन कही सुधि लैन चहीं सुधि पाये बिना सुधि आवति ना॥

मूर्च्छा—वियोग की चरम सीमा विरहिणी को मूर्च्छित बना देती है। घनानन्द के काव्य में विरह अपनी चरम सीमा पर था इसलिये उनकी विरहिणी को अपने शरीर का कोई ध्यान नहीं था। उपर्युक्त सवैये में अन्तिम पंक्ति में विरहिणी अपनी मूर्च्छितावस्था की ओर ही संकेत कर रही है—

'सुधि दैन कही सुधि लैन कही सुधि पाये बिना सुधि आवति ना'

विरहिणी की दशा शोचनीय है इसलिये वह अपने प्रियतम से प्रार्थना करती है कि आकर देख लें अन्यथा न जाने उसकी क्या दशा होगी?—

दशा है अटपटी प्रिय आय देखौ
न देखौ तौ परेखौ ही परेखौ

विरह वेदना के आधिक्य के कारण मूर्च्छा और उन्माद साथ साथ ही हो जाते हैं—

सोच दई बुधि खोय गई सुधि रोय हँसै उन्माद जग्यौ है।
मौन गहै चकि चाकि रहै चलि बात कहै तन दाह दह्यौ है।
जानि परै नहीं जान तुम्हें लखि ताहि कहा कछु आहि लग्यौ है।
सोचनि ही पचिये घन-आनँद हेत पग्यौ किधौं प्रेत पग्यौ है॥

प्रेम में उन्माद की अवस्था उस समय आती है जिस समय प्रियतम के आने की विरहिणी को कोई आशा नहीं रहती। घनानन्द की विरहिणी भी प्रियतम का स्मरण करके रात्रि में भी चौंक उठती है—

'जगि सोवनि में जागिये रहै चाह वहै बगराय उठै रतिया'

घनानन्द ने अपने काव्य में विरह की अनेकों अवस्थाओं का समावेश कहीं-कहीं एक साथ कर दिया है—

अंग अग छाई है उदेग उरझानि महा
साँस लैबो आली गिरि हू तें गरवौ लगै।
जोवन सरूप गुन सूल से सलत गात
तूल तिनका लौं ह्वै गुमान हरवौ लगै।
और जे सवाद धन-आनन्द बिचारै कौन
विरह विषाद उर जीबो करुवौ लगै॥

विरह की बेचैनी के कारण एक प्रकार की खीज विरहिणी के हृदय में उत्पन्न हो जाती है और वह अपने प्रियतम के ऊपर खीज कर प्रलाप सा करने लगती है—

अतर हौ किधौ अन्त रहौ
दग फारि फिरौं कि अभागिन भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं
अब कैसी करौं हिय का विधि धीरौं।
जो घन-आनन्द ऐसी रुची तौ
कहा बस है अहा प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हें
धरनी में धसौं कै अकासहि चीरौं॥

विरहिणी विरह की वेदनाओं को सहन करने में अपने को असमर्थ समझती है। इसलिये अपनी इस निराश अवस्था में वह मृत्यु को चाहती है

किन्तु इस समय मृत्यु भी उससे विमुख हो रही है—

'बनी है कठिन महा मोहि घन-आनन्द यों,
मीचौ मरि गई आसरौ न जित ढूकियै ।'

इस प्रकार घनानन्द के काव्य में विरह की दस अवस्थाओं का चित्रण मिलता है। विरह घनानन्द की आप बीती कहानी थी इसी कारण उसमें उनको अनेक नवीन २ अवस्थाओं को खोजने का अवसर मिला। घनानन्द के काव्य में विरह को अत्यन्त व्यापक स्थान दिया गया।

मरण के समीप पहुंची विरहिणी अपने जीवन को उस प्रकार समाप्त नहीं करना चाहती जिस प्रकार कि मछली अपने प्रियतम जल से वियुक्त होने पर कर देती है। घनानन्द की विरहिणी तो उस प्रियतम के नाम का अवलम्बन लेकर अपने प्राणों को बल देकर जीवित रखेगी—

तेरी बाट हेरत हिराने और पिराने पग,
थाके ये विकल नैना ताहि नपि नपि रे।
हिये में उदेग आगि लागि रही राति द्यौस
तोहि कों अराधौं साधौं तपि तपि रे।
आन घनआनन्द यों दुसह दुहेली दसा—,
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे।
जीय तें भई उदास, तऊ है मिलन आस
जीवहि जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे॥

विरहिणी की अवस्था तो कुछ अनोखी ही होती है। उसके अन्तस्थल में उद्वेग का दाह है परन्तु उसकी आँखों में अश्रु प्रवाह है। न वह सोती है और न वह जगती है, न रोना है और न हँसना। उसकी दशा से यह भी पता नहीं चलता कि वह जी रही है या मरणावस्था में है—

'जीवन मरन बीच बिना बन्यो आय हाय
कौन विधि रची यह नेही की रहनि है'

शम्भुप्रसाद बहुगुना के शब्दों में यह कहना ठीक होगा 'प्रेम की यह गहन अनुभूति थी जिसने घनानन्द की कविता को वेदना की स्वाभाविक हरियाली देकर रीतिकाल की अस्वाभाविकता की मरूभूमि में भटकते पाठक के लिये हरीभरी भूमि के समान आनन्द प्रद बना दिया है।' घनानन्द का काव्य उनके हृदय की सच्ची अनुभूति के रूप में ही है। वह अपनी भावनाओं के कुशल चितेरे थे। भावों को मूर्तिमत्ता देकर उन्होंने विरह चित्रण में अपनी समता का कोई भी रीतिकालीन कवि नहीं रहने दिया।

घनानन्द के विरह वर्णन में एक ओर तो कृष्ण भक्त कवियों की विरह परम्परा को अपनाकर कृष्ण और राधा के वियोग का वर्णन किया गया है तो दूसरी ओर वह सामान्य नायक और नायिका का विरह प्रतीत होता है। किन्तु दोनों में हृदय की वृत्तियों को समान रूप से ही प्रदर्शित किया गया है। विरहवर्णन में किसी रहस्यात्मक तत्व को नहीं देखा गया और न आध्यात्मिकता का ही अधिक सहारा लिया गया। उनके विरह वर्णन में कहीं २ सूफियों का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है किन्तु वह भी शैली पर ही है। घनानन्द ने अपने विरह वर्णन में अपने हृदय को खोल कर रख दिया है। शुक्लजी का यह कथन उनके विषय में अक्षरशः सत्य है—"यद्यपि उन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है, पर वियोग की अन्तर्दशाओं की ओर ही दृष्टि अधिक है। इसीलिये उनके वियोग सबंधी पद ही अधिक प्रसिद्ध हैं। वियोग वर्णन भी अधिकतर अन्तर्वृत्ति निरूपक ही है, बाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानन्द ने न तो बिहारी की तरह विरह-ताप को बाहरी माप मापा है, न बाहरी उछल कूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर की है। बाहर से वह वियोग प्रशांत और गम्भीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह तपना है, न उछल कूद कर भागना है। उनकी "मौन मधि पुकार है।"

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने भी अपनी पुस्तक 'नव निबन्ध' में पृष्ठ १२२ पर घनानन्द के विरह वर्णन के विषय में लिखा है—"घनानद ने विरह के महत्व को भली भाति समझा था। इसलिये प्रेमी के विरहदग्ध हृदय तथा उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं अनिर्वचनीय मानसिक व्यापारों का जैसा सुन्दर वर्णन अपनी

कविता द्वारा उन्होंने किया है वैसा बहुत कम कवि कर पाये हैं। घनानन्द की यह विशेषता है कि प्रेमी की दशा अथवा उसकी परिस्थिति का दिग्दर्शन कराते समय वह बहुत से अन्य कवियों की भांति केवल शब्दाडम्बर का आश्रय नहीं लेते और न अत्युक्तियों का गाढ़ा रंग चढ़ाकर किसी कोमल भाव को भद्दा बना देते हैं।..................उनके विरह वर्णन में एक आश्रित का अनुरोध एवं मर्यादित आत्मनिवेदन है जो अपनी स्वाभाविकता के कारण सुनने वाले का मन बरबस ही अपनी ओर खींच लेता है। घनानन्द के 'सुजान सागर' में विरह का रूप उसका उद्भव प्रभाव एवं प्रदर्शन इन सभी के वर्णन अथवा स्पष्टीकरण अनेक स्थलों पर मिलेंगे और विरहलीला में तो विरह-निवेदन मुख्य विषय बनकर आया है।" यदि उनके विरह वर्णन को हिन्दी के अन्य कवियों से मिलाया जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि सूरदास को छोड़कर अन्य किसी भी कवि ने इतने व्यापक क्षेत्र में विरह की महत्ता का प्रतिपादन नहीं किया।

वियोगबेलि में कवि ने अत्यंत चलती हुई शैली में अपने विरहोद्गारों को प्रदर्शित किया है। विरहिणी ने अपने प्राणों का लक्ष्य केवल कृष्ण के दर्शन को ही बना लिया है। वह उनको अपने नेत्रों के सम्मुख ही देखना चाहती है क्योंकि यह नेत्र कृष्ण को दर्शनों की इच्छा से रात दिन खुले रहते हैं। विरहिणी प्रार्थना करती है—प्रिय आप इन आँखों पर दया करके इनको दर्शन दीजिये। यदि आप ही हमारी दशा को नहीं सुनोगे तो और तो सुनेंगे ही क्यों! विरहिणी पत्र भी नहीं लिख सकती। लिखे भी कैसे—

लिखौं कैसे पियारे प्रेम पाती।
लगै अँसुअन झरी है टूँक छाती॥

मेरा हृदय कभी भी आपसे विमुख नहीं हो सकता। यह तो प्रेम को अन्त तक निभायेगा। उसमें तुमसे मिलने की आशा सर्वथा जगती रहेगी। इसको कोई भी तुम्हारी ओर से नहीं हटा सकता यह तो तुम्हारे अनन्य प्रेम में रत है—

'तिहारे मिलन की आसा न छूटै
लग्यौ मन बावरौ तोरे न टूटै'

विरहिणी के नेत्रों के सन्मुख इस अवस्था में भी अपने वियुक्त प्रिय का रूप नाचता फिरता है—

सलोनी स्याम-मूरति फिरै आगे।
कटाछैं बान से उर आन लागे॥
मुकट की लटक हिय में आय हालै,
चितवनी बंक जियरा बीच सालै।

कभी २ प्रिय की स्मृति इतनी घनीभूत हो जाती है कि नेत्रों से हर समय अश्रुप्रवाह चलता रहता है। विरह की दशा भी उस समय अत्यन्त, मर्मान्तक हो जाती है—

बहै नव नैन सो अँसुआन धारा,
चलावै सीस पै यों विरह आरा।

निर्दयता की भी कोई सीमा होती है। अब तो विरहिणी की अवस्था ऐसी है कि उसको आकर बचाना ही श्रेयस्कर है। किन्तु फिर भी उसकी दशा पर उसके प्रिय ने तनिक भी दया नहीं की। इसलिए वह फिर एक बार उस प्रिय से कहती है कि आप 'जीवन मूल' हो। यदि पानी ही आग हो जाये तो किसी का क्या वश? अगर अमृत अमरता के स्थान पर मृत्यु देने लगे तो इसमें किस का अन्याय? अगर चकोर का प्रिय चन्द्रमा उसको शीतलता न देकर दाह देने लगे तो उससे कोई क्या कह सकता है—

जरावै नीर तो फिर को सिरावै।
अमी मारै कहौ जू को जिवावै॥
जु चन्दा ते झरैं दैया अंगारे।
चकोरन की कहो गति कौन प्यारे॥

इसलिये प्रियतम से उस विरहिणी की प्रार्थना है कि इस प्रकार की निष्ठुरता छोड़कर उसकी दशा पर वह दया करे।

घनानन्द की विरहिणी असह्य यातनायें भोगने पर भी अपने प्रियतम की

कुशलता ही चाहती है। वह अपनी तरह प्रियतम को दुखी नहीं देखना चाहती—

तुम्हें निसिद्योस मन भावन असीसें
सजीवन हौ करौ हम पर कसीसें

प्रीति की डोरी दुख देने वाली है। लेकिन विरहिणी उसको किसी भी प्रकार नहीं तोड़ना चाहती। उन्होंने कृष्ण के प्रेम को अपने हृदय में थाती के समान सहेज कर रख लिया है। उसे वह प्रिय को ही सौंपेगी—

टरै नाहीं हियें सों हेत-थाती
सम्हारौ आयकें प्यारे सथाती।

विदेशी प्रभाव :—

वियोग-वेलि में वर्णित विरह में कुछ फ़ारसी पद्धति के विरह वर्णन का प्रभाव सा परिलक्षित होता है। इसी कारण कुछ ऐसे वाक्यों का प्रयोग है जो भारतीय काव्य-शास्त्रानुसार वर्जित हैं। फ़ारसी काव्य में विरह में चीरफाड़ करना, जलने आदि का प्रयोग एक साधारण सी बात है। घनानन्द ने भी इस प्रकार के प्रयोग किये हैं जैसे, 'लगें अँसुअन भरी हूँ टूँक छाती' 'जरावै जीय' 'चलावै सीस पै यौं विरह धारा' आदि।

इसी प्रकार कुछ ऊहात्मक एव चमत्कार पूर्ण वर्णन भी घनानन्द के काव्य में पाये जाते हैं जो फारसी काव्य में अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करते थे। सूफ़ी कवियों में भी इस प्रकार के वर्णन अनेक भरे पड़े हैं। जायसी के 'पद्मावत' में शुक्ल जी ने इस प्रकार के उदाहरणों को उद्धृत किया है।

जैसे, 'हाड़ भये सब किंगरी नसें भईं सब ताँति।
रोम रोम सों धुनि उठै कहँ बिथा केहि भाँति॥

कबीर के काव्य में भी इस प्रकार के उदाहरण मिल सकते हैं। किन्तु तुलसी और सूर जैसे कवियो ने भारतीय काव्यशास्त्र के आदर्श को रखकर इस प्रकार के अनौचित्य पूर्ण वर्णनों को अपने काव्य में स्थान नहीं दिया। रीति-कालीन कवियों के विरह वर्णन में इस प्रकार का दोष अवश्य कितने ही

कवियों पर लगाया जा सकता है। बिहारी, पद्माकर, सेनापति आदि कवियों की रचनाओं में इस प्रकार के दोषपूर्ण स्थल पाये जा सकते हैं। घनानन्द पर भी रीतिकालीन चमत्कार का कहीं २ प्रभाव है किन्तु अधिक नहीं। बिहारी और अन्य रीतिबद्ध कवियों की अपेक्षा बहुत कम है। विरह की तीव्रता के कारण नायिका की जो दशा है उसका कवि ने अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है—

पाती मधि छाती छत लिखिन छिखाये जाहिं,
काती लै विरह घाती कीने जैसे हाल है।
आँगुरी बहकि तहीं पाँगुरी मिलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल माल हैं।
जान प्यारे जौअब दीजिये सदेसो तौअब।
आवा सम कीजिये जु कान तिहिं काल है।
नेह भींजो बातें रसना पै उर आँच लागें
जागें घनआनन्द ज्यौं पुँजनि मसाल है।

उपर्युक्त वर्णन पर फारसी की काव्य पद्धति का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता।

इसी प्रकार एक स्थान पर विरहिणी पत्र लिखना चाहती है। किन्तु विरह की ज्वाला इतनी तीव्र है कि पत्र लिखना भी कठिन कार्य ही नहीं वरन् असम्भव प्रतीत हो रहा है। नेत्र बादलों की तरह उसके हृदय सागर से पानी भर कर सावन की सी झड़ी लगा रहे हैं। परिणाम यह है कि उस विरहिणी के नेत्रों की बरुनियों से अश्रु बिन्दु छप्पर की ओलाती की बूंदों के समान गिर कर पत्र लिखने में भी उस को असमर्थ कर रही हैं—

बिरहा रवि सौं घट व्योम तच्यो,
बिजुली सी पिवै दकली छतिया।

× × ×
× × ×

नित सावन दीठि सी बैठक मैं,
टपकै बरुनी तिहि श्रौलदि रा ॥

फारसी काव्यपद्धति का प्रभाव एक श्रोर कवित्त में भी स्पष्ट परिलक्षित है-

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढति री,
कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरिलै।
पैंडे परे पापी ये कलापी निस द्योस ज्यौंही,
चातक घातक त्यौंहीं तू ही कान फोरिलै।
आनन्द के घन प्रान जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरिलै।
जौलौं करै आवन विनोद बरसावन वे,
तौलौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै॥

किन्तु इस प्रकार के वर्णन अधिक नहीं। घनानन्द ने अधिकतर वेदनाजन्य दशाओं में ही अपने हृदय को खोया है इस प्रकार के चमत्कार प्रदर्शन में उन को आनन्द नहीं आया। सच्चे कलाकार को इस प्रकार के वर्णनों से क्या तात्पर्य ! उनको तो अपने हृदय में सचित नाना भाव ग्रन्थियों के खोलने में ही आनन्द आता है। घनानन्द ने उन्हीं मनोवैज्ञानिक तथ्यों को ही देखने में अपने समय का सदुपयोग किया।

घनानन्द ने सौन्दर्य को देखा और इस प्रकार देखा कि इतने विभोर हुये कि जीवन भर उसके वियोग में व्याकुल रहे। अन्त में सौन्दर्य की राशि कृष्ण में उन्होंने अपनी प्रेमिका के सौन्दर्य का पर्य्यवसान कर दिया। जीवनभर उसी के वियोग में प्रेम के गीतों से अपनी आत्मा की अभिव्यक्ति करते रहे। प्रो० रामधारीसिंह दिनकर ने घनानन्द के विरहवर्णन के विषय में निम्न विचारों की अभिव्यक्त किया है—'और विरह तो घनानन्द की पूँजी ठहरा। विरह के जो स्वर उनके हृदय से निकले हैं वे रीतिकाल तो क्या, सूर की कविता में भी दुर्लभता से मिलते हैं।' एक और स्थान पर यही विद्वान लेखक फिर कहता

है—'रीतिकाल की बौद्धिक सिद्धानुभूति की निष्प्राणता और कुण्ठा के वातावरण में घनानन्द की पीड़ा की टीस सहसा ही हृदय को चीर देती है और मन सहज ही यह मान लेता है कि दूसरों के लिये सिसकने पर आँसू बहाने वालों के बीच यह एक ऐसा कवि है जो सचमुच अपनी ही पीड़ा में रो रहा है।' (अवन्तिका जनवरी १९५४)।

घनानन्द का काव्य सौष्ठव

काव्य का स्वरूप

काव्य के रूप के विषय में संस्कृत आचार्यों में एक लम्बा विवाद चलता रहा। अपने-अपने मतानुसार साहित्याचार्यों ने काव्य की परिभाषायें निर्धारित कीं और उनके पश्चात् दूसरे आचार्यों ने उनके मतों का खण्डन किया और अपने मत का प्रतिपादन करके काव्य को एक नवीन रूप दिया। किसी ने अलंकारों की प्रधानता को काव्य कहा तो किसी ने रीति को ही काव्य का प्रमुख गुण बताया। आगे के आचार्यों ने ध्वनि अथवा व्यंग्यार्थ को ही काव्य का मूलाधार बताया। किन्तु मम्मटाचार्य जैसे विद्वानों ने इस मत का खण्डन करके अपनी नवीन खोज को रखकर स्पष्ट शब्दों में घोषणा की—

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावलंकृती पुन: क्वापि।'

विश्वनाथ ने काव्य का रूप निर्धारित करते हुये अपने मत को इस प्रकार प्रकाशित किया—'रसात्मक वाक्य काव्य।' पण्डितराज जगन्नाथ ने 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द काव्य' कहा। इस प्रकार प्रत्येक आचार्य ने अपने-अपने मत का प्रकाशन विभिन्न रूपों में किया और फिर भी कोई निश्चित मत काव्य के विषय में निर्धारित नहीं किया जा सका। किसी भी आचार्य के मत को उसके परवर्ती आचार्यों ने बिना अपने सुधार के नहीं स्वीकार किया। यदि काव्य-शास्त्र के सिद्धान्त को छोड़कर अनुभव के आधार पर काव्य की यह परिभाषा दी जाय कि काव्य हृदय की वह व्यापक अभिव्यक्ति है जो भावनाओं की तरंगों के परिणाम स्वरूप निस्सरित होकर अन्य सहृदयों के भावों का उद्रेक कर अपरमित आनन्द देती है। कवि इस दृश्य जगत को देखकर उसके प्रभाव को अपने हृदयपटल पर अङ्कित करता है तथा भावनाओं के जाग्रत होने पर अपने हृदय के उन प्रभावों को अपनी अभिव्यक्ति के द्वारा दूसरों के हृदय पर भी

अङ्कित कर देता है। इस प्रकार एक कलाकार को प्रभावित करने वाला दृश्य अथवा घटना उसकी कल्पना की तूलिका के द्वारा अनेक भाव-रंगों में रंजित करके उपस्थित की जाती है। जिस प्रकार एक तूलिका से बना चित्र अपने में निहित भावों की अभिव्यक्ति करता है इसी प्रकार कवि के हृदय पटल पर अङ्कित चित्र भी अनोखी व्यंजना प्रकट करता है।

जिस प्रकार एक चित्र को अंकित करते समय चित्रकार के हृदय के अतिरिक्त उसका मस्तिष्क भी लगता है साथ ही कागज तथा विविध रंग भी उस चित्र की सुन्दरता को उत्कर्ष प्रदान करते हैं इसी प्रकार कवि की रचना में भी उसके हृदय के भावों के अतिरिक्त भाषा, अलंकार छन्द आदि भी सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं। केवल भावों के द्वारा किसी भी काव्य की रचना नहीं की जा सकती। भाव भाषा के द्वारा ही व्यक्त हो सकते हैं बिना भाषा के भावों का कोई महत्व नहीं। भावों को मूर्तिमत्ता प्रदान करने में भाषा और अलंकारों का प्रधान कार्य होता है। इस प्रकार काव्य दो आधारों पर आधारित है—हृदय और बुद्धि। भावों का सम्बन्ध हृदय से है और भाषा, अलंकार, छन्द तथा अन्य उपकरणों का सम्बन्ध बुद्धि से। इन्हीं दोनों के आधार पर हृदय पक्ष और कला-पक्ष काव्य के दो स्तम्भ कहे जाते हैं। दूसरे शब्दों में यदि यह कहा जाय तो और अधिक अच्छा होगा कि हृदय अनेक भावों का भण्डार है और बुद्धि चतुरता एवं कला कौशल की धात्री है। काव्य में कला पक्ष के माध्यम के द्वारा भावों को उत्कृष्टता के साथ अभिव्यक्त किया जाता है। इसलिये काव्य का निम्नलिखित वर्गीकरण है—१-भाव पक्ष २-कला पक्ष।

भाव और उनका प्रसार—

ऊपर बताया जा चुका है कि काव्य का आधार मूलतः भाव है। किंतु उन भावों को व्यक्त करने के लिये अन्य भाषा आदि उपकरण भी अत्यन्त आवश्यक हैं। बिना इन उपकरणों के काव्य का कोई रूप नहीं। भाव हृदय में ही गूंगे के गुड़ के समान पड़े रहेंगे। भाव काव्य की आत्मा है और भाषा अलंकार आदि उसका बाह्य शरीर और वेशभूषा। भाव अनन्त हैं इनकी कोई सीमा नहीं। मानव हृदय की अनेक अवस्थायें होती हैं। कभी वह किसी

मोहक दृश्य को देखकर आनन्द से भर जाता है और कभी शोक और दुःख पूर्ण दृश्य को देखकर करुणा से प्लावित हो जाता है, कभी किसी भयानक दृश्य से हृदय भयभीत हो जाता है। कभी मनुष्य को सांसारिक उपभोगों से विरक्ति हो जाती है और इस संसार के प्रत्येक आनन्द और सुख को वह क्षण-भंगुर समझने लगता है।

किसी मनुष्य की अभद्रता अनायास ही हमारे मन से क्रोध नामक भाव का उद्रेक कर देती है। युद्धस्थल में हमारे बाहु फड़कने लगते हैं नेत्रों में लालिमा छा जाती है तथा ओष्ठों में फड़कन उत्पन्न हो जाती है। किसी नव-जात शिशु के मुख पर प्रसन्नता के अज्ञान भाव को देखकर न जाने किस प्रकार की गुदगुदी हमारे हृदय में होने लगती है। अपने माँ बाप को अपने प्रति अत्यन्त प्रेम पूर्ण व्यवहार करते देख न जाने कैसा भाव हमारे हृदय में उनके प्रति जागरूक होता है। अपनी पत्नी के अकपट पूर्ण व्यवहार का हमारे हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है ! सुन्दर रमणी के कटाक्ष से हृदय पर जो प्रभाव पड़ता है तथा उससे अनेक मनोवेगों की जो उथल पुथल मच जाती है यह सब क्या है ! यह सब भाव जगत का ही प्रसार है। यह भाव हमारे हृदय में संस्कार रूप निवास करते हैं। जब किसी भी कारण से इन भावों को जरा भी स्पर्श किया जाता है उसी समय यह भाव जागरूक होकर अनुभावों के द्वारा अपने जागरण की घोषणा करते हैं।

कवि अथवा कलाकार को एक ऐसी प्रतिभा प्राप्त है जिसके द्वारा वह अपने उन भावों को जो कि किसी घटना विशेष से उद्रेग हो उठे हैं अपनी कला के माध्यम से इस प्रकार सुलभ बना देता है कि उसके हृदय के यह भाव जो उस पर प्रभाव कर रहे थे वही अन्य पाठक, श्रोता अथवा दर्शक पर भी करते हैं। कविता को पढ़कर पाठक भी अपने हृदय में अत्यन्त आनन्द का उपभोग करता है। भाव का यही प्रसार कवियों को चिरतन और अमर बना देता है। कालिदास के काव्य को पढ़ कर आज भी हमारा हृदय आनंदा-तिरेक से मुग्ध हो जाता है। उनकी शकुन्तला और दुष्यन्त हमको एक साधा-रण मनुष्य ही प्रतीत होते हैं। कालिदास द्वारा उनके पारस्परिक प्रेमभाव को

को इस प्रकार दिखाया गया है कि वह जनसाधारण का प्रेम हो गया है। मेघदूत में जिस समय यक्ष के सतप्त हृदय के भावों को देखा जाता है तो अनायास ही उस के प्रति एक अनुपम भाव का अनुभव प्रतीत होने लगता है। यह क्या कारण है कि हजारों वर्ष पूर्व के काव्यों में भी हमको इतना आनन्द आता है जो आजकल के काव्यों में भी नहीं आता। अपने देश के काव्यों में ही नहीं वरन् अन्य देशों के काव्य भी हृदय को उतना ही आनन्द देते हैं। शेक्सपियर, उमरखयाम आदि के काव्यों की अमरता का क्या कारण है। यह सब भाव की ही व्यापकता है। भाव चिरतन है और अपरिवर्तन शील है। यह किसी सीमा के अन्तर्गत नहीं रोका जा सकता। प्रेम एक योरपियन को होगा वही एक भारतीय को भी, वियोग का दुःख प्रत्येक प्राणी पर समान रूप से ही पड़ेगा। भाव की यही व्यापकता काव्य को अमरता प्रदान करती है। जिस काव्य में भावों और आन्तरिक प्रभावो को जितनी स्पष्टता के साथ प्रदर्शित किया जायगा वह काव्य उतना ही अधिक महत्व प्राप्त करेगा। भावों की समानता के कारण ही एक कवि के भाव विश्व के भाव होकर लोगों की आत्मा को रस से प्लावित करते हैं। रवीन्द्र कवीन्द्र की गीतांजलि ने योरप ही नहीं वरन् अखिल विश्व के रसिक हृदयों पर अपना प्रभाव डाला। इसीलिये भाव काव्य की आत्मा माना गया है। भाव के बिना काव्य एक सूक्ति मात्र है। आचार्य शुक्ल जी के शब्दों में—"जो उक्ति हृदय में कोई भाव जाग्रत करदे या उसे प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की मार्मिक भावना में लीन करदे वह तो है काव्य। जो उक्ति केवल कथन के ढंग के अनूठेपन, रचना वैचित्र्य, चमत्कार, कवि के श्रम या निपुणता के विचार में ही प्रवृत्त करे वह है सूक्ति।"

कला-पक्ष का महत्व—कला पक्ष काव्य का अभिन्न अङ्ग है। भावों का उत्कर्ष बिना कला-पक्ष की सहायता के दिखाना असमव ही नहीं वरन् कठिन और कल्पना जगत की बात है। कलापक्ष कविता को स्पष्टता प्रदान करता है तथा भावों के प्रभाव को मुखर करता है। कला-पक्ष के अन्तर्गत भाषा अलङ्कार, उक्ति वैचित्र्य, शब्द शक्ति, छन्दयोजना, सगीतात्मकता, मुहाविरे तथा लोकोक्तियाँ सभी आ जाते हैं। किसी कलाकार के भाव-पक्ष को देखने

के साथ २ पाठक उसके कलापक्ष को भी देखता है और उन दोनों के विकसित और उन्नत रूप को देखकर उसके मुख से अनायास हो उस कवि की सफलता को मान्यता दे दी जाती है। इसलिये कवि का कर्त्तव्य है कि वह अपने भावों की स्वाभाविकता और सरलता के साथ अभिव्यक्त करते हुये इस बात का भी ध्यान रखे कि उन भावों को जिस कला द्वारा अभिव्यक्त किया है उसमें उन भावों को पाठकों और सहृदय को अनुभवगम्य कराने की शक्ति है या नहीं। जो कवि इस बात का ध्यान रखेगा वही सफल कवि या महाकवि का पद प्राप्त कर सकेगा। किन्तु यह ध्यान भी रखना आवश्यक है कि कहीं उसका ध्यान केवल इसी पर न लगा रहे कि उसके काव्य का कला-पक्ष ही उन्नत हो जाय और भाव-पक्ष का अपकर्ष हो जाये। ऐसा होने से उसकी अभिव्यक्ति एक खिलवाड़ मात्र हो जायेगी और इस प्रकार के कवियों का वही परिणाम होगा जो महाकवि केशव का हुआ। केशव के काव्य में कला-पक्ष की प्रधानता हो गई और भाव-पक्ष ऐसा दबा कि पाठकों को रसानुभूति ही नहीं हो पाई। विद्यापति, जायसी, सूर और तुलसी आदि महाकवियों के काव्य में भाव और कला दोनों का विकास समान रूप से ही हुआ इसलिए उनके काव्य का प्रभाव अधिक व्यापक रहा।

कला-पक्ष की सरलता और मधुरता भी कलाकार के लिये नितान्त आवश्यक है। जिस कवि की अभिव्यक्ति जितनी सरल होगी वह उतना ही जन प्रिय बन सकेगा। शैली की दुरुहता भी काव्य की सफलता में अत्यन्त ही बाधक है। कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनों का सामञ्जस्य कलाकार की सफलता में चार चाँद लगा देता है।

भाव-पक्ष और कला-पक्ष का सामञ्जस्य—इसलिये कलाकार को चाहिये कि वह अपनी कृति में अन्तर्वृत्तियों को चित्रोपमता प्रदान करते समय भाषा की सरलता मधुरता और भावोनुरूपता की ओर अवश्य ध्यान रखे। अलकारों का प्रयोग भी भावों को मूर्तिमत्ता प्रदान करने में अत्यन्त सहायक होता है। भाव के रूप को अलकार के द्वारा अन्य उपमानों के सहयोग से स्पष्ट किया जाता है। इसीलिये काव्य में अलकारों का प्रयोग आदि काल से होता आ रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा।

जिस काव्य में भाव और कला का समन्वय होगा वही काव्य उत्कृष्ट कोटि का काव्य माना जायेगा। महाकवियों के काव्य में कला के दोनों पक्षों का उत्कर्ष रहता है। हिन्दी के भक्ति कालीन कवि, सूर और तुलसी के काव्य में दोनों पक्ष समुन्नत और पुष्ट रहे इसी कारण उन महाकवियों के काव्य अमर-काव्य की कोटि में हैं।

रीतिकालीन कवियों में कला की सजावट की ओर अधिक ध्यान रहा और इसका परिणाम यह हुआ कि उन कवियों का भाव-पक्ष उतना उन्नत नहीं हो पाया। अलंकारों के लक्षणों और नायिका भेद में कवियों ने अपनी प्रतिभा का अन्त कर दिया। बिहारी और देव जैसे कवियों ने भावनाओं का उच्चकोटि का चित्रण किया किन्तु उनके ऊपर भी फ़ारसी के चमत्कारवाद का प्रभाव प्रकट होता है। बिहारी तो इतने कलाबाज़ हुये कि उन्होंने तो अपनी विरहिणी नायिका को साँसों के झूले पर छै और सात हाथ लम्बे झोटे लगवा दिये। सेनापति और पद्माकर का काव्य भी अलकार और अनुप्रासों की छटा में ही रह गया। यदि यह प्रतिभा सम्पन्न कवि इस प्रकार के वाह्य उपकरणों की ओर आकर्षित नहीं होते तो कला का वह निखरा रूप इनके द्वारा उत्पन्न किया जाता जो हिन्दी काव्य के गौरव को द्विगुणित कर देता। जहाँ पर उन उपरोक्त कवियों ने वाह्य उपकरणों की खोज में अपनी प्रतिभा को नहीं लगाया वहीं पर इनके काव्य का उन्नत रूप दिखलाई पड़ता है। रीतिकालीन कवियों में महाकवि घनानन्द इस विषय में स्वतंत्र चेता थे। जिस लौकिक विरह ने उनके हृदय रूपी मुकुर को तोड़ा था उसी के अनेक टुकड़ों में भावों के अनेक रूप परिलक्षित होने लगे। विरह की अनेकों अन्तर्दशाओं को इस सुजान के प्रेमी ने अपने काव्य में इस कौशल के साथ चित्रित किया जिसने प्रत्येक सहृदय के हृदय में भावों का उद्रेक कर गया। घनआनन्द के प्रेम का व्यक्तिगत अनुभव उनके हृदय तक ही सीमित नहीं रहा वरन् प्रत्येक प्रेमी हृदय की सम्पत्ति बन गया। भावों की जितनी सरल एव स्वाभाविक अभिव्यक्ति इस विरही कवि ने की उतनी रीतिकाल के अन्य किसी भी कवि में नहीं मिलती।

सौंदर्य को ही उन्होंने नहीं वर्णित किया वरन् उस सौन्दर्य के कारण उस नायिका के हृदय की क्या दशा है इस की ओर उनका ध्यान अधिक रहा है। कभी उसके पैर सौंदर्य के गर्व में धरती पर नहीं पड़ते तो कभी वही सौंदर्य उस रूपवती को नाक चढ़ाने की प्रेरणा देता है कभी वह कृष्ण को देखकर तिरछी २ चलती है।

हाव भाव और मुद्राओं का सौंदर्य के उत्कर्ष में बड़ा हाथ है। नायिका घूंघट में से देखती है उसके कटाक्ष बड़े तीक्ष्ण हैं। उसका रूप इतना उज्ज्वल है कि नेत्र चौंधिया जाते हैं तथा वह अपनी गुलाल की मूँठ जिस समय नायक पर फैंकती है उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वह उस पर जादू कर रही हो। (मूँठ चलाना एक जादू होता है जिसको अपने दुश्मन पर चलाकर अपने वश में किया जाता है।) यहाँ पर कवि ने इस मूठ शब्द के द्वारा सौंदर्य के आन्तरिक प्रभाव को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित कर दिखाया है। यदि कवि इस मुहाविरे को इस पद में प्रयुक्त नहीं करता तो केवल बाह्य चेष्टाओं का ही वर्णन मात्र रह जाता किन्तु भावुक कवि की दृष्टि तो अन्तर्वेधिनी है—

> घूंघट ओट तकै तिरछी घन-आनन्द चोट सुघात बनावै।
> बाँह उसारि सुधारि बरा सरवीर! हरा घरि ढूकति आवै।
> कौंधि अचानक चौंधि मरै चल चौकस चौंकति छाँह न छावै।
> बाल अनूठिये ऊड़ गुलाल की मूठि में लालहि मूठि चलावै॥

यदि यह कहा जाय तो और अधिक उचित होगा कि घनानन्द का बाह्य-चित्रण और हाव भाव वर्णन केवल इसी उद्देश्य से हुआ है ताकि आन्तरिक वृत्तियाँ और भी अधिक स्पष्ट हो सकें। कहीं भी ऐसा वर्णन कवि ने नहीं किया जिसमें केवल बाह्य रूप को प्रदर्शित करने की ओर ही अधिक ध्यान रहा हो। यदि कहीं-कहीं पर एक दो स्थान पर ऐसा हुआ भी है तो वह रीति-कालीन परिस्थितियों के प्रभाव के कारण।

कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन भी कवि ने इसी प्रकार भावमग्न होकर ही किया है। कृष्ण के रूप के प्रभाव से अचानक ही राधा के हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसका मन उस रूप के हाथों बिक गया। कृष्ण का संगीत

प्रेमयुक्त था। वह राधा की ओर देखकर अपने प्रेम को इस प्रकार अभिव्यजित कर गया कि उसी समय से राधा प्रेमोन्मत्त होकर झूमने लगी। कृष्ण के सङ्गीत की तानें उसके हृदय के तार तार को झंकृत कर गईं—

छवि सों छबीलो छैल आजु भौंर याही गैल,
अति ही रगीली भाँति औचक ही आयगौ।
चटक मटक भरी लटकि चलनि नीकी,
मृदु मुस्क्यान देखें मो मन बिकायगो।
प्रेम सो लपेटी कोऊ निपट अनूठी तान,
मोतन चिताय गाय लोचन ढुरायगौ।
तब मैं रही हौं घूमि झूमि जकि बावरी ह्वै,
सुर की तरगनि में रग बरसायगौ॥

प्रेम भरी चितवन और साथ ही प्रिय के सङ्गीत ने नायिका के हृदय पर जो प्रभाव डाला उसको घनानन्द ने किस चित्रोपमता के साथ प्रदर्शित किया है यह उनके कवि हृदय की पैठ के परिचय के लिये काफ़ी है।

रूप का प्रभाव कुछ विचित्र ही होता है। इसको ज्यों-ज्यों देखिये त्यों-त्यों इसको देखकर नेत्रों को तृप्ति नहीं होती। जिस प्रकार सगीत की ध्वनि भी अधिक व्यापक प्रभाव डालती है उसी प्रकार यह रूप भी जितना देखा जाय उतना ही व्यापक और असीम हो जाता है। मतिराम ने भी रूप के इस प्रभाव के दर्शन किये थे। प्रेमी घनानन्द तो रूप की आन्तरिक तहों को देख चुके थे उन्होंने भी मतिराम के निम्नलिखित भाव से अपने भाव को किसी प्रकार निम्नकोटि का नहीं रहने दिया—

'ज्यों-ज्यों निहारिये नियरे ह्वै नैननि त्यों त्यों खरी निकरैसी निकाई।'

किन्तु घनानन्द की आँखें उस रूप को ज्यो ज्यों देखती हैं त्यो त्यों उनकी आँखें उस रूप को अपने में केन्द्रित करने को लालायित होती हैं। ज्यों ज्यों उस रूप की आभा इन नेत्रों को दिखाई देती है त्यो त्यों देखने की चाह भी अत्यधिक बलवती और तीव्र होती जाती है—

छवि की निकाई ऐसी मोहन कन्हाई कछु,
बरनी न जाई जो लुनाई बरसत है।
वारिध तरंग जैसे धुनि राग रंग जैसे,
प्रतिछिन अधिक उमग सरसनि है।
किधौं इन नैननि सराहौं प्रान प्यारे,
रूप-रेलहि सकेलें तऊ दौरि तरसति है।
ज्यौं ज्यौं उत आनन पै आनन्द सु ओप औरै,
त्यौं-त्यौं इन चाहनि में चाह बरसति है॥

रूपवान् नंद का ढोटा आँखों के मार्ग से हृदय में बरबस ही प्रवेश कर रहा है। कृष्ण की बंशी का स्वर कुछ इस प्रकार है कि वह कानों में से प्रवेश करके प्राणों में हलचल मचा देता है। सम्पूर्ण व्रज में इसी बात की चर्चा है कि बंशी के इस वशीकरण मंत्र के निवारण का क्या उपाय है—

'काननि ह्वै प्राननि निकाय लेति ऐरी वीर!
ऐसो कछु गावत मधुर बंशी स्वर में।'

घनानन्द के शृगार चित्रण में हृदय की तन्मयता और विभोरता बाध चित्रण के ऊपर उठकर चली है। प्रियतम के साथ विहार करने की उत्कंठा से नायिका के हृदय में जो उमंग उठती है उसका वर्णन महाकवि घनानन्द की लेखिनी के द्वारा कितना चित्ताकर्षक और सुन्दर बन पड़ा है—

ललित उमग बेलि आल बाल अन्तर तें,
आनन्द के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी।
आगन उमाह चाह चायौ ले उछाह रंग,
अग अग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग,
दशा सुम सगुनौती नीके इनपै पढ़ी।
चुकी तरकि निलें सरकि उरज, भुज,
फरकि सुजान चोप चुहल महा मढ़ी॥

घनानन्द का आन्तरिक तथ्यों का वर्णन इतनी उचकोटि का है कि उनकी महानता बरबस ही स्वीकार करनी पड़ती है। बिहारी और पद्माकर आदि रीतिकालीन कवि संयोग चित्रण में केवल बाह्य उपकरणों को वर्णित कर के अपने आश्रयदाता की प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते थे किन्तु घनानन्द की कविता उनके हृदय की सच्ची अभिव्यक्ति थी। उनको किसी को प्रसन्न करके धन प्राप्त नहीं करना था। इसलिये उनका ध्यान किंकिणी के कोलाहल और मंजीर ने मौन की ओर न जाकर उस प्रभाव की ओर गया जो नायिका के नेत्रों तथा अन्य हाव भाव और मुद्राओं से प्रकट हो रहा था। यौवन का रंग और रूप आँखों में किस प्रकार की तृप्ति भर देता है तथा आलस्यपूर्ण मद भरी चितवन में क्या प्रभाव होता है? चाल में कैसा ढीलापन तथा एक लज्जाभाव का प्रदर्शन है? ऐसा प्रतीत होता है कि प्रियतम के मिलन से इस नायिका के सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो गये हैं—

मुख स्वेद कनी मुखचन्द बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली।
मद जोवन रूप छकी अँखियाँ अवलोकति आरस रंग मली॥
घन आनन्द ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दली।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ बेलि फली॥

यदि रीतिकालीन कवि इस प्रकार के वर्णन को करता तो उसका ध्यान अधिकतर संयोग के चित्र को प्रस्तुत कर कामोत्तेजना का प्रसार करने की ओर रहता। किन्तु घनानन्द तो अपने कवित्तों को किसी अन्य प्रेरणा अथवा किसी आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिये नहीं रचते। उनके कवित्त तो उनके हृदय के वह उद्‌गार हैं जिनको उन्होंने अपनी ही आत्मा के मनोरंजन करने के लिये रचा। उन्होंने अन्य लोगों के लिए अपने कवित्तों को नहीं बनाया वरन् उनके कथनानुसार 'मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'

इस महाप्रेमी ने सौंदर्य के अन्तस्तल में बैठकर संयोग और वियोग के अनेकों मनोवेगों को अनुभव किया और उन भावनाओं के अनेक भेद प्रभेदों को अपने काव्य में अभिव्यंजित किया। भाषा और सुन्दर छन्दों के चयन में

छवि की निकाई ऐसो मोहन कन्हाई कछु,
बरनी न जाई जो सुनाई बरसत है।
वारिध तरंग जैसे धुनि राग रंग जैसे,
प्रतिछिन अधिक उमग सरसति है।
किधौं इन नैननि सराहौं प्रान प्यारे,
रूप-रेलहि सकेलैं तऊ दीठि तरसति है।
ज्यौं ज्यौं उत आनन पै आनन्द सु ओप औरै,
त्यौं-त्यौं इन चाहनि में चाह बरसति है॥

रूपवान् नद का ढोटा आखों के मार्ग से हृदय में बरबस ही प्रवेश कर रहा है। कृष्ण की वशी का स्वर कुछ इस प्रकार है कि वह कानो में से प्रवेश करके प्राणों मे हलचल मचा देता है। सम्पूर्ण ब्रज में इसी बात की चर्चा है कि वशी के इस वशीकरण मत्र के निवारण का क्या उपाय है—

'काननि ह्वै प्राननि निकास लेति ऐरी बीर।
ऐसो कछु गावत मधुर वशी स्वर में।'

घनानन्द के शृगार चित्रण मे हृदय की तन्मयता और विभोरता बाह्य चित्रण के ऊपर उठकर चली है। प्रियतम के साथ बिहार करने की उत्कठा से नायिका के हृदय में जो उमंग उठती है उसका वर्णन महाकवि घनानन्द की लेखिनी के द्वारा कितना चित्ताकर्षक और सुन्दर बन पड़ा है—

ललित उमग बेलि आल बाल अन्तर तें,
आनन्द के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी।
आगम उमाह चाह चायौ ले उछाह रग,
अग अग फूलनि- दुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग,
दशा शुभ सगुनौती नीके इनपै पढ़ी।
कचुकी तरकि मिले सरकि उरज, भुज,
फरकि सुजान चोर चुहल महा बढ़ी॥

घनानन्द का आन्तरिक तथ्यों का वर्णन इतनी उच्चकोटि का है कि उनकी महानता बरबस ही स्वीकार करनी पड़ती है। बिहारी और पद्माकर आदि रीतिकालीन कवि सयोग चित्रण में केवल बाह्य उपकरणों को वर्णित कर के अपने आश्रयदाता की प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते थे किन्तु घनानन्द की कविता उनके हृदय की सच्ची अभिव्यक्ति थी। उनको किसी को प्रसन्न करके धन प्राप्त नहीं करना था। इसलिये उनका ध्यान किंकिणी के कोलाहल और मजीर ने मौन की ओर न जाकर उस प्रभाव की ओर गया जो नायिका के नेत्रों तथा अन्य हाव भाव और मुद्राओं से प्रकट हो रहा था। यौवन का रग और रूप आँखों में किस प्रकार की तृप्ति भर देता है तथा आलस्यपूर्ण मद भरी चितवन में क्या प्रभाव होता है? चाल में कैसा ढीलापन तथा एक लज्जाभाव का प्रदर्शन है? ऐसा प्रतीत होता है कि प्रियतम के मिलन से इस नायिका के सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो गये हैं—

> सुख स्वेद कनी मुखचंद बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली।
> मद जोवन रूप छकी अँखियाँ अवलोकति आरस रग मली॥
> घन आनन्द ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दली।
> गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ बेलि फली॥

यदि रीतिकालीन कवि इस प्रकार के वर्णन को करता तो उसका ध्यान अधिकतर सयोग के चित्र को प्रस्तुत कर कामोत्तेजना का प्रसार करने की ओर रहता। किन्तु घनानन्द तो अपने कवित्तों को किसी अन्य प्रेरणा अथवा किसी आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिये नहीं रचते। उनके कवित्त तो उनके हृदय के वह उद्‌गार हैं जिनको उन्होंने अपनी ही आत्मा के मनोरजन करने के लिये रचा। उन्होंने अन्य लोगों के लिए अपने कवित्तों को नहीं बनाया वरन् उनके कथानुसार 'मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'

इस महाप्रेमी ने सौंदर्य के अन्तस्तल में बैठकर सयोग और वियोग के अनेकों मनोवेगो को अनुभव किया और उन भावनाओं के अनेक भेद प्रभेदों को अपने काव्य में अभिव्यजित किया। भाषा और सुन्दर छन्दों के चयन में

ही स्वाभाविक चित्र उपस्थित करके उनके हृदय के भावों को सरलता पूर्वक अभिव्यक्त किया है—

> ✓छैल नये नित रोकत गैल सु फैलत कापै अरैल भये हौ।
> लै लकुटी हँसि नैन नचावति बैन रचावत मैन तए हौ।
> लाज अवै बिन काज लगौ तिन ही सौं पगौ जिन रंग रए हौ।
> ए ! दई सबै निकसैगी अबै घन-आनन्द आनि कहा उनए हौ॥

जिस सरलता के साथ घनानन्द ने गोपी और कृष्ण के भावों को अभिव्यंजित कर दिया यह उनकी भाव प्रवणता की सफलता है। गोपी के वचनों में प्रेम भाव की व्यंजना बड़ी सुन्दरता के साथ हुई है। उसके हृदय पर कृष्ण के रूप का प्रभाव उसकी उक्ति 'लै लकुटी हँसि नैन नचावति बैन रचावत मैन तए हौ' से बड़ी ही मार्मिकता के साथ स्पष्ट हो जाता है।

कृष्ण के रूप सौन्दर्य को मूर्तिमान करके तथा उस रूप के प्रभाव को कवि ने किस कुशलता के साथ प्रदर्शित किया है—

> ✓ डगमगी डगनि धरनि छवि के ही भार,
> ढरनि छबीले उर आछी बनमाल की।
> सुन्दर वदन पर कोटिक मदन वारौं,
> चित चुभी चितवन लोचन विसाल की।
> कालि्ह इहि गली अली निकस्यो अचानक है,
> काहू कहौं अटक मटक तेहि काल की।
> भिजई हौं रोम रोम आनन्द के घन, छाई,
> बसी मेरी अँखिन में आवनि गोपाल की।

कृष्ण के सौन्दर्य और चाल ढाल गोपी को कुछ इतना सुन्दर लगा जिसे वह वर्णन करने में अपने आप को असमर्थ पाती है। फिर भी वह उस पर जो प्रभाव पड़े उनको स्पष्ट अवश्य करना चाहती है—उसके हृदय में कृष्ण की चितवन प्रवेश कर गई और उसके कारण उसका रोम २ आनन्द से पुलकित हो गया। इसके अतिरिक्त यह नहीं हुआ कि कृष्ण के चले जाने पर

उनके रूप का प्रभाव चला गया हो वह फिर भी उसकी आँखों में आकर बस गया।

घनानन्द ने अपने काव्य में हृदयगत प्रभावों को ही अधिक स्थान दिया। उनके नायक नायिका अथवा गोपी कृष्ण केवल बाह्य रूप और चेष्टाओं को ही प्रदर्शित नहीं करते वरन् अपने हृदय के उल्लास और उद्गारों को व्यंजित करते हैं। इस सौन्दर्य को देखकर ऐसा नहीं होता कि बिना पत्रा के तिथि का पता न चले अथवा 'हरि नीके नैनानि तें हरि नीके ये नैन' कहकर ही नायिका के नेत्रों का वर्णन कर दिया जाय। घनानन्द के कृष्ण और राधा का सौंदर्य तो हृदय पर अपना अधिकार करके नाना प्रकार के मनोवेगों को जन्म देता है और उसी सौन्दर्य को न मिलने पर कवि की आत्मा विरहिणी होकर जीवन पर्यन्त उसका स्मरण करती रहती है। संयोग का वह आन्तरिक प्रभाव ही विरह होने पर वियोगिनी के हृदय के तार तार से झंकार निकालने लगता है। प्रो० रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में यदि यह कहा जाय तो बिल्कुल उचित होगा—'और विरह तो घनानन्द की पूंजी ठहरा। विरह के जो स्वर उनके हृदय से निकले हैं वह रीतिकाल तो क्या, सूर की कविता में भी दुर्लभता से मिलते हैं।..........रीतिकाल की बौद्धिक विरहानुभूति की निष्प्राणता और कुंठा के वातावरण में घनानन्द की पीड़ा की टीस सहसा ही हृदय को चीर देती है और मन सहज ही यह मान लेता है कि दूसरों के लिए किराये पर आँसू बहाने वालों के बीच यह एक ऐसा कवि है जो सचमुच अपनी ही पीड़ा से रो रहा है।' (अवन्तिका जनवरी १६५४)।

वियोग-पक्ष का भाव सौंदर्य :— घनानन्द का प्रेम कोई घटना मात्र नहीं था वरन् एक जीवन मरण का प्रश्न था। जिस भावुक कलाकार ने अपनी प्रेयसी के कारण राजदरबार को छोड़ा था अनेकों कुलीन वंशीय लोगों का अपमान सहा तथा उस काल के कवियों द्वारा उनकी खिल्ली उड़ाई गई वह प्रेम एक साधारण घटना नहीं हो सकता। घनानन्द ने अपनी प्रेमिका को अपने हृदय मन्दिर में स्थान दिया था। उसके विरह को वह किस प्रकार सहन कर सकते थे। उनकी आत्मा रोने लगी और उस रुदन में उनके हृदय के संचित भाव ही अश्रु बनकर बहे। उनका हृदय प्रेम रस से आर्द्र हो चुका था वह

प्रियतम के वियोग में तप्त हो गया और उसकी आर्द्रता रस वियोगजन्य ताप के कारण भाप बनकर उनके नेत्राकाश में जम गई और फिर स्मृति की घटाओं के छाने पर उसी प्रेम रस को जो भाप के रूप में था प्रवाहित करके रसिकों के हृदयों को निमज्जित करने लगी। प्रिय ने प्रथम तो इतना स्नेह बढ़ाया था किन्तु फिर इस प्रकार निर्मोही होकर चले गये कि जैसे कभी परिचय भी नहीं था। विरहिणी इसी दुःख के कारण रात दिन हाय हाय करती रहती है। यह यहाँ का न्याय है कि पहले तो मीठी २ बातें करके ठगलो और फिर बात भी न करो। किन्तु ईश्वर के यहाँ अवश्य इसका न्याय है कि जो किसी को तड़पाता है उसे भी तड़पना पड़ता है—

> 'सुनी है कि नाहिं यह प्रगट कहावति जू,
> काहू कल पाय है सु कैसे कलपाय है।'

कृष्ण की निठुरता पर राधा उनको अनेक उपालम्भ देती है। सच भी है कि जो हृदय टूट कर खण्ड २ हो चुका है उसमें उपालम्भ देने के अतिरिक्त और रहा भी क्या है? संयोग में किस प्रकार मीठी २ बातें करके स्नेह का पाठ पढ़ाया। जिन मधुरता पूर्ण बातों को सुनकर के कामोद्रेग हुआ था। उन आनन्द के क्षणों को कोई कैसे भुला सकता है? कृष्ण की वह बातें आज भी उस विरहिणी के हृदय में एक मधुर टीस उत्पन्न कर रही हैं। किन्तु प्रिय इतना निष्ठुर है कि उसको वियोगिनी की दशा पर तनिक भी दया नहीं आती—

> क्यों हँसि हेरि हरयो हियरा, अरु क्यों हित कै चित चाह बढ़ाई।
> काहे को बोलि सुधा सने बैननि, चैननि नैन निचैन चढ़ाई॥
> सो सुधि मो हिय में घन आनन्द सालति क्यों हूँ कढ़ै न कढ़ाई।
> मीत सुजान अनीति की पाटी इते पै न जानिये कौन पढ़ाई॥

जिसको प्रिय ने मँझधार से निकाल कर अपनी बाँह का सहारा दिया था और उसको अपना ही बना लिया था। उसको आज इस निष्ठुरता के सागर में डुबाया जा रहा है। यह तो उचित बात नहीं है क्योंकि जिस को प्रेम-रस

पिलाकर अपूर्व जीवन दिया था उसी के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया जाये—

> पहले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिर नेह कौ तोरिये जू।
> निरधार अधार दै धार मँझार दई। गहि बाँह न बोरिये जू॥
> घन-आनन्द आपने चातक कों, गुन बाँधि लै, मोह न छोरिये जू।
> रस प्याय कैं ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास में यों विष घोरिये जू॥

वियोग की चरम सीमा पर वियोगिनी की जो दयनीय अवस्था हुई है उसका चित्रण महाकवि ने अत्यन्त ही मार्मिकता के साथ किया है—

> खोय गई बुधि सोय गई सुधि, रोय हँस्यौ उन्माद जग्यौ है।
> मौन गहै, चकि चाकि रहै, चल बात कहै, तें न दाग दग्यौ है॥
> जान परै नहिं जान! तुम्हैं लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है।
> सोचति ही पचिये घन-आनन्द हेत पग्यो किधौं प्रेत लग्यौ है॥

विरह के कारण हृदय के अनेक भाव क्षण क्षण में अपना रंग उस विरहिणी के हृदय में उथल पुथल मचा कर दिखाते है। प्रेमोन्मत्तता की यह दशा कितनी करुणोत्पादक है। अब इस जीवन का क्या महत्व रहा? यदि यह प्राण भी प्रिय के साथ ही चले गये होते तो भी ठीक था लेकिन अब तो इनको भी इसी प्रकार से कष्टों को झेलना पड़ेगा। वियोगिनी के हृदय की कसक अनायास ही उसके मुख से बड़े मनोवैज्ञानिक ढङ्ग से निकल कर अपना प्रभाव पाठकों के हृदय पर डालती है—

'हिली मन भावन अकेली मोहि कै चले'

वास्तव में उसका घनीभूत दुःख इसी कारण से तो है। यदि प्रियतम का वियोग नहीं होता तो उसको जीवन में यह दयनीय दशा क्यों देखनी पड़ती।

उसका प्रेम तो चातक के समान ही है। जिस प्रकार चातक को अपने प्रिय स्वाति जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये इसी प्रकार घनानन्द की वियोगिनी भी केवल कृष्ण के दर्शनो के लिये ही अपने जीवन को इन वेदनाओं को सहन करते हुये भी रखना चाहती है। उसके बाँट में प्रिय का

स्मरण है और प्रिय के बाँट में उस वियोगिनी को विस्मृत कर देना आया है फिर उपालम यदि वह दे भी तो कैसे दे। यह तो दैव के द्वारा ही निश्चित कर दिया गया था। अब तो केवल प्रिय के गुणों को गाकर ही जीवन के दिन व्यतीत करने है और किसी भी प्रकार से इस प्रेम के पथ से पीछे नहीं हटना चाहे प्रिय कैसी भी निष्ठुरता क्यों न दिखाये। उसको तो यह विरह भी प्रेम की भेंट के रूप में ही स्वीकार है। इसलिये न कोई शिकायत है! और न किसी प्रकार की कमजोरी ही दिखानी है। घनानन्द की वियोगिनी नायिका अपने प्रिय के प्रति अपनी सद्भावना प्रकट करते हुये कहती है कि उसकी अवस्था चाहे जिस प्रकार की रहे किन्तु उसका प्रियतम सदा आनन्द और हर्ष के साथ अपना जीवनयापन करे—

'नित नीके रहौ तुम्हें चाद कहा पै असीस हमारियौ लीजियौ जू।'

विरहिणी को उत्सव और त्यौहारों के समय अपने प्रिय का न होना बड़ा खटकता है। होली का त्यौहार आनन्द और उल्लास को लेकर भारतीय गृहस्थों में आता है। किन्तु घनानन्द की वियोगिनी को किस प्रकार प्रियतम का वियोग खटकता है—

मेरो मन आली या विलासी बनमाली बिन,
बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर लौं।

विरहिणी निरपराध है। वह इस कारण इस प्रकार कृष्ण के द्वारा सताई जा रही है यदि इस प्रश्न को कोई उससे पूछे तो वह उसे क्या उत्तर दे? वियोगिनी अत्यन्त सरल भाव से कृष्ण से पूछती है—

यह देखि अकारन मेरी दसा कोई बूझै तो उत्तर कौन कहौं।
जिय नेकु विचारि कैं देउ बताय हहा प्रिय! दूरि तें पाँय गहौं॥

कृष्ण की निष्ठुरता को किस सुन्दरता के साथ व्यंजित किया है।—प्रेयसी उनकी निष्ठुरता को उनके मुख के द्वारा ही कहलाना चाहती है। यदि अपने मुख से प्रेमी की निन्दा करती है तो प्रेम के उदात्त भाव में कमी आजाती है। घनानन्द ने प्रेयसी की विवशता को किस मनोवैज्ञानिकता के साथ चित्रित किया है। प्रिय का वियोग प्रेयसी के ऊपर कुछ ऐसा प्रभाव डालता है कि

वह पत्र लिखने में भी अपने आपको असमर्थ समझती है। वियोग की अतिशयता के फल स्वरूप नेत्रों से अश्रुओं का स्रोत उमड़ता रहता है इस कारण उसकी आँखों के सन्मुख अश्रु ही छाये रहते हैं फिर भला वह पत्र किस प्रकार लिखे। हृदय में अनेकों भाव उठ रहे हैं किसे लिखे और किसे न लिखे। उसकी वेदना घनीभूत हो जाती है और वह अपनी वेदना को इन मर्मस्पर्शी शब्दों में व्यक्त करती है—

'प्रान मरेंगे भरेंगे बिथा पै अमोही सौं काहू कौ मोहन लागौ।'

आँसुओं का प्रवाह किसी भी प्रकार नहीं रुकता। वियोगिनी की दशा दिन प्रतिदिन क्षीणातिक्षीण होती जा रही है। कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं दिखलाई देता कि उसकी इस दशा का परिचय उसके प्रियतम को करादे। विवश होकर मेघ को ही अपना सन्देश वाहक बनाकर भेजती है। सम्भवतः घनानन्द की वियोगिनी को पता है कि जब यक्ष को कुबेर के द्वारा शाप देकर उसकी प्रिया से एक वर्ष को अलग किया था तो उस समय उसको मेघ ही एक ऐसा सहायक प्रतीत हुआ जो कि उसके सन्देश को उसकी प्रिया के समीप पहुँचाने में समर्थ था। घनानन्द की वियोगिनी के हृदय की परवशता किस प्रकार फूट निकली है इसका पता निम्नलिखित पद से स्पष्ट हो जाता है—

परकाजहि देह कौं धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सबही विधि सज्जनता सरसौ॥
घन आनन्द जीवन दायक हौ कछु मेरी यौ पीर हियें परसौ।
कबहू वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवान कौं लै बरसौ॥

इस प्रकार की छटपटाहट का चित्रण वही कर सकता है जो इस प्रकार के दुःख को स्वयं अनुभव कर चुका हो। घनानन्द का तो सम्पूर्ण जीवन ही विरह की यातनाओं में बीता था। उनकी सुजान लौकिक रही तब उसने उनको सताया और जब अलौकिक होकर कृष्ण का रूप धारण कर लिया उस समय भी उनको उसके वियोग में रोना पड़ा। वियोगी कवि ने अपने भग्न हृदय में भावनाओं को ही सजोकर रखा और उन्हीं को उसने अपने काव्य में अंकित कर

भाषा की स्वाभाविकता और सरलता उन के भावों का उत्कर्ष करने में अधिक सहायक रही है। घनानन्द ने अलंकारों और अनुप्रासों को जागरूक होकर काव्य में स्थान नहीं दिया वह तो उनके भावों के वेग के साथ स्वयं चले आये हैं। घनानन्द को शब्दों की शक्ति का पूरा ज्ञान था इसलिये उनके लाक्षणिक और व्यंग्य प्रयोग उनके भावों को उभाड़ने में अधिक सहायक हुये हैं। उक्तियों की विचित्रता का तो इतना सुन्दर प्रयोग है जिसकी प्रशंसा नहीं की जाती। मुहाविरे और लोकोक्तियों को भी इस महान् कलाकार ने बड़ी सुन्दरता और उपयुक्तता के साथ व्यवहृत किया है। इस प्रकार महाकवि घनानन्द के काव्य में जिस प्रकार हृदय की गहरी पैठ थी उसी प्रकार कला-पक्ष की कुशलता भी उच्चकोटि की थी। किन्तु कवि ने कभी भावों के ओझिल करने को इन कला-पक्ष के उपकरणों को नहीं अपनाया। कुछ उदाहरणों के द्वारा इनके कला-पक्ष का समन्वित रूप स्पष्ट हो जावेगा कि किस प्रकार इन्होंने अलङ्कारों और अन्य उपादानों का व्यवहार किया है।

कला का समन्वित रूप :—घनानन्द का काव्य प्रत्येक दृष्टि से सन्तुलित काव्य है। कवि ने मनोवेगों के चित्रण के साथ २ कल्पना का रंग भी इस प्रकार चढ़ाया है कि वह उसके चित्रों को अत्यन्त स्पष्टता प्रदान करता है। अंत-प्रकृति के अङ्कन को कवि ने जिन साधनों से जुटाकर रखा है वह इस बात का परिचायक है कि कवि का ध्यान भावोत्कर्ष की ओर ही अधिक रहा। ऐसा नहीं हुआ कि भाव-पक्ष कला-पक्ष के कारण दब गया हो अथवा कलापक्ष ने चमत्कार का रूप धारण कर लिया हो। अलङ्कार और अनुप्रासों की छटा यदि दिखलाई देती है तो वह भावों की उच्चता को स्पष्ट करने के लिये ही। घनानन्द की अभिव्यक्ति जिस प्रकार सरल और स्वाभाविक है उसी प्रकार उनका कलापक्ष भी अत्यन्त सरल और स्वाभाविक होते हुये भी उच्चकोटि का है। रूप का चित्रण करते हुए कवि ने जो सफलता दिखाई है वह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगी—

> झलकै अति सुन्दर आनन गौर
> छके दृग राजत काननि छ्वै।
> हँसि बोलन में छवि फूलन की

बरसा,उर ऊपर जाति है ह्वै ।
लट लोल कपोल कलोल करै
कल कंठ बनी जल जावलि द्वै ।
अङ्ग अङ्ग तरङ्ग उठै दुति की,
परि है मनी रूप अबै धरच्वै ।

सौन्दर्य को किस प्रकार मूर्तिमान करके कवि ने दिखाया है । नेत्रों की विशालता दर्शनीय है । हँसी की स्निग्धता फूलों के समान है जो अत्यन्त ही मोहक है । अङ्ग अङ्ग से कान्ति की छटा प्रस्फुटित हो रही है ऐसा प्रतीत होता है कि मानो रूप का रस कहीं चू न पड़े । रूप और सौन्दर्य दोनों का बाह्य-चित्रण इस प्रकार से किया है कि उसका आन्तरिक प्रभाव भी स्पष्ट परिलक्षित होता है । अन्तिम पंक्ति में 'परि है मनों रूप अबै धरिच्वै' का प्रयोग बड़ा सार्थक है । एक ओर भाव को स्पष्ट करता है तो दूसरी ओर उत्प्रेक्षा अलङ्कार की भी छटा है । तीसरी पंक्ति, 'लट लोल कपोल कलोल करै कल कंठ बनी जल जावलि द्वै' में अनुप्रास का कितना सुन्दर प्रयोग है । भाषा की सरलता और मधुरता के साथ २ प्रवाहशीलता भी कितनी उपयुक्त है ।

भाषा की भावोनुकूलता और अनुप्रास तथा अलङ्कारों का प्रयोग घनानन्द के हृदय की भावधारा के प्रवाह के साथ ही निकले हैं । उनको उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ा । इसके अतिरिक्त शब्द भावों की उत्कृष्टता में सहायक हैं । राधा कृष्ण की जिस तल्लीनता के साथ प्रतीक्षा करती है उसको जो चित्रोपमता इस महाकवि ने दी है वह अपनी समता नहीं रखती—

मोर तें साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नैंकु न हारति ।
साँझ ते मोर लौं तारन ताकिबो तारनि सौं इकतार न टारति ।
ज्यौ कहूँ भावतो दीठ परै घन-आनन्द आँसुन औसर गारति ।
मोहन सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन कै उर आरति ॥

उपर्युक्त सवैया घनानन्द के कलाकौशल के उच्च स्तर का परिचायक है । पूर्वानुरागिनी नायिका राधा के प्रेम की विभोरता और तल्लीनता को किस

उचना के साथ प्रदर्शित किया है। भावों की अतिशयता के साथ २ कला के खजाने की कौन सी सामग्री ऐसी है जिसे कलाकार ने न जुटाया हो। अलङ्कार अनुप्रास, भाषा सौंदर्य सभी का समन्वित रूप उस में कवि के द्वारा रख दिया गया है। द्वितीय पंक्ति तो कला की दृष्टि से इतनी उच्च है कि रीतिकालीन कवियों की कला भी इसके सन्मुख भारिल और प्रयत्नसाध्य प्रतीत होगी। तीसरी पंक्ति का भाव भी कवि की मौलिक देन है। कल्पना के द्वारा कवि ने भाव को मूर्त्तिमान कर दिया है।

नायिका प्रेमोन्मत्त होकर बेसुध हो गई है उसको अपनी दशा का तनिक भी होश नहीं। उसकी दशा इतनी बिगड़ गई है कि ऐसा प्रतीत होता है कि वह प्रेम के कारण इस अवस्था को पहुँची है अथवा उससे भूत प्रेत लग गये हैं। कवि ने भाव के प्रदर्शन में कला-पक्ष को भी भावों के अनुकूल ही रखा है। सरलता और स्वाभाविकता कवि का साथ नहीं छोड़ती—

> खोय गई बुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसै उन्माद जग्यौ है।
> मौन गहै चकि चाक रहै, चलि बात कहै, तै न दाह दग्यौ है।
> जानि परै नहि जान ! तुम्हें लखि काहि कहा कछु आहि सग्यौ है।
> सोचनि ही पचिये घनआनद हेतु पग्यौ किधौ प्रेत लग्यौ है॥

प्रेम से पीड़ित विरहिणी की दशा का कितना सजीव चित्रण है। अनुप्रास की छटा और सन्देह अलङ्कार का कितना सुन्दर सामञ्जस्य है।

इस प्रकार घनानन्द के काव्य में अनेकों उदाहरणों से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि उनका काव्य सौंदर्य केवल एक पक्ष पर ही आधारित नहीं था। भाव तो उनकी रचनाओं में सर्वदा उच्चकोटि ही का रहा किन्तु कला-पक्ष भी किसी प्रकार गौण अथवा खिलवाड़ मात्र नहीं। वह भी भावपक्ष के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चलता है और यही उनकी सफलता का कारण तथा उनको रीति की परम्परा से अलग ले जाने का कारण है।

भाषा की सङ्गीतात्मकता भी घनानन्द के काव्य सौंदर्य के उत्कर्ष का प्रमुख कारण रही है। शब्द की ध्वन्यात्मकता के कारण जो उनकी रचनाओं में प्रवाहशीलता है वह अत्यन्त अनूठी है। विरह व्यथित हृदय इस दयनीय

अवस्था को प्राप्त हो चुका है कि अब वह पवन के द्वारा ही अपने प्रियतम के चरणों की धूलि को मँगाना चाहता है। भाषा की सजीवता और प्रवाह शीलता के कारण कवित्त में जो संगीतात्मकता आई है। वह विरह जन्य परवशता को किस प्रकार स्पष्ट करती है—

> ऐरे बीर पौन! तेरो सबै ओर गौन, वारी
>
> तो सो और कौन, मनैं ढरकौंहीं बानि दै।
>
> जगत के प्रान ओछे बड़े तो समान घन-
>
> आनन्द-निधान सुखदान दुखियान दै॥
>
> जान उजियारे गुन-भारे अन्त मोही प्यारे,
>
> अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहचान दै।
>
> विरह-विथाह मूरि, आँखिन में राखौं पूरि,
>
> धूरि तिन पायन की हा हा नेंकु आनि दै॥

शुक्ल जी इस कवित्त की भाषा की संगीतात्मकता पर अत्यन्त लट्टू थे। उनके कथनानुसार इस कवित्त से मृदंग की ध्वनि ध्वनित होती है। किन्तु इसी एक कवित्त में क्या घनानन्द का काव्य इसी प्रकार की भाषा से ओत प्रोत है। भाषा की सङ्गीतात्मकता के कारण ही इनके सवैया और कवित्त पाठकों को इतना तन्मय कर देते हैं कि कभी २ वह इन रचनाओं से सङ्गीत का आनन्द ही लेते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि घनानन्द का काव्य भाव और कला दोनों के सामजस्य को लेकर ही चला है। कहीं पर भी कवि का ऐसा प्रयास नहीं कि उसने केवल कला-पक्ष का प्रदर्शन किया हो अथवा भाषा के सजाने का कोई प्रयास किया हो। उनका काव्य हृदय के वास्तविक उद्‌गारों की अभिव्यक्ति है और उस अभिव्यक्ति को जिस कला के द्वारा सजाया गया है वह कला भी स्वाभाविक और सरल ही है। घनानन्द का काव्य इस प्रकार उन उत्तम काव्यों में आता है जो कवि के प्रयास के बिना ही भावना की तरंगों के उठने पर रचे जाते हैं।

विद्यापति, सूर, तुलसी आदि महाकवियों के काव्य इसलिये ही सरल हैं कि उनमें भाव और कलापक्ष की सामग्री का प्रयोग सन्तुलित रूप में है। घना-

नन्द के काव्य मे भी इसी प्रकार का सन्तुलन विद्यमान है। केवल कला का प्रदर्शन जैसा कि रीतिकाल के कवियों की रचनाओं में मिलता है घनानद के काव्य में नहीं मिलता। शब्दालकार को कवि ने कहीं भी अधिक महत्व नहीं दिया। यदि शब्दालङ्कारों का प्रयोग कहीं पर हुआ है वह भी उनके भावों को उच्चता प्रदान करता है। बिहारी और सेनापति के समान चमत्कार और कलाबाज़ी का प्रदर्शन घनानद के काव्य मे खोजने पर भी नहीं मिलेगा। उनका एक भी कवित्त और सवैया इस प्रकार का नहीं जिससे यह प्रकट हो कि उसमें कवि ने अपनी बुद्धि का प्रयास किया है।

कला-पक्ष और उसके विभिन्न उपकरणों का प्रयोग—

अलङ्कार:—अलङ्कारों का कविता में एक महत्व पूर्ण स्थान है। कवि की कल्पना की ऊँची उड़ानें इन्हीं के प्रयोग से काव्य में स्थान पाती हैं। यदि यह कहा जाय तो उचित होगा कि अलङ्कार ही कवि कल्पना के रूप को स्पष्ट करने का साधन है। भावों के प्रदर्शन में कवि की कल्पना न जाने कहाँ कहा से सादृश्य और समानता का आरोप कर इन अलङ्कारों का सृजन करती है। कभी विरोध के द्वारा भावो को उभार कर उन्हें मूर्तिमत्ता प्रदान करती हैं। अलङ्कार वास्तव में कविता कामिनी के आभूषण हैं। किन्तु यह आभूषण यदि भार रूप बनकर लद जाते हैं तो काव्य के स्वाभाविक स्वरूप में भी बाधा डालते हैं। सफल कलाकार का कर्त्तव्य है कि वह इन अलङ्कारों का प्रयोग केवल काव्य की आत्मा भाव के उत्कर्ष के लिये ही करे। जिस प्रकार एक सुन्दर स्त्री का उपयुक्त शृङ्गार उसकी परिष्कृत मनोवृति का परिचय देता है उसी प्रकार काव्य में अलङ्कारों का उपयुक्त प्रयोग काव्यगत भावों की उच्चता को प्रदर्शित करने में सहायक है। घनानन्द ने अपने काव्य मे अलङ्कारों का प्रयोग किया है किन्तु वह अलङ्कार उनकी कला की उच्चता को ही प्रदर्शित करते हैं। उनके काव्य में साम्यमूलक और विरोध-मूलक सभी प्रकार के अलङ्कारों का प्रयोग है। विरोध मूलक अलङ्कारों की प्रधानता उनके काव्य में अधिक है। विरोध और विरोधाभास की तो इतनी भरमार है कि उनकी सख्या सैकड़ों तक पहुचती है। इसके अतिरिक्त उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा सदेह, भ्रम, अपन्हुति, असंगति आदि अनेकों

अलङ्कार भरे पड़े हैं। अब देखना यह है कि कवि का यह अलङ्कार विधान कहीं रीतिकालीन कवियों के समान केवल चमत्कार और पांडित्य का प्रदर्शन मात्र तो नहीं है। सर्व-प्रथम विरोधाभास और विरोध को ही लेना चाहिये क्योंकि इनका प्रयोग कवि ने अधिक किया है। वियोगिनी के जीव को उसके प्रियतम ने पतंग बनाकर आशारूपी आकाश में अवधि रूपी डोर में बाँधकर उड़ा दिया। उन्होंने उसके प्राण रूपी पतंग को बड़े चाव से ढील देकर उड़ा दिया है। किन्तु वह 'उड़ायक' इस पतङ्ग को अपनी ओर नहीं खींचता यद्यपि यह वियोग की वायु की अधिकता से फटी जा रही है। उस विरहिणी को आश्चर्य इस बात का है कि उसके प्राण रूपी पतङ्ग उसके प्रियतम के हाथ में रहते हुये भी उनका सामीप्य सुख प्राप्त नहीं कर पाते। विरह रूपी समीर की झकोरों में प्राण रूपी पतङ्ग चचल हो रहे हैं और स्नेह रूपी अश्रुजल से यह प्राण भीग गये हैं फिर भी वे आशा रूपी आकाश में छाये हुये हैं।

विरोधाभास की छटा के द्वारा दो स्थान पर भाव में उत्कर्ष लाने का कितना सुन्दर प्रयोग कवि ने किया है—१ 'हाथ साथ लाग्यौ, पै समीप न कहूँ लहै' के द्वारा प्रेम के इस भाव को व्यजित किया है कि मन प्रिय के हाथ में रहते हुए भी उनका सामीप्य सुख प्राप्त नहीं कर सकता। २—'नेह-नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड्यौ रहै' में स्नेह रूपी नीर के भीगने पर भी मन न जाने क्यों उड़ रहा है। इस प्रकार विरोध के द्वारा भाव की उत्कृष्टता के दर्शन बड़ी ही सुन्दरता के साथ कराये हैं। साथ ही न जाने कितने अन्य अलकारों को भी बड़ी स्वाभाविकता के साथ प्रदर्शित किया है—रूपक तो सर्वत्र पद में ही है। नीर·· ···रहै में तीसरी विभावना भी स्पष्ट है। साथ ही भाव की उच्चता भी अपनी समता नहीं रखती।

> आस ही अकास मधि अवधि-गुनै बढ़ाय
>
> चोपनि चढ़ाय दीनी, कीनी खेल सो यहै।
>
> निपट कठोर ये हो ऐंचत न आप ओर,
>
> लाड़िले सुजान सो दुहेली दसा को कहै॥
>
> अचिरजमई मोहि भई घन-आनन्द यों,

हाय साय लाग्यौ पै समीप न कहूँ लहै ।
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह,
नीर भीज्यौ जीव, तऊ गुड़ी लौं उड्यौ रहै ॥

विरोधाभास भी अकेला नहीं आता और भी अलङ्कार उसके साथ २ अनायास ही चले आते हैं। नीचे सवैये में अलङ्कारों का प्रयोग कितना स्वाभाविक है—

धन-आनन्द जीवन मूल सुजान की कौंधन हूँ न कहूँ दरसैं ।
सु न जानिये धौं कित छाय रहे दृग-चातिग-प्रान तपे तरसैं ॥
बिन पावस तो इन्हे थ्यावस होन, सु क्यों करि ये अब सो परसैं ।
बदरा बरसैं रितु पै घिरि कैं नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं ॥

अन्तिम पंक्ति—'बदरा बरसैं······उघरी बरसैं' में विरोधाभास का सुन्दर प्रयोग है और पूरे पद में श्लिष्ट रूपक है।

विरोध का एक उदाहरण और देखिये—जब से प्रिय को देखा है उस समय से प्रेयसी की जो दशा हो रही है उस को अलकार के प्रयोग ने कितना मार्मिक बना दिया है—

जे तो घट सोधौं पै न पाऊँ कहाँ आहि सो धौं
कौधी जीव जारै अटपटी गति दाह की ।
धूम कौं न धरैं गात सीरौ परै ज्यौं ज्यौं जरै,
ढरै नैन नीर बौर! हरै मति आह की ॥
जतन बुझै हैं सब जाकी झर आगें, अब,
कबहूँ न दबै भरी भमक उमाह की ।
जब तें निहारे घन-आनन्द सुजान प्यारे,
तबतें अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥

जब से आनन्द के घन (कृष्ण) को देखा है उस समय से यह प्रेम की अग्नि और भी अधिक तीव्र हो गई है। बादलों को देखकर अन्य आग तो मंद पड़ जाती है किन्तु यह प्रेम की आग कुछ इस प्रकार की है कि यह बादलों

को देखकर और भी अधिक तीव्र हो जाती है ! व्यतिरेक अलकार के द्वारा प्रेम की आग को सामान्य आग से अधिक बढ़ी चढ़ी बताया है ।

इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्ति में भी विरोधाभास को कितनी सरलता पूर्वक दिखाया गया है—

'झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित कचाई पाक्यौ,
ताके गुनगन घन-आनन्द कहा गनौ ।

'झूँठ की सचाई छाक्यौ······पाक्यौ' में विपरीत-लक्षणा से विरोधाभास की सुन्दर झलक है ।

प्रिय के दर्शनों से आंखों को तृप्ति हो नहीं होती चाहे वह प्रियतम को कितना ही देखती रहें । अब इन आँखों की दशा कुछ इस प्रकार की होरही है जैसे कोई भस्मक रोग का आदमी खाना अधिक चाहता है किन्तु उसको लघन करने पड़े—

✓देखिये दसा असाध अँखियाँ निपेटनि की,
भसमी बिथा पै नित लघनि करति है।'

स्नेह को सभी कवियों ने सुख देने वाला और रस से सिक्त करने वाला कहा है । किन्तु घनानन्द की नायिका के हृदय में स्नेह युक्त बातों को सुनकर अग्नि प्रज्वलित होने लगती है तथा ज्वाला के अनेकों समूह मशाल की भांति जलने लगते हैं—

नेह-भीजी बातें रसना पै उर-आँच लागै
जागै घन-आनन्द ज्यों पुञ्जन मसाल है ।

अन्य अग्नि तो चिनगारी निकालती हैं किन्तु इस विरह की अग्नि से नेत्रों में अश्रुजल की वर्षा होती है । चाँदनी शीतलता प्रदान करने वाली होती है किन्तु उस विरहिणी को चाँदनी भी अग्नि के समान दग्धकारी प्रतीत होती है । इसके अतिरिक्त अग्नि की झर तो नीचे से ऊपर की ओर चलती है किन्तु उस विरहिणी को चांदनी रूपी ज्वाला ऊपर से नीचे की ओर आकर जलाती है—

'है विपरीत महा घन आनन्द अम्बर तें धर को भर लाई।
जारति अङ्ग अनङ्ग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई॥

इसी प्रकार कटाक्षों के बाणों को भी कवि ने विरोधाभास के द्वारा सामान्य बाणों से अद्भुत कहा है। सामान्य बाणों को देखकर मनुष्य को भय लगता है किन्तु कटाक्ष रूपी बाण मन को अत्यन्त अच्छे लगते हैं—

> 'चलत सजीवन सुजान दृग-हायन तें,
> प्यारी अनियारी रुचि रखवारी ओट हैं।
> जब जब आवैं तब तब अति मन भावै
> अहा कहा विषम कटाक्ष-सर-चोट है॥'

प्रिय के दर्शनों की प्यासी आँखें न जाने कहाँ से अश्रुओं की इतनी लम्बी धारा को प्रवाहित कर रही हैं। प्यासी स्वयं हैं किन्तु उन्हीं के द्वारा पानी भी बहाया जा रहा है कैसी विरोधी बात है—

'प्यास भरी बरसें तरसें मुख देखन कौ अँखियां दुखियाई।'

घनानन्द की विरहिणी अन्य विरहिणियों से अनोखी है। अन्य विरहिणी तो विरह में ही अपने प्रियतम से अलग रहती हैं किन्तु इस के संयोग में भी विरह के समान ही प्रियतम मे दर्शनों में बाधा पड़ती है। घनानन्द ने किस चतुरता के साथ वियोगिनी की परवशता के भाव को व्यक्त किया है—

'कौन वियोग भरे अँसुआ जो वियोग में आगेई देखन धावत'

वियोगिनी ने आँखों में उजड़ेपन को बसा रखा है। यह भी महान आश्चर्य की बात है कि उजड़ी हुई चीज़ को बसाया कैसे जा सकता है। लेकिन महाकवि घनानन्द की विरहिणी की आँखों में तो इसी प्रकार का विरोध है—

> 'उजरनि बसी है हमारी अंखियांन देखो,
> सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हो।'

इसी प्रकार जल अङ्गों को जलाता है और राग के गाने से स्वर भंग हो जाता है तथा सम्पत्ति विरक्ति का कारण हो जाती है—

'जल जारै अङ्ग, और राग करै स्वर भङ्ग
सपति विपत्ति पारै, बड़ी विपरीति है।'

विरोधाभास अलङ्कारों के द्वारा कवि ने अपने काव्य में जो सौन्दर्य का उत्कर्ष किया वह हिन्दी के अन्य कवियों में ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा। इस अलङ्कार पर कवि का एक मात्र अधिकार था। उनके काव्य में इस अलङ्कार के द्वारा अर्थ सौन्दर्य की सुन्दर योजना की गई है।

रूपक के द्वारा भी कवि ने अर्थ को सौन्दर्य प्रदान किया है। कहीं पर अङ्गों की दशा को होली के राग-रङ्ग के रूप में रूपक के सहारे दिखाया है कहीं पर शरीर के ऊपर ऋतुओं का ही आरोप कर दिखाया है। घनानन्द के काव्य में रूपक को भी अधिक महत्व दिया है। नायिका का शरीर पीला पड़ गया है ऐसा प्रतीत होता है उसके अङ्गों को कामदेव ने रङ्गकर होली खेली है। नेत्रों से अश्रुप्रवाह निकलकर पिचकारी का कार्य कर रहा है। उसके छिटके बालों से प्रतीत होता है कि उनको किसी ने होली खेलते झकझोर दिया है इसलिये बाल बिखर गये हैं। विरह की अग्नि को हृदय में जलाकर नायिका ने होली के जलाने का उपक्रम किया है और जिस प्रकार नये अनाज को होली की आग में भूनते हैं, उसी प्रकार वह अपने प्राणों को होरा बना रही है। रूपक की सफलता का अच्छा उदाहरण है—

पीरी परि देह छीनी, राजति सनेह भीनी
कीनी है अनग अङ्ग अङ्ग रङ्ग बोरी सी।
नैन-पिचकारी ज्यों चल्यौई करै दिन रैन,
बगराये बारन फिरत झकझोरी सी॥
कहाँ लौं बखानौं घन-आनन्द दुहेली दसा,
फागमई भई जान प्यारे वह भोरी सी।
तिहारे निहारे बिन प्रानन्हि करति होरा,
विरह-अङ्गारनि मगार हिय होरी सी॥

कहीं पर प्रिय की निष्ठुर नीति को शिकारी की नीति से भी अधिक निष्ठुर और कठोर कर दिखाया है। जिस प्रकार शिकारी चुगा डालता है

उसी प्रकार प्रिय ने भी कपट के प्रेम का चुगा डालकर उस विरहिणी को भी अपनी गुण रूपी रस्सी में फाँस लिया है। जिस प्रकार बहेलिया पखों से हीन कर देता है उसी प्रकार प्रिय ने भी उसको असहाय कर दिया है। अब तक तो उसके प्राण रूपी खग आशा रूपी वृक्ष पर बैठे थे किन्तु अब उनका वहाँ पर बैठना कठिन है क्योंकि प्रिय की सुन्दरता रूपी चुगा अब भी उनको लालायित कर रहा है—

> अधिक बधिक तें सुजान रीति रावरी है,
> कपट चुगौ दै फिर निपट करौ बुरी।
> गुननि पकरि लै निपाँख करि छोड़ि देउ,
> मरहि न जियै, महा विषम दया-छुरी॥
> हौं न जानौं कौन धौं ही यामैं सिद्धि स्वारथ की,
> लखी क्यों मरति प्यारे अन्तर-कथा दुरी।
> कैसे आशा-द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग
> बनक निकाई धन-आनन्द नई जुरी॥

वियोग में प्रानरूपी पखेरू रूप रूपी चुगे को देखकर फँसने को लालायित हो जाते हैं इसलिये वियोगिनी प्रिय से प्रार्थना करती है, कि अब तो अवधि रूपी दिवाकर का अस्त होने वाला है इसलिये मुखरूपी चन्द्र को दिखाने की कृपा करिये—

> 'प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगौ पु फँदे गुन गायन।
> \+ + + +
> \+ + + +
> देहु दिखाय दई मुख-चन्द्र लग्यौ अब औधि दिवाकर आयनि।

विरह के कारण नायिका के अङ्गों का सौंदर्य उसी प्रकार झड़ गया है जिस प्रकार कि पतझर में पेड़ों की दशा हो जाती है। विरहिणी के शरीर की दशा को रूपक के आधार से पतझर के समान दिखाने में महाकवि घनानन्द अत्यन्त ही सफल हुये हैं—

ललित तमालनि सौं वलित नवेली बेलि,
केलि-रस झेलि हँसि लह्यौ सुख सार है।
मधुर विनोद स्वेद जलकन मकरंद,
मलय समीर सोई मोद उद्‌गार है।
वन की वनक देखि कठिन मनी है आनि,
वनमाली दूर आली सुनै को पुकार है।
बिन घन-आनन्द सुजान अङ्ग पीरे परि,
फूलत बसन्त हमें होत पतझार है॥

साँग रूपक के द्वारा कवि ने कृष्ण की दशा का चित्रण वर्षाकालीन मेघ के समान बड़ा ही सुन्दर किया है—

तेरे हित हेली! अनुराग-बाग-वेली करि,
मुरली-गरज झूमि-झूमि सरसत है।
लोने अङ्ग रङ्ग आनि चंचला छटा सौं पट,
पीत फौं उमगि लै लै हिये परसत है।
चाह के समीर की झकोरनि अधीर ह्वै ह्वै,
उमड़ि घुमड़ि याही ओर दरसत है।
लोचन सजल क्यौं हू उघरै न एकौ पल
ऐसे नेह नीर घनश्याम बरसत है॥

इसी प्रकार प्रेयसी की उमग को रूपक के द्वारा व्यंजित करके अप्रस्तुत में प्रस्तुत के विधान का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। प्रिय के आने की प्रसन्नता के कारण जो प्रेयसी की अवस्था हुई है उसको कवि ने मूर्तिमत्ता प्रदान कर अपने कला-कौशल का अच्छा परिचय दिया है—

ललित-उमग-बेली आलवाल-अन्तर तें,
आनन्द के घन सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी।
आगम उमाह-चाह छायी सु उछाह रग,
अङ्ग अङ्ग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी॥
बोलति बधाई दौरि दौरि कें छबीले दृग,

हाय साथ लाग्यौ पै समं प न कहूँ लहै।
विरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह—
नीर भींज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड़यौ रहै॥

यथासंख्य अलंकार का एक सुन्दर उदाहरण कवि ने दिया है। मीन और पतङ्ग के विषय में कुछ नहीं कहा केवल उनसे विरहिणी के प्रेम का आभास दिया है—

'बिछुरे मिलै मीन पतङ्ग दशा कहा मो जिय की गति को परसै'

परिवृत्ति अलङ्कार का प्रयोग भी कवि ने भावाधिक्य में आकर ही किया है—

'घन-आनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एकतें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौ पाठी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥'

एक मन अर्थात् पर्याप्त मात्रा में तो ले लेते हो किन्तु उसके बदले में देते छटाँक भर भी नहीं। दूसरे शब्दों में मन जैसी बहुमूल्य वस्तु के बदले में एक कटाक्ष भी (छटाँक का उल्टा) नहीं देते।

असंगति अलङ्कार का एक उदाहरण उनके काव्य सौंदर्य को दिखाने को पर्याप्त होगा। वैसे तो असंगति अलङ्कार का प्रयोग भी उनके काव्य में अनेक स्थानों पर किया गया है। कटाक्ष का प्रभाव बड़ा ही भयकर होता है—

'नैननि मे लागै जाय लागै सो करेजे बीच'

अपन्हुति अलकार को भी कवि ने अपने काव्य में स्थान दिया है—

'जारत अङ्ग अनङ्ग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई।'

उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अन्य अलकार तो घनानन्द के काव्य में अनेक हैं। उनका उदाहरण देना आवश्यक नहीं। शब्दालङ्कारों में श्लेष, यमक आदि अलङ्कारों का प्रयोग कवि ने बहुत कम किया है। इसका कारण भी स्पष्ट है। कवि को उन अलकारों को अपने काव्य में स्थान नहीं देना था जो कि चमत्कार मात्र के लिये व्यवहृत होते हैं। काव्य में शब्दालकारों का प्रयोग केवल चमत्कार प्रदर्शन के लिये ही होता है। रीतिकालीन कवियों ने शब्दालकारों

के प्रयोग में अपनी रुचि अधिक दिखलाई थी। सेनापति ने तो इन अलंकारों को अपने काव्य में इतना अपनाया कि उन्होंने श्लेष वर्णन नाम से सैकड़ों पद लिख डाले। महाकवि घनानन्द का काव्य चमत्कार प्रदर्शन के दोष से सर्वथा वंचित रहा। उन्होंने तो अर्थ गौरव की ओर ही अपना ध्यान आकर्षित किया और उसी का परिणाम है कि उनके काव्य में अधिकतर अर्थालङ्कारों को ही स्थान दिया गया। फिर भी उनके काव्य में कहीं-कहीं शब्दालङ्कारों का प्रयोग भी किया गया है। यमक के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

१— मोही मोह जनाय के, अरे अमोही मोहि।
सो ही मोहीं सी कठिन, क्यों करि सोही तोहि॥

इसमें सोही और मोही शब्दों का प्रयोग भिन्नार्थक है।

इसी प्रकार एक और पद में भी यमक का सुन्दर समावेश कवि प्रतिभा द्वारा किया गया है—

मानस को मन है जग पै,
बिन मानस के मन से दरसै हो।
जे मन मानस ते सरसे तिन
सों मिलि मानस क्यों सरसे हो॥

परिकुराङ्कुर का संश्लिष्ट चमत्कार कवि के द्वारा किया गया है—
'मेरो मनोरथ हू पुरिये अरु है जु मनोरथ पूरनकारी'

उपर्युक्त 'मनोरथ' शब्द में श्लेष की भी सुन्दर झलक है—मनोरथ का अर्थ मन का रथ हुआ और साथ ही अर्थ को ध्वनित करता है इसके अतिरिक्त अर्जुन का रथ कहने का कार्य भी ध्वनित होता है।

अनुप्रासों पर तो घनानन्द का एकाधिकार था। इनके काव्य में अनुप्रासों की छटा तो क़दम क़दम पर परिलक्षित होती है। अनुप्रासों के प्रयोग के कारण ही इस महाकवि ने अपने काव्य को सङ्गीतात्मकता प्रदान कर एक विकसित रूप दिया। भाषा की प्रसादशीलता और तीव्रगति अनुप्रासों के प्रयोग के कारण ही है। एक नहीं इस प्रकार के अनेक उदाहरण उनके काव्य

में से दिये जा सकते हैं जहाँ अनुप्रासों का प्रयोग भी इनके काव्य को भावोत्कर्ष की ओर ले गया है—

'साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सौं इकतार न टारति'

नीचे की पंक्ति में 'र' और 'भ' की पुनरावृत्ति के द्वारा अनुप्रास की कितनी सुन्दर योजना महाकवि ने की है। साथ ही इन अनुप्रासों के द्वारा काव्य के भाव-पक्ष को भी उठाया है—

'निरधार अधार दै धार मँझार, दई ! गहि बाँह न बोरिये जू।'

इसी प्रकार—

'चाहे चाह चायनि चकोर भयो चाहत ही,
सुखमा-प्रकास मुख सुधाधर पूरे को'

'च' के प्रयोग के द्वारा कवि ने अनुप्रास के सौंदर्य से भावा की गति को अबाध धारा के समान तीव्र कर दिया है। अनुप्रास अपने कार्य को कवि की आज्ञानुसार ही कर रहे हैं साथ ही भावों की भी अवहेलना नहीं करते।

किसी किसी कवित्त को तो अनुप्रासों ने एक अपूर्व गति दी है। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई निर्झर पहाड़ से अपनी पूर्ण गति से गिर रहा हो। नीचे विरहिणी के विरह-जनित उद्गारों को व्यक्त करते हुए कवि ने अनुप्रासों के प्रयोग के द्वारा उसकी हृदयगत खीज को प्रदर्शित कर दिखाया है—

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री
कूकि कूकि अबही करेजो किन कोरिलै।
पैंड़े परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यौंही,
चातक ! घातक त्यों ही तू हू कान फोरि लै।
आनन्द के घन प्रान जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरो दल जोरि लै।
जौ लौं करै आवन बिनोद मन भावन वे
तौ लौं रे दरारे बजमारे, घन घोरिलै॥

सम्पूर्ण कवित्त अनुप्रासों की छटा से आवृत है। किन्तु चमत्कार के दर्शन

न होकर विरहिणी की बेवसी अथवा विवशता के ही दर्शन हैं। एक महाकवि की लेखिनी इसी प्रकार सर्वदा कला के प्रत्येक उपकरण का प्रयोग करती है जिससे उसके काव्य के भाव सौंदर्य में किसी प्रकार की कमी न आवे। घनानन्द के काव्य में ऐसे स्थल ढूढ़ने पर भी नहीं मिलेंगे जहाँ उन्होंने अनुप्रासों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिये किया हो।

अनुप्रासयुक्त भाषा के लिखने की ओर घनानन्द का ध्यान सर्वदा रहा किन्तु साथ ही वह उस ओर भी जागरूक रहे कि अनुप्रास कहीं उनके काव्य को शब्दाडम्बर मात्र ही न बना दें। इसी जागरूकता का परिणाम है कि उनको सेनापति और पदमाकर के समान आलोचकों के द्वारा चमत्कार और वाह्य विधान का सफल कलाकार न कह कर अन्तर्वृत्तियों का कुशल चितेरा माना गया। इस बात को लेकर यदि उनके काव्य को खोजा जाय तो कहीं ऐसा स्थल नहीं मिलेगा जहाँ कवि भावनाओं के चित्रण को छोड़कर चमत्कार की ओर झुका हो।

अलकार का प्रयोग काव्य में दो प्रकार से किया जाता है। प्रथम तो वह अलकार हैं जिनका कार्य चमत्कार प्रदर्शन है और उनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। शब्दालङ्कारों का कार्य चमत्कार प्रदर्शन करना ही है। और दूसरे प्रकार के अलकारों के अन्तर्गत अर्थालंकार आते हैं जिनका प्रयोग भाव को हृदयगम कराने के लिये ही होता है। महाकवि घनानन्द के काव्य में अर्थालकारों का प्रयोग ही अधिक है। इससे भी स्पष्ट है कि घनानन्द का ध्यान भावव्यजना की ओर ही अधिक रहा है। इस प्रेमी कवि को तो अपनी हृदय की झकार को ही काव्य में रखना था। इसलिये इसको शब्द चमत्कार की क्या आवश्यकता थी। इसके हृदयगत भावों का प्रभाव ही कुछ इस प्रकार का है जिसके कारण पाठक का हृदय चमत्कृत हो जाता है।

वाग्वैदग्ध्य और उक्ति वैचित्र्य—

वाग्वैदग्ध्य और उक्ति की विचित्रता काव्य में अपना प्रमुख स्थान रखती है। जो कवि अपने कथन में अथवा अपनी भाषा में जितनी अभिव्यजन शक्ति रखेगा उसका काव्य उतना ही उत्कृष्ट कोटि का होगा। महाकवियों की भाषा

में वाणी की इस शक्ति को अवश्य स्थान दिया जाता है। तुलसी सूर आदि कवियों की सफलता का प्रमुख कारण यही था कि उनके काव्य में उपर्युक्त दोनों विशेषताओं का समावेश पाया जाता है। रीतिकालीन कवि बिहारी की सफलता का तो प्रमुख कारण ही यही था कि उनके काव्य में वाग्वैदग्ध्य और उक्ति-वैचित्र्य को प्रमुख स्थान दिया गया। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने बिहारी की 'वाग्विभूति' नामक पुस्तक में बिहारी के इस गुण की प्रशंसा दिल खोलकर की है—"बिहारी में कला और भाव दोनों का सामजस्य है। उनके कलापक्ष में वाग्वैदग्ध्य बहुत अच्छा पाया जाता है। जिस मस्तानी शैली से बिहारी ने अपनी सतसई की रचना की है वह कहीं अन्यत्र नहीं देखी गई। उनके वाग्वैदग्ध्य के कारण ही प्रत्येक युग के लोग नये नये अर्थ निकाल कर उसकी टीका करते रहे हैं।" बिहारी के उक्तिवैचित्र्य के विषय में मिश्र जी ने अपने विचार आगे इस प्रकार प्रदर्शित किये हैं—"बिहारी के उक्तिवैचित्र्य पर भी दृष्टि डालनी चाहिये। उक्तिवैचित्र्य से तात्पर्य दूर की कौड़ी लाने से नहीं वरन् किसी बात को स्पष्ट करने की युक्ति या मुद्रा, रूप आदि को अपनी निरीक्षण शक्ति से निरूपित करने की सामर्थ से है।"

उपर्युक्त उद्धरणों को केवल इसीलिए दिया गया ताकि इन दोनों—वाग्वैदग्ध्य और उक्तिवैचित्र्य के रूप को आसानी के साथ समझा जा सके। घनानद के काव्य में इन दोनों का समावेश पर्याप्त मात्रा है और यदि यह कहें कि इनके काव्य की उत्कृष्टता का कारण भाषा के इन दोनों गुणों का प्रयोग था तो अत्युक्ति नहीं होगी। महाकवि घनानन्द के काव्य में जो चमत्कार आया है उसका मूल कारण उनकी वाणी का वाग्वैदग्ध्य ही है। उनकी भाषा की अभिव्यंजन शक्ति के कारण ही उनको इतनी सफलता मिली है। किन्तु उसका कारण भी स्पष्ट है। घनानन्द को जिस प्रकार भावों के रूपों को व्यक्त करने की शक्ति थी उसी प्रकार उनकी भाषा भी उनके हाथ का खिलौना थी। भाषा पर उनका इतना अधिकार था कि वह चाहे जिस प्रकार के भावों को सरलता पूर्वक प्रकट कर देते थे। भाषा पर अधिकार होने के कारण ही इनका वाग्वैदग्ध्य भी प्रभाव शाली बन पड़ा है—

'नेह-भीजी बातें रसना पै उर आँच लागै'

'नेह-भीजी बातें' कहकर कवि ने अर्थ को द्विविधि रूप में दिखाकर कितनी सफलता दिखाई है। नेह में भी स्नेह और तेल दोनों अर्थों को निहित कर दिया है तथा 'बातों' का प्रयोग भी वचन और बत्तियाँ दो अर्थों के लिये हुआ है। इस प्रकार दो अर्थों को कवि ने बड़े चमत्कारपूर्ण ढंग से दिखाकर अपनी कला चातुरी का अच्छा परिचय दिया है। स्नेह से भींगी (तेल से भींगी) बातें (बत्तियाँ) ज्यों ही सुनाने को जीभ के ऊपर लाई जाती हैं उसी समय हृदय के भीतर से विरहाग्नि की ऐसी लपटें उनमें लगती हैं कि यह बातें (बत्तियाँ) मशालों की भाँति जलने लगती हैं। अर्थ के इस सौन्दर्य का श्रेय कवि के वाग्वैदग्ध्य को ही दिया जायगा।

घनानन्द का वाग्वैदग्ध्य उनके विरोधाभासों में बड़ी सुन्दरता से दिखाया गया है। विरोधाभास अलंकार का प्रयोग जो इनके काव्य में इतनी प्रचुरता से से पाया जाता है उसका कारण भी वाग्वैदग्ध्य ही है। एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा—

> जाहि जीव चाहै सो तहीं पै ताहि दाहै,
>
> वाहि हूँ इत ही मेरी मति गति गई खोय है।
>
> करौं कित दौर, और रहौं तौ लहौं न ठौर,
>
> घर उजारि कैं बसत बन जोय है!
>
> बनी आनि ऐसी घन-आनान्द अनैसी दसा,
>
> जीवौ प्रान प्यारे बिन जागें गयो सोय है।
>
> जगत हँसत यौं जियत मोहि तातैं नैन,
>
> मेरी दुख देरि रोयौ फिर कौन रोय है।

उपर्युक्त पद के अर्थ का सौन्दर्य वाग्वैदग्ध्य के कारण ही है। इसमें 'जीवौ' और 'जगत' शब्द का प्रयोग तो कवि की कला विषयक कुशलता का अच्छा उदाहरण है। जीवो शब्द का अर्थ कवि ने रखा है—१—जीवित रहना और २—जीव, इसी प्रकार जगत शब्द के भी दो अर्थ हैं—१—जागते हुये और २—संसार। घनानन्द की इसी वाग्वैदग्ध्य का कारण है कि उनका काव्य चित्त को आकर्षित करता है।

इसी प्रकार निम्नलिखित पंक्ति भी उनके भाषा विषयक कौशल का सुन्दर उदाहरण है—

'तुम कौन सी पाटी पढ़े हो लला
मन लेत हो देत छटाँक नहीं'

'मन' शब्द भी द्विअर्थक है। मन से तात्पर्य हृदय से भी है और ४० सेर से एक मन से भी। छटाँक का अर्थ है उल्टा करके कटाक्ष और वैसे १ सेर का सोलहवाँ भाग। दोनों प्रकार से अर्थ के सौन्दर्य में उत्कर्ष ही होता है।

इस प्रकार एक दो नहीं सैकड़ों स्थान पर घनानन्द के वाग्वैदग्ध्य की छटा परिलक्षित होती है।

उक्ति-वैचित्र्य :—काव्य में शब्द की लक्षणाशक्ति के द्वारा जो अर्थ में सौन्दर्य लाया जाता है वह अनूठा होता है। किन्तु रीतिकालीन कवियों के बहुत कम कवियों ने कहीं २ लाक्षणिक प्रयोगों को अपनाया है। किन्तु महाकवि घनानन्द की प्रतिभा ने काव्य विषयक प्रत्येक सौंदर्य को अपने काव्य में स्थान दिया। उनके शब्दों में लक्षणा का भी सौन्दर्य अभूतपूर्व है। लाक्षणिक प्रयोग के कारण इनके काव्य में अर्थ के द्योतन की अपूर्व शक्ति आ गई है। शुक्ल जी का यह कथन अक्षरशः सत्य है—"लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिन्दी कवियों ने इसके भीतर बहुत कम पैर बढ़ाया। एक घनानन्द ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य की जो छटा इनमें दिखाई पड़ी, खेद है कि वह पौने दो सौ वर्ष पीछे जाकर आधुनिक काल के उत्तरार्द्ध में अर्थात् वर्त्तमानकाल की नूतन काव्यधारा में ही 'अभिव्यंजनावाद' के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिये प्रकट हुई।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४०५)

इससे स्पष्ट है कि घनानन्द ही एक ऐसे कवि थे जिन्होंने हिन्दी साहित्य में लाक्षणिक प्रयोग को सर्व प्रथम इतना महत्व दिया। छायावादी काव्य के भीतर जो लाक्षणिक प्रयोग इस काल में आया उसका प्रारंभ घनानन्द ने ही किया था। उनके काव्य में इस प्रकार के प्रयोग भरे पड़े हैं।

(अ) विरह की प्रबलता के कारण चाँदनी को कवि ने एक नई प्रकार की आग बना दिया है—

'जारति आग अनग की आँचनि जोन्ह नहीं मुनई अगिलाई'

(ङ) अरसानि गही मह बानि कछू, सरसानि सों आनि निहारति है।

(च) विरोध के द्वारा भी उक्ति के वैचित्र्य को प्रदर्शित किया है—

'झूठ की सचाई छाक्यौ, त्यौं हित कचाई पाक्यौ,
ताके गुन गन घनआनन्द कहा गनौ।

(च) उजरनि को बसाने का कैसा सुन्दर प्रयोग है—

उजरनि बसी है हमारी अँखियान देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ रावरे बसत हो।

(छ) प्रेयसी की आखों के सन्मुख जो ससार का घेरा था वह दृष्टि से हट गया—

'उघरो जग, छाय रहे घन-आनन्द चातक ज्यौं तकिये अबतौ'

(ज) प्रिय के वियोग में प्रेयसी की अवस्था अत्यत दयनीय है। कवि ने किस प्रकार एक उक्ति के द्वारा ही उसकी अवस्था का परिचय दिया है—

'अँखियाँ ये खुली ही रह जावेंगी'

(झ) प्रिय का चन्द्ररूपी आनन न देखने से वियोगिनी अमावस्या की रात्रि बनी हुई है—

'जीवनि मूरति जान को आनन है बिन हेरे सदा ही अमावस'

(ञ) प्रिय को अनेक मिल सकती है किन्तु प्रेयसी को एक प्रिय भी नहीं मिल रहा—

'मोहि तुम एक, तुम्हें मोसम अनेक आहि,
कहा कछू चदहि चकोरनि की कमी है।'

प्रिय के लिये चन्द्रमा और प्रेयसी के लिए चकोर का प्रयोग करके कवि ने भावव्यंजना का कितना सुन्दर समावेश किया है।

(ट) प्रेयसी के हृदय की अवस्था का चित्रण, 'पात है बघूरे को' कहकर किस अनुपमता से किया है। जिस प्रकार बवंडर में पत्ता नाँचता है इसी प्रकार प्रेयसी का हृदय भी विरह रूपी बवंडर में नाँच रहा है—

'अब बिन देखे जान प्यारे यों अनन्दघन,
मेरो मन भँवै मट्ठ ! पात ह्वै बघूरे को ।'

घनानन्द के काव्य में इस प्रकार का उक्ति-वैचित्र्य बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कहीं पर सुरों को 'पखेरू' बना कर उड़ाया है कहीं कटाक्षों को वाण बना दिया है, कहीं आशा को पेड़ बनाकर प्राणों को पक्षी बनाया है और उस पक्षी को आशा रूपी वृक्षपर बैठा दिया है। इन्हीं लाक्षणिक प्रयोगों के कारण उनकी भाषा को भावोत्कर्ष के दिखलाने का सुन्दर अवसर मिला है

मुहाविरे और लोकोक्ति—

मुहाविरे और लोकोक्तियों के द्वारा काव्य में जो सौन्दर्य आता है वह भी अत्यन्त अनूठा होता है, भाव के द्योतन में लोकोक्तियों को प्रत्येक कवि ने अपनाया है। महाकवि कालिदास के काव्य में भी लोकोक्तियों को अत्यन्त महत्व दिया गया है—

जात वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्त्तकामा
जानामित्वा प्रकृति पुरुष कामरूप मघोन ।
तेनार्थित्व त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
याचामोघा वरमधिगुणे नाऽधमे लब्धकामा

अन्तिम पंक्ति की लोकोक्ति, 'बड़े लोगों के यहाँ प्रार्थना निष्फल होवे तो भी वह नीच पुरुषों के यहाँ अभिलाषा पूरी होने से भी अच्छी है' ने भाव के सौन्दर्य में जो चार चाँद लगाये हैं वह कवि की प्रतिभा को स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार की लोकोक्तियों को विद्यापति ने भी बहुत अपनाया था—

'दुख सहि सहि सुख पाओल ना'

तुलसी और सूर के काव्य में भी लोकोक्तियों का प्राधान्य है। महाकवि घनानन्द के काव्य में मुहाविरे और लोकोक्तियों का प्रयोग अधिकता से हुआ है। कहीं-कहीं पर तो भाव के उत्कर्ष का पूर्ण श्रेय इन लोकोक्तियों के ऊपर ही है। वहाँ पर न किसी प्रकार के अलंकारों का चमत्कार है और न भाषा आदि

के द्वारा ही भाव को उच्चता देने का प्रयास किया है किन्तु लोकोक्तियों का सहारा पाकर भाव उच्चता की चोटी पर चढ़ गया है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण घनानन्द के काव्य में देखे जाते हैं जहाँ लोकोक्तियों ने भाव-व्यंजना में सहायता दी है।

'अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन माई सु कीजियेजू'

प्रेम को करने की प्रतिज्ञा करने पर कोई भी कुछ करे किन्तु फिर प्रेमी अपने प्रण पर अटल ही रहेगा।

निर्दय से निर्दय मनुष्य भी किसी को मारकर उसकी खबर लेता है किन्तु प्रिय की निष्ठुरता ऐसी है कि उसने प्रेयसी को अपने प्रेम के कारण मृतवत् ही बना दिया है किन्तु वह उसकी खबर तक नहीं लेता—

बधिकौ सुधि लेत, सुन्यो, हतिकैं मति रावरी क्यों हू न सूझि परे।'

हृदय प्रेम में तो बिना सोचे-समझे कूद पड़ा। उस समय उसने किसी भी दुःख की कल्पना तक नहीं की थी किन्तु अब पछताने से क्या होता है—

'आगे न विचारयौ अब पाछें पछिताए कहा,
मान मेरे जियरा बनी को कैसो मोल है।'

जिस प्रकार चकोर अपने प्रेम में अनन्यता रखता है उसी प्रकार प्रेमिका भी कृष्ण रूपी चन्द्रमा के अतिरिक्त और किसी को नहीं देखती—

'ऐसे उजागर हैं जग में परि चन्दहि एक चकोरहि देखै।'

कहीं-कहीं पर तो महाकवि के सम्पूर्ण पद में मुहाविरे ही गुथे पड़े हैं—

'वाहि जीव चाहे सो तहाँ पै ताहि दाहै,
वाहि हूदल ही मेरी गति मति गई खोय है।
करौं कित दौर, और रहौं तौ लहौं न ठौर,
घर कौं उजारि कै बसत बन बोर है॥
बनी आनि ऐसी घनआनँद अनैसी दसा,
जीवौ जान प्यारे बिन जागै गयो सोय है।

जग्त हँसत यों जियत मोहि तातें नैन,
मेरे दुख देखि रोयो फिरि कौन रोय है ॥

इस प्रकार के अनेको कवित्तो को उद्धृत किया जा सकता है जिनमें लोकोक्ति और मुहाविरों का प्रयोग बड़ी सुन्दरता से हुआ है। यदि कहा जाय कि घनानन्द ही एक ऐसे सफल कलाकार थे जिन्होंने अपने काव्य में उन सम्पूर्ण उपकरणों को अपनाया जो कि अर्थ सौन्दर्य और भावव्यंजना में अपनी शक्ति के द्वारा चार चाँद लगा सकते थे।

अमूर्त्त में मूर्त्तीकरण—घनानन्द के काव्य में अमूर्त्त भावनाओं और चित्त वृत्तियों को भी मूर्त्त रूप दे दिया है। इस प्रकार की सफलता वही कवि प्राप्त कर सकता है जो अपनी विचक्षण प्रतिमा का प्रदर्शन कल्पना की ऊँची उड़ान के साथ कर सके। घनानन्द की कल्पनाशक्ति प्रखर ही थी। कृष्ण की वियोगजन्य दशा को कवि ने किस चतुरता के साथ मूर्त्त रूप में प्रस्तुत किया है। घनश्याम रूपी बादल अनुराग के उपवन को मुरली की गरज के साथ झुक-झुक कर सरस कर रहे हैं। उनके अङ्ग पर पीतपट बिजली के समान है। अभिलाषा रूपी समीर के कारण इसी ओर झुक रहे हैं। उनके अश्रुनीर से युक्त नेत्र एक क्षण को भी नहीं उघरते। इस प्रकार स्नेह रूपी नीर की वर्षा हो रही है—

तेरे हित हेली ! अनुराग - बागबेली करि,
मुरली गरज झूमि झूमि सरसत है।
लोने अङ्ग रङ्ग जानि चचला छटा सों पट,
पीत कों उमँगि लै लै हिये परसत हैं ॥
चाह के समीर की झकोरनि अधीर ह्वै ह्वै
उमड़ि घुमड़ि या ही ओर दरसत हैं।
लोचन सजल क्यों हूँ उघरै न एको पल,
ऐसे नेह नीर घन स्याम बरसत हैं ॥

शैशव और यौवन को कवि ने अत्यन्त कुशलता से रात्रि और सूर्य बना दिया है—

'सियुताई-निसि सियराई घाल-ज्वालन में,
जोवन-विभाकर-उदोत आभा है रली ।'

प्राणों को पखेरू और रूप को उनका चुगा तथा अवधि को दिवाकर बनाने की प्रतिभा महाकवि घनानन्द के ही पास थी—

'प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगी सु फन्दे गुन-गायनि ।
× × ×
× × ×
देहु दिखाय दई मुखचन्द लग्यौ अब औधि दिवाकर आयन ॥'

विरह की दावाग्नि के कारण शरीर रूपी वन जलने लगा । यत्न रूपी पानी से उसका बुझाना असम्भव है । हृदय की दृढ़ता हट गई और साँस रूपी बाँस चटकने लगे तथा आशा जैसी लम्बी बेलि भी उद्वेग के भर में जलने लगी । दुख रूपी धुम्र में प्राण रूपी पक्षी की साँस घुट रही है । अब तो तभी आपत्ति से छुटकारा पाया जा सकता है जबकि आलस्य रूपी अर्श (आकाश) को छोड़कर घनश्याम रूपी बादल प्रेम रूपी रस की वर्षा करें—

विरह दवागिनि उठी है तन बन बीच,
जतन सलिल के सु कैसे नीचियै परे ।
अन्तर - दृढ़ाई फटे, चटकत साँस - बाँस,
आस - लाँबी लताहू उदेग - झर सौं जरै ॥
दुख - धूम धूमरि में घिरैं घुटैं प्रान - खग,
अपलौं बचे हैं जौ सुजान तन को दरे ।
बरसि दरस घन आनँद अरस छाँडि,
सरस परस है दहनि सब ही दरै ॥'

उपर्युक्त कवित्त में महाकवि ने विरह जलन, साँस, आशा, उद्वेग, दुख, प्राण, आलस्य तथा प्रेम आदि अमूर्त भावनाओं और मनोवेगों को मूर्त्तमान कर दिखाया है । इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं जिनमें अमूर्त का मूर्तीकरण इसी सरलता के साथ दिखाया गया है ।

भाषा और छन्द—

घनानन्द की भाषा के विषय में कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। भाषा के ऊपर जितना अधिकार इस महाकवि को था रीतिकाल में केवल बिहारी ही ऐसे कवि हैं जिनकी समानता इस विषय में इनसे की जा सकती है। जिस प्रकार बिहारी ने दोहा छन्द को अपनी भाषा की कुशलता के कारण इतना सुन्दर रूप देकर अपने काव्य में प्रदर्शित किया उसी प्रकार सवैये और कवित्तों को घनानन्द ने भी इतनी सुन्दरता प्रदान की कि समस्त हिन्दी प्रेमी आज भी उन्हें पढ़कर विभोर हो जाते हैं। भाषा को भावानुकूलता देने में महाकवि घनानन्द को जो सफलता मिली वह उस काल के बहुत कम कवियों में पाई जाती है। यदि किसी उल्लास अथवा उमङ्ग की भावना को कवि ने अभिव्यक्त किया है तो उसकी भाषा भी अत्यन्त प्रवाहमयी है। हृदय की व्यथित-अवस्था को चित्रित करने में कवि की भाषा भी उन हृदयगत भावों को खोज-खोज कर निकालती हुई प्रतीत होती है। वस्तुओं के क्रिया-व्यापारों को कवि की भाषा बड़ी सफलता से चित्रित करती है। नीचे के अनुप्रासों का प्रयोग सार्थक हुआ है। 'लहकि-लहकि' शब्दों से वायु की गति का चित्र खड़ा हो जाता है। इसी प्रकार 'दहकि-दहकि' से अग्नि की लपटों का चित्र सन्मुख आ जाता है—

> लहकि लहकि आवै ज्यों ज्यों पुरवाई पौन,
> दहकि दहकि त्यों त्यों तन ताँवरे तचै।
> बहकि बहकि जात बदरा बिलोके हियो,
> गहकि गहकि गहबरनि हिये मचै ॥
> चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहै,
> कैसे घनआनँद सुजान बिन ज्यौं बचै।
> महकि महकि मारै पावस - प्रसून बास,
> आसन उसास दैया कौ लौं रहियै अचै ॥

शब्दों में जो अर्थद्योतन की शक्ति है वह कवि की भाषा विषयक जानकारी के लिये पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त ऊपर जो उनकी वाग्वैदग्ध्य और

उक्तिवैचित्र्य दिखाया जा चुका है वही कवि की भाषा विषयक जो अपूर्व शक्ति है उसे बताने में पूर्ण समर्थ है। इसके अतिरिक्त भाषा के माधुर्य और सरलता के दर्शन तो कवि की सम्पूर्ण रचना में भरे पड़े हैं। ब्रजभाषा की मधुरता को जितना उस कवि ने देखा उतना अन्य किसी भी कवि ने इतने व्यापक रूप में नहीं देखा। इनकी भाषा में अधिकतर शुद्ध और संस्कृत रूप के ही दर्शन हैं लेकिन कवि की प्रतिभा कुछ ऐसी विलक्षण थी कि वह किसी भी एक मार्ग के अवलम्बन करने में नहीं लगती थी। जिस प्रकार उनके काव्य में नये-नये भावों और कल्पनाओं को स्थान दिया गया उसी प्रकार भाषा में भी उन्होंने कितने ही नये प्रयोग किये। फारसी शब्दों को इन्होंने इस प्रकार अपनाया कि उनको हिन्दी का ही बना लिया। इनके काव्य में फारसी के शब्दों की भरमार है किन्तु उनके रूप कुछ इस प्रकार बना दिये हैं जो हिन्दी के ही शब्द प्रतीत होते हैं। इनके वियोग वर्णन में कुछ ऐसे शब्द पाये जाते हैं। 'वियोगबेलि' में भी फारसी के शब्दों को कवि ने प्रयुक्त किया है। उसमें तो कवि ने छन्द भी फारसी का ही अपनाया है। पञ्जाबी भाषा का समन्वय भी कवि ने बड़ी सुन्दरता के साथ दिखाया है—

> सैन कटारी आशिक उर पर तें यारा भूक मारी है,
> महर लहर ब्रजचन्द यार दी जिन्द असाडी ज्यारी है।

'इश्कलता' पर भी फारसी का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है—

> पल पल प्रीति बढ़ाय हुआ बेदर्द है।
> आशिक उर पर बान चलाई कर्द है॥
> धनी हुई महबूब सुनरम न छोलिये।
> आनन्द जीवन जान दया करि बोलिये॥

फारसी का यह प्रयोग भी इन्होंने इतनी सरलता के साथ किया है जिससे इनकी यह मनोवृत्ति प्रतीत होती है कि यह प्रत्येक भाषा के शब्दों को हिन्दी में इस प्रकार अपनाना चाहते थे कि वह हिन्दी की ही सम्पत्ति बन जायें।

वास्तव में घनानन्द एक ऐसे कलाकार थे जो सौन्दर्य के प्रत्येक उपकरण को अपने काव्य में स्थान देते थे। भाव और कला पक्ष के सौन्दर्य विषयक जितने उपकरण हैं वह इनके काव्य में सभी पाये जाते हैं। भाषा की सुन्दरता को जितना घनानन्द ने देखा उतना अन्य किसी कवि ने नहीं देखा। उनके इसी रूप का वर्णन किसी प्रशंसक ने उचित ही किया है—

> नेही महा ब्रज भाषा प्रवीन औ सुन्दरतानि के भेद को जानै।
> जोग वियोग की रीति में कोविद भावना-भेद स्वरूप को ठानै॥
> चाह के रंग में भीज्यो हियो बिछुरे मिले प्रीतम साति न मानै।
> भाषा प्रवीन सुछन्द सदा रहै सो घन जू के कवित्त बखानै॥

जिस प्रकार इनका भाषा पर अधिकार था उसी प्रकार छन्दों पर भी। सवैया और कवित्त इन दो छन्दों को ही इन्होंने सबसे अधिक अपनाया। किंतु इन छन्दों में कहीं पर भी किसी प्रकार का दोष नहीं। रीतिकालीन कवि मतिराम और देव जैसे सफल कवियों में भी छन्द विषयक दोष पाये जाते हैं। किन्तु इनके छन्दों में किसी प्रकार का दोष नहीं। इनके कवित्तों की मस्तानी चाल पर शुक्ल जी भी विमोर हो गये थे।

ऊपर के विवेचन से घनानन्द के काव्य के दोनों पक्षों का उन्नत रूप स्पष्ट हो जाता है। कवि ने अपने काव्य में कला पक्ष को भिन्न नहीं देखा वह तो उनके भाव पक्ष का सहायक ही रहा है। केवल एक दो स्थान पर ही वरन् उनके सम्पूर्ण काव्य में कला के समन्वित रूप-सौन्दर्य की ही झाँकी पाठक को होती है। भाव की उच्चता के साथ २ भाषा अलंकार अनुप्रास, तथा अन्य उपकरणों को भी कवि ने भाव-व्यंजना के लिये अपनाया है। उनकी यही सन्तुलित दृष्टि के फलस्वरूप ही उनको रीतिकालीन कवियों की कोटि में नहीं रखा गया। उनकी काव्य धारा उनके हृदय के सरल उद्गार मात्र ही थे। सफल कवि की कला अनुभूतियों के चित्रण को ही अधिक महत्त्व देती है। महाकवि घनानन्द का कला-कौशल उनको हिन्दी साहित्य के महान कलाकारों में स्थान देता है।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति और मानव का साहचर्य्य—प्रकृति और मानव का आदिकाल से साहचर्य्य है। प्रकृति की सुरम्य गोद में ही मनुष्य ने अनेक प्रकार के ज्ञान विज्ञान के भण्डार को प्राप्त किया। उसी के द्वारा मानव-बुद्धि ने विकास के मार्ग का अवलम्बन लिया। पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, जल यही मानव को जीवन-दायिनी शक्ति प्रदान करते रहे हैं और भविष्य में भी इनका ही आधार उसको लेना पड़ेगा चाहे वह कितना भी वैज्ञानिक विकास क्यों न करले। प्रकृति मानव की चित्तवृत्तियों को सर्वदा पोषक तत्व देती रही है। प्रकृति की महत्ता मानव सभ्यता के विकास में भी माननी ही पड़ेगी। हमारे प्राचीन साहित्य में ही नहीं वरन् वेदों में भी प्रकृति को ही अधिक महत्व दिया गया। सूर्य, वायु, आकाश और पृथ्वी को आर्यों ने देवताओं के रूप में इसीलिए स्वीकार किया कि यही उनको आदिकाल में जीवन-दायक प्रतीत हुये। इन्हीं की छत्रछाया में रहकर उनको आनन्द उपभोग करने का अवसर मिला। मानव ने इसीलिये इन्हीं को अधिक महत्व दिया। सूर्य की प्रार्थना की क्योंकि सूर्य के द्वारा ही उस प्रारम्भिक युग में प्रकाश और गर्मी मिलती थी। और उसी के द्वारा अन्न पकता था। वे मन्त्र आज भी सूर्य के महत्व को बतलाने में समर्थ हैं—

> आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो
> निवेशयन्नमृत मर्त्यं च
> हिरण्येन सविता रथेन
> आ देवो: याविभुवनानि पश्यन्

सृष्टि के आदिकाल में मानव को जितना प्रकृति ने प्रभावित किया उतना अन्य किसी ने नहीं किया। ऋग्वेद में प्रकृतिके इन्हीं उपकरणों के प्रति मानव ने अपनी श्रद्धा का प्रकाशन किया है। वास्तव में प्रकृति के साहचर्य्य के कारण

ही मनुष्य की चेतना शक्ति को इतना बल मिला। अबोध बालक भी चन्द्रमा और सूर्य को देखकर उनकी ओर आकर्षित हो जाता है और अपलक दृष्टि से कुछ इस प्रकार देखता है मानो जीवन के पोषक तत्वों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहा है।

आदि-काल में मानव की सहचरी प्रकृति ही थी। वन, उपवनों में पुष्प-युक्त लताओं को वायु के थपेड़ों में नृत्य करते हुए देखना एक साधारण घटना रही होगी। भ्रमरों का रस लेते मग्न होकर गुनगुनाना ही मानव की अन्तर्चेतना को सङ्गीत के आनन्द से भर देता होगा। अनेकों श्वेत कलियों को देखकर मनुष्य ने हँसना सीखा होगा। लहलहाती लताओं को वृक्षों का आलिङ्गन करते देख मानव को भी अपनी प्रिया के आलिङ्गन की सुखद प्रेरणा मिली होगी। चन्द्रमा अपनी प्रिया रजनी को किस प्रकार आनन्द से प्रफुल्लित कर देता है और उसके वियोग में रजनी अन्धकारपूर्ण होकर ऐसी प्रतीत होती है मानो उस वियोग के कारण ही उस पर कालिमा का आवरण छागया है। मानव ने भी इसी प्रकार की भावनाओं से अपने हृदय को सँजोया। वह भी प्रकृति के क्रिया-कलापों से अपने क्रिया-कलापों को सीखता रहा। उसने अपने सौन्दर्य का मान-दण्ड प्रकृति को ही बनाया। चन्द्रमा की सुन्दरता उसने मुख को प्रदान की, पुष्पों की स्निग्ध स्वच्छता हँसी को दी। गुलाब का रंग मानव ने प्रिया के कपोलों में देखा। बिम्बाफल का रंग उसके ओठों में और दाड़िम की शोभा उसके दाँतों को दी। हरिणी के नेत्रों को देखकर उसने अपनी प्रिया के नेत्र सौन्दर्य की कसौटी बनाया। कहने का तात्पर्य है कि मानव ने प्रकृति के उपकरणों का सौन्दर्य आदिकाल से ही सहेज कर रख लिया।

प्रकृति को मानव ने अपनी सहचरी के रूप में निष्प्राण अथवा अचेतनावस्था में ही नहीं देखा वरन् वह भी उसी के समान सुख-दुख का अनुभव करती थी। रात्रि में ओस कणों का गिरना उस वियोगिनी निशा के अश्रु कण हैं। तारागणों का छिटकना रात्रि की हँसी का प्रतीक माना। ऊषा आनन्द और आशाओं को लेकर आती है। किन्तु सन्ध्या की धूमिलता उसे निराशा के गर्भ में ले जाती है। प्रकृति के इन्हीं क्रिया-कलापों ने मानव को नाना भावनाओं

का संचित कोष थाती के रूप में सौंप दिया जिसे आज भी मनुष्य ने इस विज्ञान के युग में यत्नपूर्वक सहेज कर अपने हृदय में रख छोड़ा है।

प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर मानव हृदय अभिव्यक्ति के लिये आकुल हो उठा और आदि कवि की वाणी अनायास ही फूट पड़ी—

> मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
> यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।

वह दिन भारतीय साहित्य में पुण्य स्मृति के रूप में अमर है जब आदि कवि प्रकृति की सुरम्य गोद में विहार करने वाले उस क्रौंच पक्षी के जोड़े के मुक्त-विहार में बाधा पड़ते देख रो पड़ा था। करुणा की ऐसी वाग्धारा बही जो भवभूति के उत्तररामचरित में आकर अपने पूर्ण विकास पर पहुँच गई।

महाकवि कालिदास के काव्य में प्रकृति के सौन्दर्याङ्कन का रूप अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। उनके काव्य में प्रकृति को अनेक रूपों में देखा गया। महाकवि कालिदास ने गंगा और यमुना के प्रवाह को संगम पर इस प्रकार देखा मानो मोतियों की लड़ी में नीलम को पिरो दिया गया हो। कहीं पर गंगा का श्वेत जल और यमुना का श्यामल जल इस प्रकार का प्रतीत हुआ मानो श्वेत कमलों की पंक्तियों में नीलकमल बीच-बीच में आ गये हों।

> क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
> अन्यत्र माला सितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव॥
> क्वचित् खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः
> अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव॥
> क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव
> अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा॥
>
> (रघुवंश)

प्रकृति की महत्ता को महाकवि कालिदास ने मुक्तकण्ठ से गाया और उसको अपने अनुकूल ही चेतन पदार्थ के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने उसको मूक और अचेतन नहीं माना वरन् प्रकृति को मानव की भाँति संवेदनशील

और सहानुभूति से पूर्ण देखा। विरही को प्रकृति सान्त्वना और आशा प्रदान करती है—

> आमन्त्राना श्रवणसुभगैः कूजितैः कोकिलाना
> सानुक्रोश मनविजदजः सहता पृच्छतेव।
> अगे चूतप्रसवसुरभिर्दक्षिणो मारुतो मे
> सान्द्रस्पर्शो करतल इव व्यामृतो माधवेन॥

जिस प्रकार मनुष्य में अनेक भावों का परिवर्तन होता है उसी के अनुरूप प्रकृति भी अपने अनेक रूपों में दिखाई पड़ती है। कभी वह प्रसन्न, कभी दुखी तो कभी भयानक रूप में प्रस्तुत होती है। माननीय भावनाओं के सामञ्जस्य में प्रकृति को देखना कवियों की परम्परा में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। महाकवि भवभूति ने प्रकृति के भयङ्कर रूप का चित्रण अत्यन्त ही उत्कृष्ट कोटि का किया है—

> निस्कूजस्तिनताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोचण्डसत्त्वस्वनाः
> स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नय ।
> सीमान प्रदरोदरेषु विलसत्स्वल्पाम्भसो यास्वय
> तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगास्वेदद्रवः पीयते॥

हिन्दी साहित्य में प्रकृति-चित्रण—प्रकृति वर्णन की यह परम्परा हमारे हिन्दी साहित्य को उत्तराधिकार के रूप में मिली। वीरगाथा काल के कवियों में प्रकृति के दर्शन अनेक रूपों में होते हैं। भक्तिकाल में जायसी, तुलसी, सूर, कबीर आदि में प्रकृति का समावेश हुआ किन्तु अब प्रकृति के उस स्वतन्त्र रूप को मानव प्रकृति तथा मानव भावों की पृष्ठभूमि के रूप में ही प्रस्तुत किया जाने लगा। भक्ति काल में संश्लिष्ट चित्रों का अभाव रहा। कृष्ण का विहार-स्थल अवश्य प्रकृति की ही सुरम्य गोद थी किन्तु उस प्रकृति को कृष्ण और राधा आदि अन्य गोपियों के भावों के अनुरूप ही अपना कार्य करना पड़ा। यदि कालिन्दी काली है तो कृष्ण के वियोग के कारण, यदि बादल गरज रहे हैं तो गोपियों के विरह व्यथित हृदय को वेदना प्रदान करने के लिये। चन्द्रमा जो सुख प्रदान करने वाली वस्तु है वह भी विरह में गोपियों को दुख देने

लगा। पपीहा प्रिय का नाम लेने के कारण उनको प्रेम का अनन्य पुजारी प्रतीत हुआ। वह उसे आशीष देने लगीं—

'बहुत दिन जीवो पपिहा प्यारो'

कृष्ण के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शोभा उनको प्रकृति के उपकरणों में ही दिखाई देने लगी—

कुन्तल कुटिल भँवर भरि भाँवरि मालति भुरै लई।
तजत न गहरु कियो कपटी जब जानी निरस गई॥
आनन इन्दु बदन सम्पुट तजि करखै तें न नई।
निरमोही नहिं नेह कुमुदनी अन्तहि हेम हई॥

काली रात्रि को विरह-व्यथिता गोपियाँ काली साँपिन के समान मानती हैं—

'पिया बिन साँपिन कारी रात;
कबहुँ जामिनी होत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जाति॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तिकाल में ही प्रकृति उद्दीपन रूप में व्यवहृत की गई। रीतिकालके कवियों में प्रकृति को उद्दीपन रूप में ही देखा गया किसी-किसी कवि ने प्रकृति को एक-दो स्थल पर स्वच्छन्द रूप में भी देखा किन्तु अधिकतर कवियों ने प्रकृति के उद्दीप्तकारी रूप को ही देखा। बागों में हरि के खेलने का महत्व अधिक था उस प्रकृति का उतना महत्व नहीं। यदि द्रुमदल,लता,समीर के झोंकों के कारण झुकती हैं तो केवल इसीलिए कि वहाँ प्रिय अपनी प्रेयसियों के साथ विहार कर रहा है।

बिहारी, सेनापति, मतिराम आदि सम्पूर्ण कवियों ने प्रकृति को अपनाना किन्तु उसके उद्दीपनत्व को ही अधिक महत्व दिया गया। प्रकृति के उपकरणों के द्वारा नायिका की वेशभूषा को सजाया गया। उसके चपल नेत्रों की शोभा पवन से हिलते कमलों में देखी गई। शैशव और यौवन की सन्धि प्रातः काल की भाँई के समान मानी गई। कभी कुन्द कलियों से नायिका का शृङ्गार कराया गया। कभी-कभी नायिका के नेत्रों के सन्मुख कमल को भी हेय सिद्ध किया गया। सघन कुंजों और उनकी शीतल छाया की चर्चा इस काल में भी

हुई किन्तु अब यह प्राकृतिक सौन्दर्य मन में अतीत की स्मृति को जाग्रत कर देते थे—

सघन कुंज छाया सुखद शीतल सुरभि समीर।
मनु ह्वै जात अजौं वहै उहि जमुना के तीर॥

किन्तु रीतिकालीन कवियों में महाकवि बिहारी ने फिर भी कुछ स्थानों पर प्रकृति का इतना सुन्दर चित्रण किया है जो सराहनीय है—

रनित भृङ्ग घण्टावली, झरित दान मधुनीर।
मन्द-मन्द आवत चल्यौ कुंजर कुंज समीर॥

वर्षा का पवन किस प्रकार उद्दीप्तकारी होता है—

विकसित नवमल्ली कुसुम-विकसित परिमल पाइ।
परसि पजारति विरह हिय बरस रहे की बाय॥

महाकवि बिहारी ने प्रकृति को अनेकों रूपोंमें देखा। सयोग और वियोग के अनेकों चित्रों को कवि ने प्रकृति के रँगों से इस प्रकार भरा है कि उन चित्रों को मूर्तिमत्ता प्रदान कर दी गई है। पावस की घनी अँधियारी में रात और दिन का भेद चकवा और चकवी के वियोग से ही जाना जाता है। इस प्रकार बिहारी के काव्य में वर्षा, शरद् आदि ऋतुओं का विशद् चित्रण उद्दीपन रूप में ही हुआ है।

बिहारी के समान ही सेनापति के काव्य में भी प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में ही हुआ है। संश्लिष्ट प्रकृति चित्रण को भी उनकी रचना में स्थान दिया गया है। उन्होंने शरद् का चित्रण बड़ा ही मनोरम और चित्ताकर्षक किया है किन्तु उसका रूप उन्होंने उद्दीपनकारी ही रखा। केवल 'हरि पीय कौं' शब्दों को यदि नहीं डाला जाता तो प्रकृति अपने स्वच्छन्द रूप में ही दर्शित होती—

पाउस निकास तातें पायौ अवकास भयौ,
जौन्ह कौ प्रकास सोभा ससि रमनीय कौं।
विमल अकास, होत वारिज विकास, सेना—
पति फूले कास हित हंसन के हीय कौं॥

छिति न गरद मानों रँगे हैं हरद सालि,
सोहत जरद, को मिलावैं हरि पीय कौं।
मत्त हैं दुरद मिटौ खंजन दरद रितु,
आई है सरद सुखदाई सब जीव कौं॥

देव, मतिराम, पद्माकर आदि सम्पूर्ण कवियों के काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप ही दिखाई दिया। मतिराम की विरहिणी नायिका सुखदायी वस्तुओं को दुखदायी समझती है—

आई रितु पावस अकास आठौ दिसन मे,
सोहत सरूप जलधरन की भीर को।
मतिराम सुकवि कदम्बन की बास जुत,
सरस बढ़ावै रस परस समीर को॥
मौंन तैं निकरि वृषभानु की कुमारि देख्यौ
ता समै सहेट को निकुंज गिरयौ तीर को
नागरि के नैननि तैं नीर को प्रवाह बढ्यौ
निरखि प्रवाह बढ़ौ जमुना के नीर को॥

घनानन्द के काव्य में प्रकृति :—

महाकवि घनानन्द के काव्य मे भी अपने काल की प्रकृति चित्रण की पद्धति पूर्ण रूप से अपनाई गई किन्तु इतना अन्तर अवश्य रहा कि जहाँ इन रीतिबद्ध कवियों ने षटऋतु आदि की परम्परा को अनुकरण के रूप में अपनाया वहां घनानंद ने किसी बद्ध-परम्परा के आधार पर प्रकृति को भी नहीं अपनाया। रीतिकालीन कवियो में षटऋतु और बारह मासा लिखने की एक पद्धति थी जो विद्यापति, जायसी आदि कवियों की परम्परा से ली गई थी। घनानन्द ने ऋतु वर्णन किया किन्तु वह भाव तरङ्ग में आकर ही किया गया। अन्त. प्रकृति के उस पुजारी ने वाह्य-प्रकृति को भी भाव रगों में रगकर ही देखा। उनका प्रकृति चित्रण अनेक रूपों मे हुआ। कहीं प्रकृति संयोग में आनन्द का वातावरण प्रस्तुत करती है, कहीं विरहाकुला वियोगिनी को प्रकृति न। और सहानुभूति प्रदान करती है तो कहीं प्रकृति उसके दु.ख को

अत्यधिक उद्दीप्त करती है। कभी नायिका के अङ्ग प्रकृति के उपकरण बनकर ऋतु का चित्र उपस्थित कर देते हैं। कहीं प्रकृति के उपकरणों के द्वारा ही वियोगिनी अपनी आन्तरिक अवस्थाओं से प्रियतम का परिचय कराना चाहती है। कभी पतझर और बसन्त वियोगिनी के शरीर पर ही परिलक्षित होते हैं। कहीं विरहिणी की आन्तरिक भावनाओं को ही कवि ने प्रकृति के रंग में रंग कर दिखलाया है। वियोग की अग्नि के कारण वियोगिनी के अभिलाषा रूपी पत्ते गिर गये हैं। उच्छ्वासों की डालियों पर काँटे निकल आये हैं। इस प्रकार घनानन्द के विरही हृदय ने प्रकृति को भी अपने हृदय के अनुकूल ही अधिक देखा। उनके काव्य का मेरुदण्ड विरह ही है उस विरह में प्रकृति का हँसता रूप दिखलाना तो असम्भव ही था। इनके विरही हृदय ने प्रकृति को अधिकतर अपनी वेदना को उद्दीप्त करने में ही प्रयुक्त किया।

संयोग पक्ष में प्रकृति को उल्लासमय और आनन्दकारी रूप में भी देखा। किन्तु उस प्रकार के प्रकृति चित्रण में भी प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं। प्रकृति को अलंकारिक रूप में घनानन्द के काव्य में भी देखा गया और कवि परम्परा से जिन उपमानों को कवियों ने प्रकृति की गोद से उठाया था उसमें इस कवि ने इज़ाफ़ा ही किया। कुछ स्थानों पर घनानन्द के चित्रण में प्रकृति शुद्ध रूप में भी झलक मारती है किन्तु कृष्ण का नाम आने से उस पर भी परम्पराभुक्त होने का दोष लग जाता है। सरस बसन्त, गिरिपूजन आदि के प्रकृति चित्रण अत्यन्त ही स्वाभाविक हैं किन्तु कृष्ण प्रेमी होने के कारण कवि ने राधा और कृष्ण के महत्व को उस प्रकृति चित्रण में भी प्रदर्शित किया है। इस प्रकार घनानन्द के काव्य में प्रकृति के निम्नलिखित रूपों के दर्शन होते हैं। १—उद्दीपन रूप में, २—आलंकारिक रूप में, ३—स्वतन्त्र रूप में, ४—सन्देश वाहक के रूप में।

१—प्रकृति का उद्दीप्तकारी रूप :—प्रकृति मानव के सुख और दुःख दोनों में उसकी सहचरी रहती है। इसका प्रभाव दोनों अवस्थाओं में मनुष्य पर पड़ता है। जो प्रकृति संयोग की अवस्था में आनन्द और माधुर्य की वर्षा करती है वही विरह में दुःख की झड़ी लगा देती है। इसीलिये काव्य में उसको संयोग में सुख देने वाला और वियोग में दुःख देने वाला प्रदर्शित किया जाता

है। प्रकृति का यही उद्दीपन रूप संयोग में इच्छाओं को उत्पन्न करता है किन्तु वियोग में उन इच्छाओं की पूर्ति न होने पर वही दुःखदायी हो जाता है। कालिदास ने प्रकृति के इसी रूप को अपने मेघदूत में प्रदर्शित किया है—

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेत ।
कण्ठा श्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥

अर्थात् मेघ दर्शन से संयोगी भी नाना विकारों से युक्त होकर अपने सुखों में लिप्त हो जाते हैं। किन्तु जब वियोगी अपने प्रिय के कण्ठालिंगन से दूर होकर मेघ को देखता है तो उसकी दशा न जाने क्या होती होगी?

इसीलिये प्रकृति का दोनों रूपों में चित्रण कवि परम्परा से प्रचलित है। घनानन्द के काव्य में भी प्रकृति के दोनों रूपों का दर्शन मिलता है।

अ—संयोग में उद्दीप्तकारी रूप :—संयोग में आनन्द और हर्षातिरेक की धारा अबाध गति से बहती है। कृष्ण जिस समय गोपिकाओं के समीप हैं उस समय सम्पूर्ण वनराजी पुष्पों से पल्लवित है। अनुपम शोभा का साम्राज्य चारों ओर छाया हुआ है। प्रेममय ध्वनियों का वंशी के द्वारा सृजन हो रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कामदेव राजा ने वन की सेना को बसंत के समीप खड़ा करके सजाया हो।

प्रेम-अमी-मकरंद-भरे बहुरंग प्रसूननि की छवि राजी।
देखत आज बनै बनराजहि रूप अनूपम ओप विराजी।
राग-रची अनुराग जची सुनि है घन आनन्द बाँसुरी बाजी।
मैन महीप बसंत समीप मनो करि कानन सैन है साजी ॥

कृष्ण और राधिका प्रेम में विभोर हैं। कवि उनकी उस अवस्था में प्रकृति के उल्लास को देखता है—

सींचे रस रंग अंग फूलि फैलि फबि दबि
देखि देखि मालती लतानि उकसनि है।
आछे काछे मधुप कुमार कोटि ओटि कीजै
अलक छबीली मन छूटियो कसति है।
× × × ×

× × × ×

कौन धौं अनूठौ रस प्यावै जिय ज्यावै आवै,
ऐसी तेरी हँसनि बसंत कौं हँसति है।

राधा की हँसी बसत की शोभा के ऊपर भी हँसती है जहाँ अनेक प्रकार के पुष्प प्रफुल्लित हो रहे हैं।

धनानन्द ने राधा और कृष्ण की लीलाओं को अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया। जहाँ उन्होंने युगल मूर्ति की लीलाओं का वर्णन किया है वहाँ प्रकृति की पृष्ठभूमि अवश्य दी गई। राधा और कृष्ण का विहार-स्थल ब्रज की रमणीय भूमि थी जो अपनी प्राकृतिक शोभा से युक्त थी ? यमुना उसकी सगिनी थी। कृष्ण कुञ्जों और वनों में ही अधिक रहे। इसलिये उनके चरित्र-चित्रण में प्रकृति उनके साथ ही रही।

राधारमन की बलि जाँउ।
सघन वृन्दावन मनोहर अति मधुर रस ठाँव॥
गौर स्याम ललाम सगति रमि रही द्रुम वेलि।
महा अनुपम रूप-शोभा लहलहनि रस भेलि॥
आपु बन घन आपु तनमय ह्वै रहत निसिभोर।

यमुना की शोभा का वर्णन भी सयोग के सुखद क्षणों के साथ ही धनानद ने किया है—

तरनि तनूजा तोहि तकौं।
चचलता तजि भजि नदलालहि मन करि तेरे तीर थकौं॥

कभी राधा और मोहन सुन्दर लताओं से युक्त हिंडोले पर झूलकर आनन्द का उपभोग करते हैं—

'ललित लतानि हिंडोरें झूलत राधा-मोहन रीझनि भींजे'

कभी वन के मध्य में कृष्ण की वशी बजकर आनन्द का प्रसार कर रही है। श्याम रग के कृष्ण यमुना के तट पर सघन कुजों के नीचे विहार कर रहे हैं। वंशी के नाद से मत्त होकर पशु और पक्षी विभिन्न मार्गों पर घूम रहे हैं।

व्रज बाला मुरली के नाद के वशीभूत होकर अपने पतियों को छोड़कर अनेक अभिलाषाओं से युक्त होकर कृष्ण के दर्शनों को निकल पड़ी है—

बंशी बजै व्रज मोहन की बन महियाँ।
स्याम सुन्दर जमुना तट विहरत सघन कदम की छहियाँ।
मादक नाद सवाद छके घूमत खग मृग नग जहँ तहियाँ।
आनन्द घनहि निरखि सुखनिता अभिलाषिन भीजीं
भूलि पतिन गरबहियाँ॥

यमुना भी शृङ्गार रस को उद्दीप्त करती है। उसका सौभाग्य है कि वह कृष्ण को अपने आलिंगन पाश में बद्ध करती है—

'यमुना सरस सिंगार हिये में जागत तेरौ रूप निहार,
तरल तरंगिन अतिरति रंगनि भेंटन स्यामहिं सहस भुजानि पसार।'

कृष्ण की मुरली की ध्वनि को सुनकर समस्त व्रज में आनन्द ही आनन्द है। ऊपर से वसंत का भी आगमन हो गया है इस कारण कुँजों में भ्रमरों के झुंड के झुंड अपनी मधुर गुंजार ध्वनित कर रहे हैं। कभी कोकिल के मधुर स्वर की गूंज वनस्थली को मधुरिया से प्लावित कर देती है। दंपति अपने विहार में पूर्ण रूप से लीन हैं—

'वृन्दावन मधि मधुरितु आई अति-छवि पाइ सुहाई।
कुंज कुंज सुखपुंज मधुप गुंज कोकिला सुर की झाई।
विलसत है अपनी रुचि सपति दंपति के विनोद अधिकाई।'

मिलन में शरद की रात्रि अत्यन्त ही सुन्दर और मनोरम प्रतीत होती है। पूर्व दशा में पूर्ण चन्द्र ने आकर विहार करने का उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत कर दिया है। यमुना का तट अत्यन्त ही कुसमित और पृथ्वी पर अपनी समानता नहीं रखता। द्रुम और लतायें अपनी आभा को सघनता के रूप में फैला रही हैं। त्रिविध पवन प्रवाहित होकर रसमय वातावरण प्रस्तुत कर रहा है। ऐसे वातावरण में कृष्ण और राधा का विहार हो रहा है। प्रकृति इस विलास को अधिक रसमय कर रही है—

देखि सुहाई सरद की जामिनि रस भीनी।
पूरन ससि प्राची उदै विहरनि रुचि कीनी।
मोहन मदन गुपाल की वृन्दावन मोहै।
जमुना तट कुसमित महा अवनी मनि सोहै।
जोति जगमगै द्रुमलता अति सघन सुहाये।
त्रिविध पवन सुख में बहै कहियै सु कहाए।

यदि दम्पति आनन्दातिरेक मे हैं तो प्रकृति भी उनकी सहायक ही है। यह नहीं कि उनके विलास में कोई बाधा उत्पन्न कर रही हो। यदि राधा और कृष्ण हिलमिल करके विलास मे उन्मत्त हैं तो प्रकृति भी उनके रग में अत्यत सहायक है। उनके सयोग मे प्रेम के उपभोग करने की रीतियों को प्रकृति भी देख रही है—

'महानिसा थकि थकि रही सखि कहनि कहयौ है'

प्रकृति का यह उद्दीसकारी रूप सयोग के मुग्धों में अत्यन्त ही मनोरमता के साथ कवि ने देखा है। वृन्दावन की सुरम्य और रमणीय वनस्थली कुछ ऐसी सुन्दर है कि राधा को उन द्रुम बेलियों से पहिचान सी होगई है। और हो भी क्यों न? उनके विलास को तीव्र करने में इन रमणीय दृश्यों का ही तो अधिक हाथ है—

'निहारथी वृन्दावन सुख खानि
/ द्रुम बेलिन सौं भई मलेई इन अँखियन पँहिचान।'

रूप-शालिनी राधा को कुंजों में घूमना ही अधिक रुचिरर प्रतीत होता है। इसीलिये वह अधिकतर सघन कुंजों में ही घूमती कवि को मिलती है—

'आवति चली कुंज गहर नें कुँवरि राधिका रूप मढ़ी'

गोपियों को बसन्त का आगमन आनन्द से प्लावित कर देता है। वे उसके स्वागत मे आनन्द की अभिव्यक्ति करती हैं। राधा और कृष्ण के विहार के उपयुक्त साधन बसन्त ही जुटा सकेगा। जमुना तट के अनेकों कुज जोकि उनकी क्रीडास्थली हैं पुष्पों से आच्छादित हो जायेंगे और पराग की सुगधि व्याप्त हो जायेगी। भ्रमरों की पक्ति मदमत्त होकर अपने सङ्गीत से वहाँ के वायु

मण्डल को गुंजित कर देगी। ऐसे बसन्त का स्वागत करना स्वाभाविक ही है—

'बसन्त फूल्यौ री वृन्दावन में आइ'

प्रीति-पावस में प्रकृति की शोभा का जो चित्रण किया है वह अत्यन्त ही प्रभावोत्पादक है। वर्षा भी ब्रज में आकर के धन्य हुई। घटाओं के घिरने से जब अन्धकार छा जाता है उस समय गिरधारी प्रफुल्लित होकर वन में घूमते फिरते हैं। वृन्दावन में सदा आनन्द का ही साम्राज्य है। उधर वर्षा की झड़ी लग रही है, सर्वत्र ही यमुना का प्रवाह है तथा सघन वनों की शोभा भी अपनी छटा दिखा रही है। कोकिल की मधुर ध्वनि उस वनस्थली को गुंजित कर रही है। बादलों की प्रिया दामिनी अपनी चमक दिखा रही है। बादलों की घनघोर गर्जन ब्रज पर आनन्द की दुंदभी के समान है। कदम्ब के वृक्ष फूल रहे हैं और उन पर अलियों के पुंज मँडरा रहे हैं कृष्ण की मुरली की ध्वनि में मल्हार राग निकल रहा है। कुंजों में झूले पड़े हुये हैं। ब्रजवासियों के हृदय आनन्द के हिंडोलों पर झूल रहे हैं—

मधुर प्रेम-पावस के गीत। रस निधि राधा मोहन मीत।
अमित लतागन फूलनि छाये। सोभित वन के सदन सुहाये।
फूले सरस कदंबन पुंज। महा मनोहर मधुकर गुंज।
कुसुमुद भूला बगर बगर है। सावन के सुख डगर डगर है।

वर्षा की थोड़ी २ बूंदें दम्पति को बहुत अच्छी लगती हैं। नव यौवन से युक्त दोनों इन बूंदों के आनन्द के कारण स्पर्श और आलिंगन के सुख में प्रवृत हो जाते हैं—

'बूंदें थोरी थोरी थोरी बहुत नीकीं लागैं',

इस प्रकार के अनेकों चित्रण घनानन्द के काव्य में भरे पड़े हैं। प्रकृति की गोद में ही उनके राधा और कृष्ण की विलास लीला चलती है। किन्तु जो प्रकृति सयोग के क्षणों को अत्यधिक रसमय और मनोरम बनाती है। वही प्रकृति वियोग के थपेड़ों से अपना भी रूप बदल देती है संयोगिनी ऋतुओं के आगमन पर आनन्दातिरेक से उछलने लगती है किन्तु विरहिणी के लिये प्रकृति के यह सब रूप विषम ज्वाल के समूह के समान हो जाते हैं। महा-

कवि घनानन्द एक विरही कवि हैं। उनका काव्य उनके हृदय की सच्ची अनुभूति है। सुजान के प्रेम ने कवि की अन्तर्आत्मा को भर दिया जो वियोग रूपी दुर्दिन के आने पर उसके हृदय से प्रवाहित हो चला।

(ब) विरह में प्रकृति का उद्दीप्तकारी रूप—प्रकृति का रूप सर्वदा सुख और आनन्द प्रदायक होता है किन्तु विरह की दशा में प्रकृति भी विरहिणी को अनेक भयकर और उग्र रूप दिखाती है। पलाश के वन विरहिणी को वियोग में अङ्गार के समान प्रतीत होते हैं। वर्षा की पुरवाई वायु से उसके शरीर में विरहाग्नि और भी तीव्र होती है। बादल जो कि संयोगावस्था में आनन्द की वर्षा करते थे अब उनको देखकर वियोगिनी बहक उठती है। उसका गला भर आता है। चपला की चमक भी उसकी दशा को अत्यन्त ही दयनीय कर देती है। वर्षा के पुष्पों की सुगध भी वियोगिनी के दुःख को अधिक तीव्र करती है—

> लहक लहक आवै ज्यौं ज्यौं पुरवाई पौन,
> दहकि दहकि त्यौं त्यौं तन ताँवरे तचैं।
> बहकि बहकि जात बदरा बिलोके जिय
> गहकि गहकि गहवरनि हिये मचैं।
> चहकि चहकि डारैं चपला चखन चाहै
> कैसे घन-आनन्द सुजान बिन ज्यौं बचै।
> महकि महकि मारैं पावस प्रसून बाय
> त्रासनि उसास दैया की लौं रहियै अँचै।

कमलों को देख सयोगिनी आनन्द में निमग्न हो जाती थी किन्तु वियोगिनी के लिये सुखदाई वस्तुयें ही विष का काम कर रही हैं—

> विकच नलिन लखें सकुच मलिन होति
> ऐसी कछु आँखिन अनोखी उरभनि है।
> सौरभ समीर आये बहकि बहकि जाय
> राग भरे हिय में विराग-मुरझनि है॥

कोकिल की मधुर बोली भी वियोगिनी को वियोग में दुःखवर्द्धक प्रतीत

होती है। इसलिये उसको वियोगिनी सुनना नहीं चाहती। चातक और मोर भी अपनी आवाज से उसको उद्विग्न करते हैं। प्रिय की अनुपस्थिति में सब सुख के उपकरण दुःख दुगने में लग गये हैं। बादल की गर्जन जो संयोग में आनन्द की दुंदुभी के समान प्रतीत होती थी वह भी अब वियोगिनी के कानों को फोड़े डाल रही है—

> कारी कूर कोकिला! कहाँ को बैर काढ़ति री,
> कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरिलै।
> पैंड़े परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्यौंही,
> चातक! घातक त्यौं ही तू हू कान फोरिलै।
> आनन्द के घन प्रान-जीवन सुजान बिना
> जानिकै अकेली सब घेरौ दल जोरिलै।
> जौ लौं करैं आवन विनोद बरसावन वे
> तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरिलै।

वियोग की अवस्था ही कुछ इस प्रकार की होती है कि उसमें केवल प्रियतम की स्मृति ही सन्तोषप्रद होती है ? किसी भी प्रकार की बात मन को रुचिकर नहीं होती।

सावन का महीना आ गया। संयोगिनी अपने-अपने प्रियतमों के साथ आनन्द में विभोर हो जाती हैं। जायसी के पद्मावत में भी नागमती सावन में संयोगिनियों को अपने प्रियतमों के साथ झूलते देखकर अत्यन्त दुखी होती है—

> सखिन्ह रच्यो पिउ संग हिंडोला
> हरियर भूमि कुसुंभी चोला

घनानन्द की वियोगिनी भी सावन मास के आया जान कर प्रियतम के वियोग में व्याकुल हो जाती है—

> 'सावन आवन हेरि सखी मन भावन आवन चोप बिसेखी
> छाये कहूँ घनआनन्द जान सम्हारि की ठौरि लै भूलन लेखी।
> बूँदें लगैं सब अंग दगैं उलटी गति आपनि पापनि पेखी।
> पौन सों जागति आगि सुनी ही पै पानी तें लागति आँखिन देखी।

चन्द्रमा की चाँदनी नहीं निकल रही वरन् वियोगिनी के प्राण निकल रहे हैं। लोग चन्द्रमा को अमृत प्रदान करने वाला कहते हैं किन्तु वह वियोगिनी को तो विष दे रहा है। तभी तो उसके द्वारा जो चाँदनी प्रकाशित की जा रही है वह इतनी दुखदाई है। वियोग में रात्रि भी काटे नहीं कटती। संयोगावस्था में रात्रि इतनी छोटी लगती थी कि उस पर खीज आती थी किन्तु अब इतनी लम्बी है कि मानों उसका अन्त ही कभी न होगा—

'कहा कहिये सजनी रजनी-भाति, चन्द कढ़ै कि जियैं गहि काढ़ै।
अमीनिधि पै विष-सार स्रवै, हिम ज्योति जगाय कै अगनि डाढ़ै।
सु या पति-सग न जानति है, घन आनन्द जान बिछोह की गाढ़ै।
वियोग में बैरनि बाढ़त ऐसी, कछु न घटै, सु संजोगहू बाढ़ै।'

वही कुंज जिनके नीचे जाकर शरीर प्रसन्न हो जाता था किन्तु अब उन कुंजों की छाया भी दुःख का प्रसार करती है। जिस यमुना का पानी कृष्ण ने कभी अपनी आनन्द की तरङ्गों से सींचा था और सयोगावस्था में उस जल का स्पर्श स्फुरण पैदा करता था अब वियोग में उसे देखकर ही दुःख में वृद्धि हो जाती है। जो पवन विलास के पश्चात् शरीर के श्रम बिन्दुओं को सुखाकर शीतलता प्रदान करता था वही पवन अब उस विरहिणी के शरीर को दग्ध करता है। जो बादल पानी के रूप में जीवन दान करते थे अब वह भी प्राणों को हरने आगये हैं—

वेई कुंज पुंज जिन तरैं तन बाढ़त हो,
तिन छाँह आये अब गहन खो गहिगी
सुरति सुजान चैन बीचनि सों सींची जिन,
वही जमुना, पै हेली! यह पानी बहिगौ।
वहै सुख श्रम स्वेद-समै को सहाय पौन,
ताहि छिपे देह, दैया महादुख दहिगौ।
वेई घन आनन्द जू जीवन कों देते, तिनही
कौ नाम मारिनि के मारिये कौं रहिगौ।

बसन्त के दिन इतने दुखदायी हैं कि विरहिणी को वह रात के समान ही प्रतीत होते हैं। लताओं के फूलों को देखकर तथा तमालों की डालियों में झूलों को देखकर वियोगिनी के शरीर पर क्षीणता छा रही है। मलयानिल के झोकों का स्पर्श सर्वांग में प्रफुल्लित करता है किन्तु विरहिणी के लिये उसका स्पर्श दुखद है :—

बासर बसंत के अनत ह्वै कै अन्त लेत,
ऐसे दिन पारै जु निहारैं दिन रात है।
लतनि की फूलनि तमालनि पै झूलनिकौं
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।
प्यारे घन-आनन्द सुजान ! सुनौ बाल दसा,
चंदनि पवन तें पजरि सियरात है।

प्रिय का परदेश में रहना पावस में कितना दुःख देता है इसे विरहिणी का हृदय फूट फूट कर बताता है। सयोग में आनंद का उपभोग करने के पश्चात् वियोग में दुख का भार कितना कठिन हो जाता है। प्रियतम के लिये सदेश भेजे किन्तु उस निष्ठुर ने कोई भी उत्तर नहीं दिया। विरहिणी उस पर अत्यन्त दुखित है। वह अपनी अन्तरङ्ग सखी से इस निष्ठुरता को प्रकट करती है—

छाये परदेश जान प्यारे सग लै सदेश,
मो मन अन्देस आली सॉसनि रुँधै गरैं।
मोरन की कूकैं सुनि उठति हिये में हूकैं
चूकैं नहीं तातिक करे जो कढिबो अरै।
दामिनी की कौंध लखि चौंधनि मरत चख
अङ्ग अङ्ग सीरीयौ समीर परसें जरै।
घेरि घूँटि मारै चहुँघातें घन आनद यौं,
बादर अडंबरनि डावाँडोल ज्यों करै।

विद्यापति में भी प्रिय के परदेश रहने पर वियोगिनी को इसी प्रकार अपनी सखी से व्यक्त करती है-

सखि मोग पिया
अजहु न आओल कुलिस हिया।

सयोग में प्रकृति के जो उपकरण थे वह अब भी मौजूद हैं किन्तु उस समय उनमें जो सुख का सार निहित था वह अब वियोग में न जाने कहाँ चला गया। जमुना भी वही है, कुजों का समूह भी वही है, उसी प्रकार ऋतुयें भी आती हैं, चन्द्रमा भी कोई नवीन नहीं, वही मन है और उस मन में वही अभिलाषायें भी सचित हैं। मुरली की वही ध्वनि आज तक व्याप्त है। किन्तु कृष्ण न जाने कहाँ छिपे हुये हैं और उनकी अनुपस्थित के कारण ही वियोगिनी की यह दशा हो गई है। इस दशा को किससे कहे कुछ भी लाभ होते नहीं दिखलाई देता—

वही जमुना है वही वन वेई कुज पुज
वही ऋतु वही चन्द और सब कहिये।
वेई हम वही वेई अभिलाष लाख,
वही धुनि मुरली की अजों रमि रहिये।

वियोग की दशा को उद्दीप्त करने में प्रकृति का जो व्यापक रूप महाकवि सूर ने देखा उस प्रकार की व्यापकता तो महाकवि घनानन्द में नहीं किन्तु फिर भी जितना प्रकृति चित्रण का रूप उनके काव्य में मिलता है वह रीतिकालीन कवियों की तुलना में अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके प्रकृति-चित्रण में भी उन्हीं बातों को स्थान दिया गया जो परम्परा-भुक्त थीं लेकिन फिर भी प्रकृति को इतना व्यापक रूप रीतिकाल के किसी भी कवि ने नहीं दिया जितना कि इस रीतिमुक्त कवि ने दिया।

आलकारिक रूप—प्रकृति को आलकारिक रूप में देखना भी सस्कृत साहित्य के प्रारम्भ से ही चला आ रहा था। प्रकृति के उपकरणों के साथ नायक और नायिकाओं के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की समानता अथवा कभी प्रकृति के उपकरणों को नायिका के अङ्गों के सन्मुख हेय सिद्ध करने की अलङ्कारिक प्रणाली बहुत ही प्राचीन है और इसी के आधार पर उपमा और व्यतिरेक आदि अलङ्कारों को काव्य में प्रधानता दी गई। इस प्रकार के वर्णन संस्कृत

कवियों में भरे पड़े हैं। हिन्दी में विद्यापति, जायसी, कबीर, तुलसी, सूर अथवा रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति को उपमान रूप में अनेकों स्थल पर प्रयुक्त किया। विद्यापति ने प्रकृति के अनेक उपकरणों का प्रयोग कमालङ्कार के रूप में अत्यन्त सुन्दरता के साथ प्रदर्शित किया है—

"हरिन इन्दु अरविन्दु करिनि हेम
पिक बूझल अनुमानी।
नयन वदन परिमल गति तन रुचि
अओ अति सुललित बानी॥"

इसी प्रकार सूर ने भी अलंकारों के वर्णन में प्रकृति के उपकरणों को प्रयुक्त किया है। कृष्ण के रूप वर्णन में अनेक प्रकृति के उपकरणों को उपमान रूप में प्रदर्शित किया है—

'ऊधो अब यह समुझ भई
नन्द नन्दन के अंग अंग प्रति उपमा न्याय दई।
कुंतल कुटिल भँवर भरि भाँवरि मालति भुरै लई॥
× × × ×
आनन इन्दुवरन सन्मुख तजि करखें तेन नई।
निरमोही नहिं नेह कुमुदिनी अन्तहि हेम हई॥'

महाकवि घनानन्द ने भी प्रकृति के इस रूप को कृष्ण और राधा के रूप चित्रण में प्रदर्शित किया है। एक नहीं अनेक स्थानों पर इस प्रकार के उदाहरण मिल जाते हैं। विरहिणी के शरीर में ही ग्रीष्म की ताप है और वहीं असीम समुद्र भी है तथा वहीं पर मेघ भी पानी भर कर घनघोर वर्षा कर रहे हैं—

'बिरहा रवि सों घट व्योम तच्यो बिजुरी सी खिनै इकली छतियाँ।
हिय सागर में दृग मेघ भरे उघरे बरसें दिन औ रतियाँ।'

कृष्ण का मुख चन्द्रमा के समान है तथा उनका शरीर घन के समान है

तभी तो वह घनश्याम हैं । उधर राधा के शरीर में वियोग के कारण, पतझर और बसंत दोनों ही एक साथ हो रहे हैं—

'है पतझार बसंत दुहू घनआनन्द एक ही बार हमारे'

वियोग के अश्रुओं के कारण वह वियोगिनी वर्षा ऋतु की बेलि के समान हो गई है । हृदय रूपी छप्पर पर उमग की कोपलों के निकलने से उस बाला ने लज्जा को भी त्याग दिया—

'अँसुआन तिहारे वियोग ही सो वरषा रितु बेलि सी बाल भई ।
हित खोपनि चोपनि कोंपनि झालरि लाज के ऊपर छाय रही ॥'

नेत्रों के सम्पूर्ण उपमानों को घनानन्द ने एक ही स्थान पर प्रदर्शित करके अपने कला कौशल का अच्छा परिचय दिया है—

'मीन कज खजन कुरङ्ग मान भङ्ग करें
घाती बड़े काती लिये छाती पै रहैं चढ़े ।'

इसी प्रकार व्यतिरेक अलङ्कार का प्रयोग करके कवि ने प्रकृति के उपकरणों को नायिका के अङ्ग प्रत्यगों के सन्मुख हेय सिद्ध किया है—

'वारनि मौंर कुमार भजै, पुहुपावलि हास विलासहि पूजहि ।'

शरीर रूपी बन में विरह रूपी दावाग्नि प्रचड रूप से व्याप्त हो गई है । जल के द्वारा किस प्रकार बुझे । साँस रूपी बाँस चटकने लगे हैं । आशा रूपी लता भी अब जल रही है । दुख रूपी धुँए की धुन्ध में प्रान रूपी खग घुट रहे हैं । अब तो आनन्द के घन अर्थात् कृष्ण के दर्शनों से ही इस विरह रूपी दावानल से छुटकारा होगा—

विरह दवागिनि उठी है तन बन बीच,
जतन सलिल के सु कैसे सींचिये परै ।
अन्तर पुढाई फटै, चटकत साँस बाँस,
आस लानी लता हू उदेग झर सौं झरै ॥
दुख-धूम धूधरि में घिरे घुटें प्रान खग,
अब लौं बचे हैं जो सुजान तनकौ दरै ।

बरसि बरसि घन-आनन्द अरवि छाँड़ि,
सरस परस दै दहनि सब ही दरै ॥

अलङ्कारिक रूप में प्रकृति के चित्रण में कवि ने कई स्थान पर अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। प्रकृति विरहजनित वेदना को स्पष्ट करने तथा उसे मूर्तिमत्ता प्रदान करने में सहायक हुई है।

प्रकृति का स्वतन्त्र रूप—प्रकृति का संश्लिष्ट-चित्रण रीतिकालीन कवियों में बहुत ही कम पाया जाता है। बिहारी देव, पद्माकर आदि सभी कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में ही देखा। केवल कुछ बिहारी के दोहे और कुछ कवित्तों में सेनापति ने स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण को स्थान दिया है। घनानन्द भी इस क्षेत्र में रीतिकालीन कवियों अथवा अपने अग्रज कृष्ण-भक्त कवियों के पीछे चलकर प्रकृति के उद्दीपन रूप को ही देखा। किन्तु फिर भी जिस वनस्थली के बीच उनके प्रिय इष्टदेव राधा और कृष्ण ने अपनी लीलाओं का प्रदर्शन किया था उसके स्वतन्त्र रूप को भी उन्होंने देखा। बसंत वर्णन में इस प्रकार का वर्णन कुछ मिल जाता है किन्तु वह भी अधिक नहीं—

वृन्दावन आनन्द घन राजत यमुना कूल।
सदा सुखद सुन्दर सरस, सब ऋतु रुचि अनुकूल॥
रितु औरै मौरै नवल वृन्दावन तरु बेलि।
सहज सुहायो देखिये आनन्द घन रसकेलि॥

आगे चौपाइयों में भी इसी प्रकार का स्वतन्त्र चित्रण मिलता है किन्तु अधिक नहीं—

घनहि पराग लता दुर मोये। मधुरित सौरभ-सींज समोए॥
बन बसन्त बरनत मन फूल्यौ। लता लता झूलनि संग झूल्यौ।

प्रकृति के स्वतंत्र वर्णन की यह विशेषता घनानन्द के प्रकृति-चित्रण को रीतिकालीन कवियों के प्रकृति चित्रणसे उच्चकोटि का सिद्ध कर देती है। जिस प्रकार भाव की प्रधानता के द्वारा उन्होंने रीतिकाल के बाह्य-चित्रण को एक नवीन

दिशा की ओर मोड़ा उसी प्रकार प्रकृति के चित्रण में भी उन्होंने प्राचीन कवियों की तरह संश्लिष्ट प्रकृति चित्रण की ओर भी ध्यान दिया। प्रकृति का जितना प्रेम इनकी कविताओं में है उतना उस काल के बहुत कम कवियों में है।

प्रकृति का सन्देश वाहक रूप :—जिस प्रकार कालिदास के मेघ ने यक्ष का सदेश उसकी प्रियतमा को दिया था उसी प्रकार घनानन्द ने पवन और मेघ दोनों के द्वारा विरहिणी की दशा का सदेश उसके प्रिय तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है—

'घन आनन्द जीवन दायक हौ कछु मेरीयौ पीर हिये परसौ।
कबहू वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवान कौं लै बरसौ॥

उसी प्रकार वियोगिनी के द्वारा पवन से भी प्रार्थना की जाती है कि वह ही कृपा करके उसका सन्देश उसके प्रियतम तक पहुचा दे। उस निष्ठुर ने यदि उसे भुला दिया है तो पवन इतनी कृपा ही कर दे कि उसके प्रियतम के पैरों की धूल ही उसके समीप उड़ा कर ले आवे। इस प्रकार घन-आनन्द ने प्रकृति को भी संयोग वियोग दोनों पक्ष में अनेक रगों में देखा है। उनका प्रकृति-चित्रण इस बात का परिचायक है कि कवि को भावों के रङ्गों को प्रकृति की पृष्ठभूमि देकर रगने में ही आनद का अनुभव होता था। प्रकृति चित्रण में घनानंद ने कृष्ण भक्तों का अनुकरण करके गिरि पूजन, अनुभव चन्द्रिका आदि शीर्षकों के अन्तर्गत अपनी रुचि का अच्छा परिचय दिया है। रीति-बद्ध कवियों के समान उन्होंने परम्परायुक्त प्रकृति-वर्णन को ही नहीं अपनाया। षट्ऋतु वर्णन तथा बारहमासा रीतिकालीन कवियों में प्रकृति चित्रण के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। घनानद ने जिस प्रकार काव्य में अन्तर्वृत्तियों के चित्रण को अपनाया और एक स्वतंत्र कवि के रूप में अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन किया उसी प्रकार प्रकृति वर्णन में उन्होंने रीतिबद्ध कवियों का अनुकरण नहीं किया। उनका प्रकृति चित्रण अपने काल के कवियों से अधिक व्यापक था।

प्रेमतत्त्व का निरूपण

प्रेम की व्यापकता :—मानव स्वभाव का यह विशेष गुण है कि वह अपने जीवन में किसी का होना चाहता है। अपने हृदय का प्रसार वह अपने तक ही सीमित न रखकर अन्य लोगों के हृदय के साथ भी उसका सम्बन्ध जोड़ना चाहता है। इसी प्रवृत्ति का परिणाम है कि वह अन्य जीवधारियों के सुख-दुख में शामिल होता है। उनके साथ सहानुभूति और समवेदना का प्रदर्शन करता है। ऐसा करने में उसके हृदय को एक अपरमित आनन्द प्राप्त होता है। मनुष्य की इसी उदात्त और निस्वार्थ भावना के फलस्वरूप अन्य पुरुष भी उसकी ओर आकर्षित होकर अपने हृदय में उसके लिये एक स्थान सुरक्षित रखते हैं। इस प्रकार दोनों ओर से पारस्परिक आकर्षण का सूत्रपात प्रारम्भ हो जाता है। *हृदय की इसी विशालता में प्रेम का प्रारम्भ होता है।* यही पारस्परिक आकर्षण संस्कार और शिक्षा के द्वारा और भी व्यापक होता जाता है और जिस हृदय में एक मानव के लिये ही स्थान था वही धीरे-धीरे मानव जाति के लिये हो जाता है। पारस्परिक आकर्षण में साहचर्य का बड़ा योग है और यदि यह कहा जाय तो और अधिक उचित होगा कि प्रारम्भ में मनुष्य एक दूसरे के प्रति साहचर्य के कारण ही आकर्षित होता है। परिवार *के लोगों के प्रति उसका प्रेम* इसी कारण है कि उन लोगों के बीच में वह जन्म से रहता है इसलिये वहाँ पर उसको यह आवश्यक नहीं कि उसके परिवार के लोगों में उसके प्रति सहानुभूति अथवा समवेदना की भावना है कि नहीं। पारिवारिक प्रेम मूलतः साहचर्य के कारण ही होता है। किन्तु वहाँ पर भी यदि कोई मनुष्य कुछ ऐसा कार्य करता है जिसमें वह परिवार के हित से अपने हित को अधिक महत्व देता है वहीं पर पारिवारिक प्रेम का निर्मल जल स्वार्थ की मिट्टी से दूषित हो जाता है। इसलिये प्रेम के प्रसार में व्यक्तिगत स्वार्थ को महत्व देना एक व्यवधान बन जाता है।

परिवार के पश्चात् मानव हृदय का प्रसार संसार में है। परिवार इसकी पहली सीढ़ी है। उस सीढी पर से ही यदि आदमी गिर पड़ा तो वह फिर समाज, जाति और देश से प्रेम नहीं कर सकता। यदि उसने पारिवारिक जीवन में पारस्परिक प्रेम के स्वरूप को देखा है और उसके द्वारा अपने हृदय को आनद से ओत-प्रोत किया है तो यह निश्चय है कि उसका हृदय भविष्य में देश और जाति तक ही सीमित न रहकर विश्व के प्रेम मे अपने को रजित कर देगा। हृदय का प्रसार ही प्रेम को व्यापकता प्रदान करता है। प्रेम में हृदय अपने लिये केवल सतोष और अनिर्वचनीय आनन्द की उपलब्धि ही करता है।

प्रेम का स्वरूप—किन्तु इसके अतिरिक्त प्रेम का एक और रूप भी है जो अनादिकाल से मानव जीवन को प्रभावित करता रहा है—वह है स्त्री और पुरुष का प्रेम। इसका आकर्षण वह वासना है जो मानव के हृदय मे सृष्टि के प्रथम चरण मे ही निहित करदी गई थी। स्त्री के रूप और सौन्दर्य को देखकर मनुष्य की अदम्य वासना हिल्लोलित होने लगती है। इसी प्रकार पुरुष के अङ्गों के प्रति भी स्त्री का आकर्षण स्वाभाविक है। दोनों ओर से एक दूसरे के प्रति आकर्षण होता है। पुरुष और स्त्री दोनों ही एक दूसरे से भिन्न रहना नहीं चाहते। नेत्रों के द्वारा ही उस आकर्षण का स्पष्टीकरण होने लगता है और इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवधानों को पारकर स्त्री-पुरुष का यह सम्मिलन अनादिकाल से चला आरहा है। इस प्रकार के प्रेम को शारीरिक प्रेम अथवा स्थूल प्रेम की सज्ञा दी जाती है। किन्तु यह शारीरिक प्रेम ही वास्तव में इतना घनीभूत हो जाता है कि इसकी स्थूलता का स्थान सूक्ष्मता ले लेती है। जो प्रेमी और प्रेमिका पारस्परिक निर आलिङ्गन में बद्ध होने की प्रगाढ़ इच्छा रखते थे वही यदि अपनी इच्छा की पूर्ति होते नहीं देखते तो उनका हृदय खण्ड-खण्ड होकर बिखर जाता है। प्रेम की स्थूलता का स्थान अनुभूति ले लेती है। अब प्रेमी को शारीरिक सुख की लिप्सा नहीं रहती वरन् अब तो अपनी प्रियतमा के दर्शन की साध ही शेष रह जाती है। उसके हृदय में प्रियतमा की स्मृति एक सघर्ष मचा देती है। एक-एक स्मृति पर वह अनेक भावराशियों को न्योछावर करने लगता है। महाकवि घनानन्द का प्रेम इसी प्रकार का था। इस प्रेम में मॉसलता और स्थूलता को कोई स्थान नहीं था क्योंकि

कवि ने संयोग में भी अपने हृदय को ही सुजान को दिया था। उन सुजान ने प्रत्युत्तर में कुछ भी नहीं चाहा। केवल उनके सौन्दर्य को अपनी तृप्ति करता रहा। किन्तु यह भी लोगों से न देखा गया और इन में उस दर्शन सुख से भी उसे वंचित होना पड़ा। घनानन्द ने अपने प्रेम इस परवशता को ही अपने काव्य में चित्रित किया है। यही कारण है कि इनका प्रेम अनुभूति प्रधान है।

साहित्य में प्रेम के विभिन्न रूप—भारतीय साहित्य में प्रेम के किन रूप हैं। ऊपर लौकिक प्रेम के दो पक्षों पर प्रकाश डाला गया—जिनमें प्रथ शारीरिक आकर्षणजन्य प्रेम और द्वितीय अनुभूति प्रधान प्रेम। वास्तव कालक्षेत्र में प्रेम का प्रादुर्भाव सौन्दर्य के कारण ही हुआ है और उसी उदात्त रूप अनुभूति प्रधान हो गया है। इस प्रकार एक ही वस्तु को भिन्न-भि प्रकारों से देखा गया है। इसी लौकिक अनुभूति से आगे बढ़कर जब अनुभू पारलौकिक सत्ता के प्रति हो जाती है तो उसी को ईश्वरोन्मुख प्रेम की संज्ञा दी जाती है। ईश्वरोन्मुख प्रेम में भी साकार के प्रति प्रेम होता है और निर कार के प्रति भी। साकार ईश्वर के प्रेम में राम और कृष्ण आदि के प्रेम परम्परा से वर्णित रूप को ही कवि अपनी कल्पना के द्वारा अनेक रूपों प्रस्तुत करता है। किन्तु निराकार के प्रति जो उसका प्रेम होता है उस पर व एक रहस्य का आवरण डाल देता है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में प्रेम की चार धारायें आदिकाल से चली आरही हैं—१—लौकिक प्रेम, २—पारलौकिक प्रेम लौकिक प्रेम को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—१—स्थूल प्रेम अथवा शारीरिक प्रेम और २—अनुभूति प्रधान प्रेम। पारलौकिक प्रेम के भी दो विभाजन होते हैं—१—सगुण के प्रति और २—निर्गुण के प्रति रहस्यो न्मुख प्रेम।

हिन्दीकाव्य की प्रेमधारा इन चारों धाराओं में विभाजित होकर ही साहित्य के सागर को प्लावित करती रही है। किन्तु शारीरिक प्रेम अथवा स्थूल प्रेम प्रत्येक युग में अपनी सत्ता किसी न किसी प्रकार बनाये रहा। हिन्दी ही नहीं उसकी माँ अपभ्रंश तथा मातामही संस्कृत भी इस स्थूल प्रेम को ही लेकर चली। यह कहें तो अनुचित न होगा कि माँसल प्रेम का जो रूप हिन्दी में

आया वह उसकी मातामही और माँ की विरासत के फलस्वरूप ही मिला।

कालिदास जैसे महाकवि ने स्थूल शृङ्गार की उत्कृष्टता को भी दिखाया। यह का अनुभूति प्रधान प्रेम भी शारीरिक प्रेम के कारण ही हुआ था। एक कालिदास ही नहीं संस्कृत के अनेक कवियों ने प्रेम का आलम्बन नारीके अङ्गों को ही रखा। उनके काव्य में नारी के अङ्गों के सौन्दर्य के प्रति एक उत्कट ललक है। सौन्दर्य की देवी यक्षिणी की स्मृति उस यक्ष को इसलिये होती है कि वह उसके मातृचर्य में एक लम्बे समय से रह रहा था अब उसकी वह *प्रिया जो इतनी रूपसी है न जाने कैसे अपने दिन व्यतीत करती होगी। यक्ष* उसके शरीर का चित्र मेघ के सम्मुख रखकर अपनी उस ललक को प्रकट करता है जो उसके हृदय में अपनी प्रिया के शारीरिक सौन्दर्य के प्रति है—

> तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्व बिम्बाधरोष्ठी
> मध्येक्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः।
> श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या
> या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥

हिन्दी के आदिकाल में विद्यापति जैसे कवि को प्रारम्भ में शारीरिक सौंदर्य के प्रति ही आकर्षण होता है किंतु वियोग की अवस्था में कवि की अनुभूति उस शारीरिक आकर्षण को ही आन्तरिक प्रेम में परिवर्तित कर देती है। जो कवि एक दिन यौवन के प्रति इतना आकर्षित हुआ था कि उसके नेत्र आश्चर्य से विस्फारित हो गये थे और अनायास ही वह अपने आकर्षण को इस प्रकार व्यक्त करने लगा था—

'कि आरे! नव जौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहिअ न पारिअ छओ अनुपम एक ठामा॥'

वहाँ एक दिन भावुकता से ओत-प्रोत होकर प्रेम के आन्तरिक प्रभाव को देखने लगता है—

सखि मोर पिया।
अजहु न आओल कुलिश हिया॥

नवर न्नोलाश्रोल दिवस लिखि लिखि ।
नयन अँधाश्रोल पिया पथ हेरि ॥

भक्तिकाल में सूर के कृष्ण श्रौर राधा का प्रेम भी 'नैन नैन मिल परी ठगोरी' के उपरान्त ही प्रारम्भ हुश्रा । सम्पूर्ण 'भ्रमरगीत सार' श्रनुभूति प्रधान प्रेम से ही श्रोतप्रोत है । गोपियों के प्रेम में जो श्रनन्यता है वही उच्च प्रेम की परिचायक है । गोपियों को किसी प्रकार का स्वार्थ नहीं वह तो चातक के समान श्रपने प्रिय कृष्ण के दर्शन की ही लालसा रखती हैं । उनके जीवन का उद्देश्य प्रिय के दर्शन मात्र के लिये ही है । ऊधो के निर्गुण ब्रह्म की महत्ता इस श्रनन्य प्रेम के सम्मुख विलीन हो जाती है । गोपियाँ श्रपनी श्रनन्यता को किस स्वाभाविकता से व्यक्त करती हैं—

'ऊधो मन नाँहीं दस बीस ।
एक हुतो सो गयो स्याम सँग को श्राराधै ईस ॥'

भक्त कवियों ने किसी साँसारिक श्रालम्बन को श्रपने प्रेम का लक्ष्य नहीं बनाया । उनके प्रेमी राम श्रौर कृष्ण थे । इसलिये इन भक्तों ने श्रपने इष्ट-देव के सौन्दर्य का जो वर्णन किया वह भी लौकिक प्रेम से ऊपर था । श्रपने इष्टदेव के रूप का ध्यान उनको श्रपरमित श्रानन्द देता था । ईश्वर के प्रेम ने उनकी सम्पूर्ण वासनाश्रों को कुण्ठित कर दिया । राम श्रौर कृष्ण उनको इस संसार के सम्पूर्ण कुचक्रों एव यातनाश्रों से मुक्त करेंगे इसलिये वे उनका स्मरण करते थे ।

सूफी कवियों में प्रेम का श्राधार लौकिक था किन्तु बीच बीच में वे उस प्रेम को श्रनत सत्ता के प्रति भी दिखाते चलते थे । जायसी के 'पदमावत' में कवि ने राजा रत्नसेन का शारीरिक सौन्दर्य के प्रति ही श्राकर्षण दिखाया है किन्तु फिर विरह की व्याकुलता में पदमावत के जो उद्गार हैं उनमें श्रनुभूति की प्रधानता स्पष्ट दिखाई दे रही है । नागमती के विरह वर्णन में शारीरिक झलक भी स्पष्ट है । सूफियों में शारीरिक मिलन को श्रधिक महत्व दिया गया । इसका कारण हम पीछे कह चुके हैं कि सूफियों के प्रेम में मादन भाव की प्रधानता थी इस कारण उनके प्रेम में कामोद्दीपन को प्रमुख स्थान मिला ।

किंतु भारतीय प्रेम में माधुर्य भाव था जो एक कोमल रूप को लेकर चला था। जायसी की नागमती की आन्तरिक दशा इसलिये बिगड़ी हुई है कि उसे प्रियतम के द्वारा शारीरिक सुख नहीं मिल रहा। वह अपने उद्‌गारों को इस प्रकार स्पष्ट करती है—

'पद्मावति सौं कहेउ विहंगम। कंत लुभाय रही करि संगम।'

नागमती को इसी बात का दुःख है कि पद्मावत उसके प्रिय के साथ समागम करे और वह इस प्रकार बेचैनी में अपना जीवन व्यतीत करे। सूफियों का प्रेम अनुभूति प्रधान प्रेम के अन्तर्गत है। उन्होंने उसको समासोक्ति के द्वारा ईश्वरोन्मुखी बनाकर उसकी शारीरिकता को सयत करने का भी प्रयत्न किया है।

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल अधिकतर नारी के शारीरिक सौन्दर्य की ओर ही आकर्षित था इसलिए उसकाल के काव्य में जिस प्रेम का रूप दिखाई देता है वह उदात्त प्रेम नहीं वरन् स्थूल प्रेम ही है। बिहारी, मतिराम देव, पद्माकर आदि सभी कवि, स्थूल प्रेम को ही लेकर चले जो केवल वासनाओं की तृप्ति तक ही सीमित था। इस काल के प्रेम में चातक की सी अनन्यता नहीं। प्रेम को उद्दीप्त करने के लिये ठोढ़ी का गड्ढा ही पर्याप्त था उसी को देखकर नायक प्रेयसी के लावण्य में डूब जाता था। पद्माकर की नायिका का 'नैन नचाय' के यह कहना ही प्रेम को उद्दीप्त कर सकता था—

'लला फेरि आइयो खेलन होरी'

घनानन्द का शुद्ध प्रेम—

महाकवि घनानन्द भी रीतिकाल में ही हुये थे और उनको भी सुजान के सौंदर्य के प्रति ही प्रथम आकर्षण हुआ था। लेकिन उन्होंने अपने उस प्रेम को सयत रखा क्योंकि उनको प्रतीत था कि दरबार की नर्तकी से मीरमुन्शी का प्रेम होना समव नहीं। यही कारण था कि वह अपने प्रेम को अपने हृदय में रखकर उसकी पीर को अन्दर ही अन्दर अनुभव करने लगे। किंतु प्रेम क्या छिपा है? उनको उसी प्रेम के कारण अपनी नौकरी से हाथ धोने पड़े और

जिसको हृदय दिया था उस ने भी साथ नहीं दिया। उनकी हृतंत्री का एक एक तार झंकृत हो गया और उनके हृदय के प्रेम विषयक सम्पूर्ण भाव उनकी कविता के रूप में निस्सरित होने लगे।

घनानंद का प्रेम प्रथम लौकिक प्रेम था किंतु बाद में उन्होंने अपनी प्रेयसी सुजान के प्रति प्रेम को कृष्ण प्रेम में परिणित कर दिया। इस प्रकार प्रेम के दो पहलू हैं —वह संसार का भी है और साथ ही ईश्वर के प्रति भी है। किंतु घनानन्द के प्रेम का मूल स्वर उनका व्यक्तिगत प्रेम ही है। कुछ विद्वानों ने उनके प्रेम को रहस्योन्मुख प्रेम की संज्ञा देने का प्रयत्न किया है। लेकिन यह किसी पुष्ट आधार पर न होने के कारण मान्य नहीं। घनानन्द तो सुजान का नाम ही पुकार पुकार कर अपने उद्‌गारों को प्रकट करते हैं। उनके प्रेम में किसी प्रकार की वक्रता नहीं। उनका प्रेम तो राज मार्ग के समान प्रशस्त एवं विस्तीर्ण है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में प्रकट किया है—

'अति सूधो सनेह कौ मारग है जहाँ नेंक सयानप बाँक नहीं।'

महाकवि घनानन्द ने अपने आन्तरिक भावों को ही अपने प्रेम में अधिक महत्त्व दिया अथवा यह कहना चाहिये कि उनके मग्न हृदय से अनायास ही इस प्रकार की उक्तियाँ निकल पड़ीं जो उनके अनन्य प्रेम की परिचायक हैं। घनानन्द तो अपने प्रिय को चकोर और चातक के समान प्रेम करते थे। उनको संसार में केवल प्रिय के दर्शनों की ही अभिलाषा थी। उनको केवल एक ही विश्वास था कि उनके प्रियतम से मिलन अवश्य होगा। इसी आशा से उनके प्राण शरीर में रह रहे हैं अन्यथा न जाने कब के उड़ गये होते—

'एक बिसास की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान बटोही'

कृष्ण को जब से देखा उसी समय से 'चाह की अग्नि प्रज्वलित हो गई—

'जबतें निहारे घन आनन्द सुजान प्यारे
तबतें अनोखी आगि लागि रही चाह की।'

प्रेम की अवस्था भी कितनी दयनीय होती है। प्रेमी को जड़ और चेतन का भी भेद नहीं रहता। घनानन्द की विरहिणी आत्मा भी उसी अवस्था

में पुकार उठती है। कालिदास के यक्ष के समान उसे भी यह होश नहीं रहता कि मेघ जड़ है वह उसकी इच्छा को कैसे पूर्ण करेगा। विरहिणी आत्मा मेघ के द्वारा अपना संदेश भेजती है—

> घन आनन्द जीवन दायक हौ,
> कछु मेरी हू पीर हिये परसौ।
> कबहू वा बिसासी सुजान के आँगन,
> मो अँसुवान कौं लै बरसौ॥

रीतिकालीन कवियों का प्रेम—

रीतिकालीन कवियों के प्रेम वर्णन में स्थूलता है। उनकी प्रवृत्ति अधिकतर नायिका के अङ्ग प्रत्यंग के निरूपण में ही अधिक रमी। प्रेम की गहराइयों से उनको कोई मतलब नहीं। वास्तव में उनमें कोई भी ऐसा कवि नहीं था जिसने प्रेम की उदात्त भावना को अपने हृदय में अंकित किया हो। उनका कार्य तो काम वासना को उद्दीप्त करने वाले चमत्कार का प्रदर्शन मात्र था। यही कारण है कि उनके प्रेम में अन्तवृत्तियों के निरूपण को उतना स्थान नहीं मिला जितना कि कल्पना की अतिरंजित उड़ानों को दिया गया। कहीं नायिका के नेत्रों को 'वनचारी' मृग कहकर उनसे 'नागर नरन' का शिकार कराया गया तो कहीं पर नायक और नायिका के हृदय को नट बनाकर डोरि की रस्सी पर इधर उधर दौड़ाया गया। कभी नायक की लगन की लपटों को छूने में नायिका आँगन में दौड़ती फिरती है। नायक भी अपने प्रेम का प्रदर्शन कभी 'लरिका' को गोद में लेने के बहाने से अपनी प्रेयसी के वक्षस्थल को छूकर ही कर देता है। नायिका के प्रेम का माध्यम हृदय नहीं वरन् एक कोर है। उसके कट जाने पर उस नायिका के प्रेम में बाधा पड़ जाती है। उसकी अन्तरंगिनी सखी उसको यह कहकर समझाती है कि यदि एक सूत गया और बन भी उजड़ गया तो तू इस प्रकार दुखी क्यों होती है। अभी दोनों अवसर तो गये नहीं हैं। क्या प्रेम है! केवल शारीरिक मिलन का सुख ही जिसका चरम लक्ष्य है। देव, मतिराम, पद्माकर आदि सम्पूर्ण कवियों ने इसी शारीरिक आकर्षण को ही अपनी रचनाओं में अधिक स्थान दिया।

मतिराम के प्रेमी भी अपनी नायिका के अङ्गों तक ही अपने प्रेम को सीमित करते हैं। कभी उस सुख के लिये वह 'लला' दिन में ही 'घात' लगाते हैं। कभी भीतर लेटकर अपनी प्रेयसी से पानी मँगाने का उपक्रम करते हैं। इस प्रकार रीतिकालीन कवियों के काव्य में प्रेम नामक उदात्त भाव नायिका के अङ्गों के प्रति आकर्षण मात्र बनकर रह गया था।

घनानन्द का अनन्य प्रेम—घनानन्द का प्रेम उनके लिये एक साधना थी। वह उस प्रेम की देवी के उपासक थे जिसकी स्मृति उनके अङ्ग-अङ्ग में समा गई थी। उनके लिये प्रेम कोई उथला तालाब या झील नहीं वह तो अथाह सागर था। उस सागर को छोड़कर उनको कुछ नहीं सुहाता—

'एकै आस एकै बिश्वास प्रान गहे बास,
और पहिचान इन्हें रही काहू सों न है।'

यदि प्रिय जो अनेक गुणों की निधि है वहही इन प्राणों की उपेक्षा करेगा तो इन प्राणों की क्या दशा होगी—

नेह-निधि-प्यारे गुन-भारे ह्वै न रूखे हू जे,
ऐसी तुम करौ तौ बिचारन कै कौन है।

घनानन्द की प्रेमिका को तो अब जीवन भर प्रिय की स्मृति करना ही रह गया है। वह प्रेम के सागर में उतर पड़ी है। प्रियतम के मन में आवे वह करे उसे इसकी तनिक भी परवाह नहीं। अब तो केवल प्रिय की बातों में ही जीवन को व्यतीत करना चाहती है। प्रेमिका अपनी दशा की तनिक भी चिन्ता नहीं करती उसे तो प्रेम में यदि अपना जीवन ही बलिदान करना पड़े तब भी वह अपने प्रेम की सफलता ही मानेगी। घनानन्द की प्रेयसी अपने प्रियतम की उपेक्षा को सहकर भी उसके प्रति अपने अनन्य प्रेम का परिचय देती है—

'तुम नीके रहौ तुम्हें चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजिये जू।'

घनानन्द के प्रेम में चातक के प्रेम की अनन्यता परिलक्षित होती है। प्रेयसी ने अपने प्रेम को इतना व्यापक रूप दिया है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता! उसके प्राणों में केवल प्रिय की स्मृति ही को स्थान है। उसके हृदय में अन्य किसी भी बात के लिये स्थान नहीं—

'घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो यहाँ एकते दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धी पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥"

यदि मिलन का प्रेम उसे नहीं मिलेगा तब भी वह प्रेयसी अपने प्रेम में दृढ़ ही रहेगी। यदि उसकी दशा बिगड़ती जायेगी तब भी उसे कोई चिन्ता नहीं। यदि अन्य कोई पूछेगा तो उसका उत्तर भी वह अपने प्रिय से पूछकर ही देगी—

"यह देखि अकारन मेरी दशा कोऊ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं।
जिय नेंकु बिचारिकै देहु बताय हहा पिय दूरितें पाँय गहौं॥"

तुलसी ने भी प्रेम के अनन्य रूप को ही अधिक महत्व दिया। उन्होंने अनेक स्थानों पर प्रेम की अनन्यता को प्रदर्शित किया है—

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
स्वाँति बूँद घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥

प्रेम की इसी अनन्यता के कारण रसखान भी अपना नाम अमर कर गये। प्रिय अनन्यता के साथ इस मुसलमान गायक ने अपने प्रिय को प्यार किया सम्भवतः उसी का प्रभाव घनानन्द पर भी पड़ा। रसखान ने प्रेम की अनन्यता के महत्व का बड़े जोरदार शब्दों में प्रतिपादन किया—

अति सूछम कोमल अतिहि अति पतरो अतिदूर।
प्रेम कठिन सबतें सदा, नित इक रस भरपूर॥
इक अंगी बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम महान॥
डरै सदा, चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एकरस चाहिकै, प्रेम बखानो सोय॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहैं, कठिन प्रेम की फाँस।
प्रान तरफि निकरै नहीं, केवल चलत उसाँस॥

घनानन्द का प्रेम मूलतः इसी प्रकार का था। उनके काव्य में प्रेयसी जीवन भर तड़पने को तैयार है किन्तु फिर भी उसे मिलन की ओर से कोई

विश्वसनीय नहीं है। उनके प्रेम में स्वार्थ को तनिक भी स्थान नहीं। न यौवन और रूप का ही आकर्षण है और न वह प्रिय से धन की ही कामना करती है। वह तो वासनाओं और इच्छाओं से रहित प्रेम के निष्काम रूप को ही अधिक महत्व देती है। प्रेयसी की अनन्यता एक पंक्ति से ही स्पष्ट है—

> 'मोहि तुम एक तुम्हें मोसम अनेक आहि
> कहा कछु चंदहि चकोरनि की कमी है।'

घनानन्द के काव्य में प्रेम से सिंचित अनेक उक्तियाँ भरी पड़ी हैं। उनके हृदय में प्रेम का जो उच्च स्थान था उसका परिचय उन उक्तियों की मार्मिकता से स्पष्ट हो जाता है। विरहिणी प्रेम में इतनी मग्न है कि उसे रात दिन अपने प्रियतम का ही ध्यान रहता है। सुबह से शाम और शाम से सुबह प्रियतम की प्रतीक्षा में ही बीतते हैं। यदि प्रियतम कहीं उसे अपनी झलक भी दिखावें तब भी वह प्रेमाधिक्य के कारण उनको देखने में असफल रहती है। उस समय प्रेम की सघनता के कारण उसके नेत्रों में प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगते हैं और उसकी दृष्टि के सम्मुख आवरण बनकर प्रियतम के दर्शन में बाधा उपस्थित कर देते हैं। प्रेयसी को क्षणिक दर्शन का लाभ भी नहीं मिल पाता—

> 'भोरतें साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
> साँझ तें भोरलौं तारनि ताकिबो तारनि सौं इकतार न टारति।
> जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनन्द आँसुन औसर गारति।
> मोहन सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति॥'

प्रेयसी के प्राणों में तो केवल प्रिय का रूप बस गया है। किन्तु उसके प्रियतम ने उसके इस प्रेम को ठुकरा दिया। अब वियोग की गर्म हवाओं के झोंकों से इन प्राणों की अवस्था अत्यन्त ही बिगड़ गई है। लेकिन फिर भी माथ पतङ्ग की भाँति उड़ते ही रहते हैं।

प्रियतम की निष्ठुरता को प्रेम की एक-निष्ठता अवश्य जीतेगी। प्रेयसी की व्याकुल पुकार विश्वास के साथ निकलती है—

'ऐसें घनआनन्द गही है टेक मन माहिं
ए रे निरदई तोइ दया उपजाय हौं ।'

प्रेयसी विरह की वेदनाओं में तपकर अपने प्रेम में इतनी दृढ़ है कि उसको संसार में किसी का प्रेम अपने प्रेम के समान नहीं जचता । पतंगा और मीन भी प्रेम में कवि प्रसिद्धि के द्वारा आदर्श रूप में उपस्थित किये जाते रहे हैं । किंतु घनानन्द की प्रेयसी उन दोनों के प्रेम को अपने प्रेम से हेय समझती है । उसका कारण भी स्पष्ट है कि पतङ्ग अपने प्रियतम दीपक को देखते ही उस पर गिरकर अपने प्राणों को न्योछावर कर देता है और मछली अपने प्रियतम जल से वियुक्त होते ही अपने प्राणों को छोड़ देती है । किन्तु घनानन्द की विरहिणी अपने प्रियतम के वियोग को भी उस प्रेम की कसौटी समझती है । इसलिये प्रियतम के दर्शनों की साध लेकर वह अपने शरीर को गलाते हुए अपने प्राणों को सुरक्षित ही रखती है । अपने प्रेम पर इसीलिये उसे अभिमान है—

मरिबो बिसराम गनै वह तौ
यह बापुरो मीत-तज्यौ तरसै ।
वह रूप-छटा न सहारि सकै
यह तेज तवै चितवै बरसै ।
घन-आनन्द कौन अनोखी दसा
मति आवरी बावरी ह्वै थरसै ।
बिछुरे मिलै मीन पतङ्ग दसा
कहा मो जिय की गति कौं परसै ॥

सूफियों के प्रेम में पीर अथवा वेदना की कसक सदा रहती है । घनानन्द के काव्य में भी इस कसक को अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है । प्रिय की स्मृति आते ही वह नायिका उद्विग्न हो जाती है । उसे अतीत की स्मृतियाँ बार-बार कचोटती हैं । प्रिय से वह उन पिछली बातों का स्मरण करके बड़े मारिल हृदय से कहती है—

मन माहि जो तोरन हौ, तौ कहौ
बिसवासी सनेह क्यों जोरत है।

हृदय की कसक उस प्रेमिका को बेचैन कर देती है। वह अपनी गलती को अन्य लोगों के लिये सबक बनाती है। उसे इस बात की चिन्ता नहीं कि उसके प्राण इस प्रकार प्रेम में घुट घुटकर निकल जावेंगे। उसकी वेदना मुखरित होकर यही पुकारती है कि भविष्य में अन्य लोगों को कभी भी किसी 'अनोही' से प्रेम नहीं करना चाहिये—

'प्रान मरैंगे भरैंगे बिथा पै
अनोही सौं काहू कौ मोह न लागौ'

जीवन से उदास होने पर भी प्रेयसी अपने प्रियतम के दर्शनों की इच्छा को अन्त तक नहीं छोड़ती—

'जीवनि भई उदास तऊ है लिए आस
जीवहि जिवाऊँ प्रान तेरो छवि धनि रे।'

घनानन्द के प्रेम का अपार समुद्र अनेक भावनाओं की लहरों से तरंगित है। प्रेम पंथ का यह पथिक अनेकों बाधाओं को लाँघता हुआ भी अपने मार्ग से विचलित नहीं होता। उनके प्रेम के उदात्त रूप को देखकर ही किसी ने उनके विषय में ठीक ही कहा था—

प्रेम सदा अति ऊँचौ लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनि कै सब के मन लालच दौरि पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी।
जग की कविताई के धोखे रहैं ह्याँ प्रवीननि की मति जाति जकी।
समुझै कविता घनआनन्द की हिय आँखिन नेह की पीर तकी॥

प्रेम की अनेकों अवस्थाओं तथा मार्मिकता को घनानन्द ने अच्छी तरह समझा। उनका ज्ञान उनके प्रेम को उस उच्च चोटी पर ले जाता है जहाँ से संसार के अन्य लोगों की प्रेम भावना अत्यन्त ही उथली और अस्थिर प्रतीत होती है। यही मूल कारण है जिससे घनानन्द को हम उन रीतिबद्ध कवियों की भीड़ से अलग एक स्वच्छन्द प्रेमी कवि के रूप में ही देखते हैं।

घनानन्द की भक्ति एवं सम्प्रदाय

विभिन्न मत—

महाकवि घनानन्द के मत एवं सम्प्रदाय के विषय में अभी तक अधिक खोज नहीं हुई। प्रारम्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके सम्प्रदाय के विषय में अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास, में लिखा था—'इस पर इनको विराग उत्पन्न होगया और ये वृन्दावन जाकर निंबार्क-सम्प्रदाय के वैष्णव होगये और वहीं पूर्ण विरक्त भाव से रहने लगे।' उन्होंने अपने इस कथन के आधार में घनानन्द का एक कवित्त भी उद्धृत किया है जिसमें उनका वृन्दावन भूमि के प्रति जो प्रेम था उसकी झाँकी मिलती है—

गुरनि बतायो, राधा मोहन हू गायो,
सदा सुखद सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहिरे।
अद्‌भुत अभूत महि मडन परे ते परे,
जीवन को लाहु हा हा क्यों न ताहि लहिरे॥
आनन्द को घन छायो रहत निरन्तर ही
सरस सुदेय सो, पपीहा पन बहिरे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै परि रहि रे॥

किन्तु अपने उपर्युक्त कथन के पश्चात शुक्ल जी ने वहीं पर आगे के पृष्ठ में इस प्रकार कहा है—

'इन्होंने अपनी कविताओं में बराबर सुजान को सम्बोधन किया है जो शृङ्गार में नायक के लिये और भक्ति भाव में कृष्ण भगवान के लिये प्रयुक्त मानना चाहिये। कहते हैं कि इन्हें अपनी पूर्व प्रेयसी सुजान का नाम इतना

प्रिय था कि विरक्त होने पर भी इन्होंने इसे नहीं छोड़ा। यद्यपि अपने पिछले जीवन में घनानन्द विरक्त भक्त के रूप में वृन्दावन जा रहे पर इनकी अधिकाँश कविता भक्तिकाव्य की कोटि में नहीं आयेगी शृङ्गार की ही कही जायेगी। लौकिक प्रेम की दीक्षा पाकर ही ये पीछे भगवत्प्रेम में लीन हुये।[1] प्रथम शुक्ल जी ने इनको निम्बार्क मतानुयायी कहा और साथ ही यह भी कहा कि इनको विराग होगया किन्तु बाद में कहते हैं कि उनकी कविता भक्त कवियों की कोटि में नहीं आयेगी। साथ ही यह भी कहते हैं कि सुजान का लौकिक नाम ही उनके इष्टदेव के रूप में व्यवहृत होने लगा। अब प्रश्न उठता है कि जो आदमी अपने लौकिक प्रेम के आधार पर ही अपने इष्टदेव की पूजा में रत हुआ हो तो उनको विरक्त भक्त कैसे माना जा सकता है? भक्त को लौकिक सुख और दुःख की क्या चिन्ता?

वियोगी हरि के एक छप्पय में इनको वैष्णवभक्त कहा गया है किंतु उन्होंने यह नहीं कहा कि यह निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे अथवा किसी और वैष्णव सम्प्रदाय के :—

> बादशाह ने कोपि राज्य ते याहि निकारयो।
> वृन्दावन में आय वेष वैष्णव को धारयो।
> प्यारे मीत सुजान सों नेह लगायो।
> लगन बान तें विध्यो विरह-रस मन जगायो।

लाला भगवानदीन जी ने भी इनको निम्बार्क सम्प्रदाय का नहीं बताया। इन्होंने इनकी विरक्ति का कारण इनका रासलीला के प्रति प्रेम था—"इस रास की भावना का इन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि ये श्रीकृष्ण की लीला में न रहने के लिये दरबार तथा गृहस्थी से नाता तोड़ वृन्दावन चले आये और वहाँ किसी व्यास वंश के गुरु से दीक्षा ले ये किसी उपासना में मग्न और दृढ़ हो गये।'

दीन जी के वचनानुसार इस बात का पता नहीं लगता कि घनानद किस प्रकार के वैष्णव थे। उन्होंने स्पष्ट न होने के कारण ठीक लिखा है—"कि ये

किसी उपासना में दृढ़ और मग्न हो गये।' यह उपासना क्या थी इसका पता उनको ठीक नहीं लगा।

श्री शंभुप्रसाद बहुगुना ने घनानंद की भक्ति-भावना को एक मोड़ देकर अपना नया दृष्टिकोण उपस्थित करने का प्रयत्न किया—"घनानंद को यदि हम वैष्णव भावनाओं से प्रभावित हुआ भी पाते हैं किन्तु इसमें संदेह नहीं कि वे मूलतः रहस्योन्मुखी प्रेम-काव्य के कवि हैं और सूफी तथा निर्गुण-प्रेमी कवियों के अन्तर्गत मीरा की भाँति आते हैं। मीरा जिस प्रकार बाह्य रूप से परम वैष्णव सगुण भावना की दिखलाई देती है किन्तु उसका प्रेम रहस्योन्मुखी अनन्त सत्ता-जिसे वह प्रिय गिरधर गोपाल, प्रभु आदि आदि शब्दों से सम्बन्धित करती है—की विरह वेदना की विकलता की साक्षी है, उसी भाँति घनानन्द चाहे कृष्ण के तथा राधा के सगुण रूप का, उनकी कृपा का उनकी लीलाओं का सजीव और प्राणों को प्रसन्न कर देने वाला गुण गान करते हैं, परन्तु प्रधानता उनमें उस विरह भावना की मर्मस्पर्शी विकलता की है जो जायसी, इमामशाह, कबीर, मीरा, दादू, नानक, बाबा लालदास, सरमद आदि प्रेममार्गी सन्तो में पाई जाती है। इसलिये घनानन्द का काव्य रसखान, सूर तुलसी, वैष्णवधारा के कवियों से उतना मेल नहीं खाता जितना प्रेम रहस्योन्मुखी सन्तों की विरह वाणियों से।"

किन्तु आगे चलकर श्री शंभुप्रसाद बहुगुना घनानन्द को फिर वैष्णव कवियों के समकक्ष भी देखने लगते हैं। अभी ऊपर रहस्योन्मुख सन्तों की परंपरा में उनका स्थान निर्धारित करने के पश्चात् ही उनकी विचारधारा फिर पलटकर उनकी रचनाओं पर जाती है और वह घनानन्द का स्थान पूर्व निर्धारित परम्परा में न रखकर वैष्णवों की परम्परा में रख देते हैं—'घनानन्द ने सम्भवतः निर्गुण प्रेम भावना के कवियों, सन्तों तथा सगुण रूपस्थ परम्परा के भक्तों के जीवन के तात्विक भेद को अपने लिये स्वयं दोनों प्रकार का जीवन बिताकर देख-समझ लिया था और इसीलिये आगे चलकर सम्भवतः वे रहस्यवादी प्रेमी-कवियों, सन्तों की भावना से हटकर सगुण रसवादी वैष्णवों की परंपरा में आ जाते हैं।" इस प्रकार श्री बहुगुनाजी इनको कभी रहस्यवादी प्रेममार्गी सन्तो में देखते हैं तो कभी इस आधार पर कि उन्होंने रहस्योन्मुखी

भावना के तत्वों को भी देखा और वैष्णव भक्तों की सगुण भावना को भी किन्तु बाद में उन पर वैष्णव भावना का प्रभाव पड़ा और वह वैष्णव कवियों की परम्परा में आ गये। बहुगुनाजीकी इस पहुँच का क्या आधार है! इसका उन्होंने कोई प्रमाण देना भी उचित नहीं समझा। किंतु बिना आधार के इतने बड़े कवि के विषय में यह कैसे अनुमान लगा सकते हैं कि वह रंग बदलते रहते थे।

श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने स्वच्छन्द कवियों के विषय में अपना मत देते हुए केवल इतना सकेत किया—"स्वच्छन्द कवियों में सूफियों के सम्पर्क और प्रभाव के कारण कहीं-कहीं रहस्य की झलक भर मिलती है। अपनी भावना में मेल खाती हुई इन कवियों की वृत्ति कृष्ण-भक्ति-भावना में लीन हुई। बात यह थी कि इन कवियों में से कई अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रेम की एकनिष्ठता के उपासक हुये। प्रिय की ओर से प्रेम की स्वीकृति उचित परिमाण में न पाकर, या उसमें किसी प्रकार की लौकिक बाधा उत्पन्न हो जाने के कारण ये ससार से विरक्त हो गये। ऐसी दशा में उनके लिये दो ही मार्ग थे। या तो ये निर्गुण सम्प्रदाय का अनुगमन करते या सगुण सम्प्रदाय में दीक्षित होते। निर्गुण में रूप की योजना न होने के कारण उसकी उपासना इनके चित्त के लिये अभिमत नहीं हो सकती थी, अतः इन्होंने सगुण में अपनी स्वच्छन्द वृत्ति लीन की। रसखान और घनानन्द दोनों ने ही प्रेममार्ग या भक्तिमार्ग की इस विशेषता का उत्कीर्तन किया है।" मिश्र जी ने इस प्रकार घनानन्द को प्रेमाभक्ति में लीन कवि के रूप में ही ग्रहण किया है। उन्होंने इस मत की पुष्टि के लिये घनानन्द का निम्नलिखित कवित्त उद्धृत किया है—

> ज्ञान हूतें आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
> रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै।
> जान 'घनआनँद' अनोखो यह प्रेम-पन्थ,
> भूले ते चलत रहैं सुधि के थकित ह्वै॥

प्रेम के पन्थ से प्रभावित होकर ही घनानन्द ने कृष्ण भक्ति को स्वीकार

किया। मिश्रजी का कथन है—'उन्हें शुद्ध भक्त न मानकर प्रेमोन्मत्त के कवि ही मानने का वास्तविक कारण यही है। रीतिबद्ध बिहारी निम्बार्क (राधा-तत्व प्रधान) सम्प्रदाय में ही दीक्षित थे। अपनी सतसई में राधा से बाधाहरण करने की प्रार्थना करके उन्होंने अपना सम्प्रदाय व्यक्त कर दिया है पर ये भक्तों की श्रेणी में नहीं बैठाये गये। इसका कारण यही है कि उनकी रचना भक्त-कवियों की सी नहीं है। घनआनन्द ने अन्त में भक्ति सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली थी। पर लौकिक प्रेम का सुजान नाम वे न भूल सके।'

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने शुक्लजी के मत को ही व्यापकता प्रदान की है। शुक्लजी ने जो यह कहा था कि घनानन्द निम्बार्क मत में दीक्षित थे इसको भी श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी कहा है और अन्त में उनका कथन यही है कि यह फिर भी भक्त कवियों की कोटि में नहीं आ सकते क्यों कि इनकी रचना भक्तों की सी नहीं।

भक्तकवियों की विशेषता—घनआनन्द भक्त कवि थे अथवा रहस्योन्मुख प्रेम कवि थे इस विषय पर विचार करने से पूर्व हमको भक्त कवियों की विशेषताओं पर ध्यान देना आवश्यक है। क्योंकि घनानन्द की कविता में राधा-कृष्ण की लीलाओं अथवा गुणगानों को अधिक महत्व दिया गया है इसलिये ऐसे ही कवि को देखना चाहिये जो कि कृष्ण भक्त कवि मान्य हो। यदि इस दृष्टि से हम कृष्ण भक्त कवियों पर दृष्टिपात करते हैं तो उनमें महाकवि सूरदास ऐसे कवि हैं जिन्हें हम भक्त कवि के रूप में मानते हैं। उनके ऊपर वैष्णवधर्मका पूर्ण प्रभाव था। उनकी रचनाओं में वैष्णवधर्म के आचार्य वल्लभ के सिद्धान्तों को स्थान दिया गया है। सूर ने कृष्ण की लीलाओं को अपने सम्प्रदाय के नियमानुसार ही वर्णित किया है। किन्तु फिर भी कवि और कोरे भक्त में पर्याप्त अन्तर पड़ता है। भक्त को केवल उन दार्शनिक सिद्धान्तों को लेकर चलना पड़ता है जो कि उसके सम्प्रदाय के आचार्यों ने आवश्यक बताये हैं और कवि तो कल्पना के आधार पर ही उन सिद्धांतों को अपने काव्य में स्थान देता है। इसलिये उनके वास्तविक रूप में अन्तर पड़ जाता है। यही बात है कि सूर की रचनाओं में वल्लभ के सम्प्रदाय के नियम व सिद्धान्तों की भी अवहेलना हो गई है।

वैष्णव धर्मावलम्बियों की भक्ति के प्रकार

"नारद भक्ति सूत्र" में ईश्वर भक्ति के जो प्रकार बताये हैं वह निम्न लिखित हैं—

१—गुण महात्म्यासक्ति, २—रूपासक्ति, ३—पूजासक्ति, ४—स्मरणासक्ति, ५—दास्यासक्ति, ६—सख्यासक्ति, ७—कान्तासक्ति, ८—वात्सल्यासक्ति, ९—आत्मनिवेदनासक्ति और १०—परम विरहासक्ति।

उपर्युक्त प्रकारों में ही वैष्णव आचार्यों ने अपनी भक्ति का प्रचार किया। निम्बार्क और मध्वाचार्य ने राधा की भक्ति को महत्व दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि भक्ति के क्षेत्र में माधुर्यभाव को प्रश्रय किया गया। किन्तु निम्बार्काचार्य एक दर्शन को लेकर चले थे। इस कारण उनके द्वारा बताया हुआ माधुर्य भाव सफल था। बल्लभ ने भी माधुर्य और प्रेम को भक्ति का चरमोत्कर्ष सिद्ध किया। इनके द्वारा प्रेमलक्षणा भक्ति को ही प्रमुख माना तथा गोपियों को जीव या आत्मा का रूपक मानकर उनको परमात्मा के वियोग में व्यथित होकर ही उसके सच्चे प्रेम की अधिकारिणी कहा। बल्लभ की प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रचार सूरदास और नन्ददास आदि कवियों ने अपनी प्रेम से सिक्त रचनाओं के द्वारा किया। उन्होंने कृष्ण की उपासना में 'नारद भक्ति सूत्र' में वर्णित सभी प्रकारों को अपनाया। कृष्ण और राधा के रूप सौन्दर्य की प्रतिष्ठापना के कारण ही भक्ति में शृङ्गार की प्रचुरता हुई। कृष्ण की लीलाओं के कारण गोपियों और राधा आदि को भी उनके साथ प्रमुख स्थान मिला। आगे सखी सम्प्रदाय में जाकर भक्त प्रेयसी के रूप में ही ईश्वर की आराधना करने लगा इसी का परिणाम था कि कृष्ण भक्ति में परकीया को अधिक महत्व मिला।

कृष्णभक्ति में दार्शनिक आधार के कारण विरह को प्रधानता मिली। सम्पूर्ण कवियों ने कृष्ण से गोपियों का वियोग करके उनके हृदय की भावनाओं को व्यक्त कर कृष्ण साहित्य को महान गौरव प्रदान किया।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूरदास ने अपने धार्मिक सिद्धान्तों को बल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग के आधार पर ही प्रदर्शित किया और कथानक का आधार

भागवत को बनाया किन्तु जो उन्होंने राधा को इतना महत्व दिया वह उनकी अपनी खोज थी। किन्तु उनकी राधा स्वकीया नायिका ही थी वल्लभ और भागवत दोनों में राधा का कहीं नाम नहीं था। सूरदास की राधा पर निम्बार्क, जयदेव और विद्यापति का प्रभाव है। सूर में जो शृङ्गार का गहरा रंग है वह इस बात को स्पष्ट करता है—

'नीवी ललित गही हरि राई।
जबहि सरोज धरो श्रीफल तन जसुमति गई आई॥'

चैतन्य की प्रेमासक्ति भी शृङ्गार से ही प्रभावित थी। विद्यापति के अनेक पद चैतन्य सम्प्रदाय के अनुकूल थे इसलिए उन पदों का प्रचार बंगाल में ही नहीं ब्रज में भी होगया। सूर में जो शृङ्गार के नग्न चित्र हैं उनका प्रभाव कृष्णभक्ति शाखा के परवर्त्ती कवियों पर भी पड़ा। अष्टछाप के कवि परमानन्द दास ने भी राधा के विषय में अत्यन्त ही शृङ्गारिक पद लिखा है—

राधेजू हारावलि टूटी।
उरज कमल दल माल मरगजी, बाम कपोल अलक लट छूटी॥
× × ×
× × ×
आलस वलित नैन अनियारे, अरुन उनींदे रजनी खूटी।
परमानन्द प्रभु सुरत समय रस मदन नृपति की सेना लूटी॥

उपर्युक्त भक्त कवियों ने जो भाव व्यक्त किये हैं वह विद्यापति के घोर शृङ्गारी पदों से किसी प्रकार कम नहीं। इन्हीं शृङ्गारिक पदों के आधार पर कहा जाता है कि सूर आदि कवि केवल अपने सम्प्रदाय विशेष के दार्शनिक सिद्धान्त के प्रतिपादन में ही नहीं रहे वरन् उन्होंने अपने स्वतन्त्र विचारों को भी अपने काव्य में रखा। इसी प्रकार यदि घनानन्द के काव्य को भी इस दृष्टि से देखा जाय तो उसमें केवल निम्बार्क मत का ही प्रतिपादन नहीं किया वरन् अनेक सम्प्रदायों के उन तत्वों को उन्होंने अपना लिया जो कि उनकी प्रेममय अभिव्यक्ति में सहायक हो सकते थे।

घनानन्द पर अन्य प्रभाव

ऊपर हम कह चुके हैं कि विभिन्न विद्वानों ने घनानन्द के भक्ति सम्प्रदाय के विषय में अपने-अपने मतों का प्रदर्शन किया है। शुक्लजी ने उनको निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित किया किन्तु फिर भी भक्त कवि नहीं माना। इसी प्रकार का मत वियोगीहरि का भी है। दीनजी किसीभी निश्चय पर नहीं पहुंच सके। श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना ने उनको रहस्योन्मुख प्रेम मार्गी सन्तों में स्थान दिया लेकिन इन सम्पूर्ण मतों में मान्यता उसी मत को मिल सकती है जो किसी तथ्य के आधार पर हो। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने श्री प० रामचन्द्र शुक्ल के मत को ही माना है। उनके कथन में कुछ सत्य भी है क्योंकि उन्होंने किसी सम्प्रदाय विशेष पर अधिक जोर न देकर इनको प्रेमोमङ्ग का कवि कहा है। वास्तव में घनानन्द ने भी, भक्ति की किसी एक परम्परा को नहीं अपनाया। इनके काव्य में राधा-कृष्ण की अनेकों लीलाओं का वर्णन है—कहीं भूला भूलते, कहीं विहार करते, कहीं विनोद और अन्य किसी क्रीड़ा में रत। घनानन्द ने यमुना, व्रजभूमि, गोवर्धन आदि अनेक स्थानों को भी अपने काव्य में वर्णित करके अपने व्रजभूमि के प्रति प्रेम को प्रदर्शित किया है। बंशी की महिमा को भी घनानन्द ने अनेक स्थानों पर उसी प्रकार वर्णित किया है जिस प्रकार सूरदासजी ने अपने काव्य में स्थान दिया। घनानन्द की पदावली को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें उन्होंने अन्य भक्त कवियों का अनुकरण किया है। जिस प्रकार हित-वृन्दावन आदि कवियों ने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को अपने काव्य में वर्णित किया है इस प्रकार का कोई भी प्रतिबन्ध घनानन्द के काव्य पर नहीं रहा। इनके काव्य की मुख्य धारा प्रेम है और उस प्रेम की पुष्टि के लिये ही इन्होंने अपने से पूर्ववर्ती उन सम्पूर्ण काव्य-परम्पराओं को अपनाया जो कि उनकी प्रेम व्यञ्जना में सहायक हो सकती थीं। घनानन्द ने अपने भग्न हृदय का सम्बल, राधा और कृष्ण को बताया, किन्तु उनके हृदय से सुजान की मूर्ति सदा रही। कृष्ण को भी उन्होंने अपनी प्रेमिका के नाम से ही विभूषित कर दिया। इसलिये यह कहना सरल नहीं कि घनानन्द किस प्रकार की भक्ति-पद्धति में विश्वास करते थे।

घनानन्द के काव्य को देखने से स्पष्ट है कि उन पर पूर्ववर्ती परम्पराओं

का पूर्ण प्रभाव था। सूफी सन्तों का प्रभाव उनकी रचनाओं में मिलता है। इसके अतिरिक्त निर्गुण-धारा का प्रभाव भी कहीं-कहीं पर है। कृष्णभक्त कवियों ने तो इनको अपने रग में ही रँग लिया। रीतिकालीन शृङ्गारिक भावना भी इनके काव्य में कहीं-कहीं पर बड़ी प्रखरता के साथ है। कारण यह था कि इन्होंने अपने प्रेम के चित्र को प्रखरता देने के लिये ही उन सम्पूर्ण तत्वों को अपने काव्य में स्थान दिया।

वैष्णवों में कृष्ण के लोक-रजक रूप को ही अपनाया गया था। राधा की उपासना इन वैष्णव आचार्यों में निम्बार्काचार्य और मध्वाचार्य ने ही अपनाई थी। सम्भवतः घनानन्द ने जो राधा की उपासना और महत्ता का प्रतिपादन किया है वह निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रभाव के कारण ही किया हो। किन्तु उनकी अन्य रचनाओं में कृष्ण की लीलाओं को जो प्रमुखता दी है वह सब सूरदास आदि वल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियों की सी ही प्रतीत होती है। इसलिये यह विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता कि इनके ऊपर केवल निम्बार्क सम्प्रदाय का ही प्रभाव था।

सूफीमत और घनानन्द—कुछ लोगों का कथन है कि घनानन्द ने सूफियों के प्रेम की पीर को भी अपने काव्य में स्थान दिया। सूफियों में प्रेम की पीर को अधिक महत्व दिया गया है तथा सूफियों के काव्य में विरह को भी प्रमुख स्थान दिया गया है। कुतुबन, जायसी और मझन आदि कवियों की रचनाओं में प्रेम की कसक आदि से लेकर अन्त तक चलती है। नागमती के विरह-वर्णन में जायसी ने जिस प्रेम को व्यजित किया है वह अपनी समानता नहीं रखता। सूफियों के मतानुसार सम्पूर्ण सृष्टि उस अनन्त प्रिय के वियोग मे रो रही है। घनानन्द के काव्य में भी इस सूफी पीर की झलक अनेक स्थानों पर है किन्तु अन्तर केवल यही है कि जहाँ सूफियो ने उस अज्ञात सत्ता का आवरण डालकर उसे रहस्योन्मुख बनाया है वहाँ घनानन्द के काव्य में केवल अपने हृदय की वेदनाओं को प्रखर रूप देने के लिये ही उस पद्धति को अपनाया है। सूफियों में लौकिक प्रेम के द्वारा ही आध्यात्मिक प्रेम की प्राप्ति मानी है। जायसी की 'पदमावत' में लौकिक कथा को ही पारलौकिक प्रेम के लिये चुना है। सयोग और वियोग दोनो वर्णनों में कवि उस अनन्त सत्ता की ओर सकेत

करता चलता है तथा उस आध्यात्मिक स्वरूप की झलक देखता है। जायसी ने लौकिक प्रेम को वर्णन करते-करते उसका सम्बन्ध आध्यात्मिक प्रेम से अनेक स्थलों पर जोड़ा है—

विरह के आगि सूर जरि काँपा। रातिहु दिवस जरहि उहि तापा ॥
अगिन उठी जरि उठी निआना। धुँआ उठा उठि बीच बिलाना।
पानि उठा उठि जाइ न छूआ। बहुरा गेइ, आइ भुइ चूआ ॥

इसी प्रकार लौकिक सौन्दर्य का वर्णन करते-करते कवि पारलौकिक सौंदर्य को पदमावत में कई स्थानों पर देखता है।

उन्ह बानन अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा ॥
गगन नखत जो जाहि न गनै। वै सब बान ओहिके हनै ॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी ॥

सृष्टि के पदार्थों का कार्य भी सब उस अनन्त के सौन्दर्य के समागम के लिये ही है—

पुहुप सुगन्ध करहि एहि आसा।
मकु हिरकाइ लेइ हन्ह पासा ॥

किन्तु घनानन्द ने इस प्रकार प्रेम का व्यापक रूप अपनी रचना में नहीं देखा। वह तो केवल लौकिक प्रेम को कृष्ण के ऊपर न्यौछावर कर चुके थे। इसलिये यह कहना भी न्यायसगत नहीं होगा कि घनानन्द का काव्य पूर्णरूपेण सूफियों की परम्परा में है। बस इतना ही कहा जा सकता है कि उनके ऊपर सूफियों का आंशिक प्रभाव अगर हो तो आश्चर्य नहीं। वह भी केवल इस कारण कि उन्होंने लौकिक प्रेम करते हुये कृष्ण की ओर भी संकेत किया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूफियों में परमात्मा को पति और आत्मा को पत्नी माना गया है। इसलिये उनकी उपासना में पति-पत्नी भाव के कारण शृङ्गार को अधिक महत्व दिया गया। कृष्ण भक्तोंमें जो इस प्रकार की भावना

है सम्भवतः उस पर सूफियों के मादनभाव का प्रभाव नहीं। भारतीय भक्तों में जो माधुर्य भाव आया वह भी सूफियों के मादनभाव से भिन्न है। श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने 'तसव्वुफ अथवा सूफीमत' नामक पुस्तक में इस भिन्नता को अत्यन्त स्पष्ट रूप से दिखाया है—"भारतीय माधुर्यभाव का आलम्बन व्यक्त भगवान है। उसकी अलौकिक सत्ता हमारा उद्धार करती है और लौकिक हमें बराबर अपनी ओर खींचती रहती है। हम अपने आप को रति का अवतार समझते हैं काम का नहीं। सूफी इस विषयमें हमसे प्रतिकूल हैं। उनकी भक्ति का आधार मदन अथवा काम है रति नहीं। ......काम अमृत है तो रति आनन्द है और दोनों ही ब्रह्म के दो रूप हैं। माधुर्यभाव में रति काम को चाहती है तो मादनभाव में काम रति का पीछा करता है। एक मधुर, कोमल और मन्द है तो दूसरा उन्मत्त, भीषण और उग्र।"

उपर्युक्त उद्धरण से भारतीय प्रेम-पद्धति और सूफी प्रेम-पद्धति का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। भारतीय भक्त आनन्द का इच्छुक है किन्तु सूफी भक्त उस अनन्त के साथ समोग की लालसा रखता है।

घनानन्द का प्रेम मूलतः भारतीय पद्धति पर ही आधारित था। उनको प्रियतम के समागम की ललक उतनी नहीं जितनी कि उसके प्रेम को अनुभव करने की है। इसलिये उन्होंने प्रेम के पन्थ को ज्ञान से भी ऊपर माना है—

ज्ञान हू ते आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामें भोगी भोग जातव्है।
जान घन-आनँद अनोखो यह प्रेम पन्थ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित है॥

घनानन्द के विरह वर्णन को भी सूफियोंके प्रभाव का परिणाम कहा जाता है किन्तु यह भी उचित नहीं। उनका विरह भी शुद्ध भारतीय परम्परा पर ही आधारित है। सूफियों से प्रथम भी भारतीय साहित्य में विरह की प्रधानता थी। वरन् यह कहें तो अत्युक्ति न होगी कि भारतीय काव्य प्रणेताओं ने विरह को जो महत्व दिया वह संयोग को नहीं। उधर धार्मिक क्षेत्र में आत्मा को परमात्मा का विरहिणी मानकर वैष्णव आचार्यों ने जनता को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित

किया। कृष्ण भक्तों के अन्दर आकर जो विरह का रूप परिलक्षित हुआ वह वैष्णव आचार्यों का प्रभाव था। सूरदास आदि कवियों ने उस विरह को अपने काव्य में अधिक महत्त्व दिया। सम्पूर्ण कृष्णकाव्य विरहिणी आत्मा (गोपियों) का ही रुदन है। सूर की गोपियाँ अपने प्रिय के वियोग में आँसुओं की धारा बहा चुकी थीं उसका प्रभाव घनानन्द के विरह व्यथित हृदय पर भी पड़ा। इसलिये यह कहना कि सूफियों की विरह वर्णन की पद्धति को अपनाकर ही घनानन्द ने अपने काव्य में विरह को इतना प्रमुख स्थान दिया न्यायोचित नहीं।

सूफियों का प्रभाव पड़ा और वह केवल घनानन्द पर ही नहीं वरन् उनसे पूर्व के कृष्ण भक्त कवियों पर भी पड़ चुका था। किन्तु वह केवल इस कारण कि सूफियों की प्रेम-पद्धति में सामाजिक व्यवधान की कमी थी और वह एक ऐसी तड़पन को लेकर चला था जो उस समय के विलासप्रिय वातावरण के उपयुक्त था। नागरीदास आदि में इसके दर्शन होते हैं। घनानन्द ने भी इसी प्रकार सूफी प्रभाव में आकर कुछ रचनायें कीं। किन्तु उनके इतने बड़े काव्य को देखकर यह नगण्य ही है। 'वियोग बेलि' और 'इश्कलता' में यह प्रभाव परिलक्षित होता है—

लिखौं कैसे पियारे प्रेम पाती।
लगै अँसुअन झरी है टूक छाती॥

इसी प्रकार कटाक्षों का बाण हो जाना आदि प्रयोग भी सूफी प्रभाव को दिखाते हैं—

सलोनी स्याम मूरति फिरै आगे।
कटाछैं बान से उर आन लागे॥
मुकट की लटक हिय में आय हालै।
चितवनी बंक जियरा बीच सालै॥

किन्तु यहाँ पर भी शैली का प्रभाव है। फारसी काव्य में हृदय का टुकड़े-टुकड़े होना, माँस का गलजाना आदि वीभत्स दृश्यों को भी वर्णित किया

जाता है। जायसी ने भी इस प्रकार का प्रयोग अपने काव्य में किया है—

'बिरह सरागन्हि भूँजै माँसू'

'इश्कलता' में भी घनानंन्द पर कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है—

दीजे इनन् सीख सलोने साँवरे।
खून करैं ये नैन हुये लट्ट बावरे॥
खूनी कीये जाय करेजें घाव है।
आनँद-जीवन जान न और बचाव है

यदि घनानन्द के काव्य में इस प्रकार के स्थलों को देखा जाय तो वह बहुत कम हैं। वास्तव में घनानन्द एक प्रेमी थे और उनका प्रेम भी कुछ इतना घनीभूत होगया था कि उसे जिधर ही अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग मिला उधर ही उसकी धारा प्रवाहित हो चली। सूफियों की प्रेम पद्धति के दार्शनिक पक्ष से उनको कोई भी तात्पर्य नहीं था। उनको यदि उनकी शैली कहीं अच्छी लग गई तो उन्होंने उसको अपना लिया। इसलिये इन कतिपय उदाहरणों के द्वारा जो लोग उनमें सूफी प्रभाव की व्यापकता को ढूँढने का कष्ट करते हैं वह उनके साथ अन्याय और अपने समय का दुरुपयोग करते हैं। जहाँ तक उनकी प्रेम की पद्धति का प्रश्न है वह शुद्ध भारतीय ही है।

निर्गुण सन्तों का प्रभाव

कुछ विद्वानों ने घनानन्द की प्रेम-पद्धति को निर्गुण सन्तों की रहस्योन्मुख प्रेम-पद्धति से मिलाने का प्रयत्न किया है। श्री शम्भुप्रसाद जी के मत को हम ऊपर उद्धृत कर चुके हैं उनका कथन इसी प्रकार है। किंतु घनानन्द में निर्गुण तत्वों का ढूँढना भी हास्यास्पद प्रतीत होता है। उन्होंने कृष्ण और राधा के साकार रूप का ही वर्णन किया है। किन्तु रहस्योन्मुख कवियों में सगुण का कोई स्थान नहीं। उनके विरह को भी कबीर, दादू आदि सन्तों से प्रभावित बताया है। किन्तु हम ऊपर कह चुके हैं कि कृष्णोपासकों में यह विरह की तीव्रता वैष्णव आचार्यों के प्रभाव से ही आई थी। इसके अतिरिक्त जयदेव,

विद्यापति, चैतन्य और चंडीदास में भी इस विरह को प्रमुख स्थान सूफियों और निर्गुण सन्तों से पूर्व ही दिया जा चुका था। कबीर के ऊपर भी दक्षिण के आचार्यों का प्रभाव था। परमात्मा और आत्मा का विरह उन्होंने वेदान्त के प्रभाव से प्रभावित होकर ही लिया था। तुलसी जैसे सगुणोपासक भी निर्गुण से कुछ न कुछ इसीलिये ही प्रभावित हुए कि उन पर वेदान्त का प्रभाव था—

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निर्गुन कहै जो सगुन बिनु सो गुरु तुलसीदास॥

सूरदास ने भी कहा है कि निर्गुण अरूप है इसीलिये वह अगम्य और अगोचर है इसलिये ही सगुण ईश्वर की उपासना करता हूँ। इससे स्पष्ट है कि इन भक्तों के ऊपर वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म का प्रभाव था। वह उसे उपासना के लिये उपयुक्त न समझकर ही एक ऐसे आलम्बन को लेकर चले जिसको जनता सुगमता से अपना सके। राम और कृष्ण का रूप जनता में प्रचलित था। उनको अवतार के रूप में ग्रहण कर लिया गया। इसी प्रकार यदि घनानन्द के कतिपय पदों में निर्गुण ब्रह्म के विषय में कोई संकेत मिल जाता है तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि हम उनको कबीर और दादू की पंक्ति में खड़ा करके देखने लगें। यदि उन्होंने इस प्रकार के कुछ पद लिखे हैं तो वह वेदान्त दर्शन के प्रभाव के कारण जिसमें ब्रह्म को निराकार माना है। घनानन्द के काव्य में इस प्रकार के पदों की न्यूनता ही है। यदि कहीं पर उन्होंने निर्गुण के विषय में कहा है तो इस प्रकार की कुछ उक्तियाँ बिहारी और देव में भी हैं किन्तु उनका सम्बन्ध कबीरी रहस्यवादियों से नहीं लगाया गया। बिहारी ने निराकार ब्रह्म के विषय में कहा है—

जगतु जनायौ जिहिं सकल सो हरि जान्यौ नाहिं।
ज्यौं आँखिन सब देखियत आँखि न देखी जाँहि॥
बुधि अनुमान प्रमान श्रुति किए नीति ठहराँय।
सूछम कटि परब्रह्म की अलख, लखी नहिं जाय॥
दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन बिस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि चंग रंग भूपाल॥

किंतु उपर्युक्त दोहों के आधार पर ही महाकवि बिहारी को यदि निर्गुणोपासक भक्तों की श्रेणी में रख दिया जाय तो यह उचित नहीं। किसी भी कवि को उस समय तक किसी सम्प्रदाय विशेष का नहीं बताया जा सकता जब तक उसकी रचना में उस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को प्रचुर रूप में न अपनाया गया हो। बिहारी का अधिकतर काव्य शृङ्गार के चित्रों को ही प्रस्तुत करता है। इसलिये उनके कुछ पदों के आधार पर उन्हें निर्गुणोपासक नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार घनानन्द में यदि हम ध्यान से खोजने पर कुछ पद पा जाते हैं तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह निर्गुणोपासक भक्त थे। कुछ विद्वानों ने घनानन्द के इस पद के द्वारा ही उनको निर्गुण सम्प्रदाय का बना दिया है और उनके प्रेम को रहस्योन्मुख बतलाया जाता है—

आयु जो वायु तो धूरि सबै सुखजीवन मूरि सम्हारत क्यों नहीं।
वाहि महागति तोहि कहा गति बैठे बनेगी बिचारत क्यों नहीं॥
नैमिनि संग फिर्‌यौ भटक्यौ पल मूँदि सरूप निहारत क्यों नहीं।
स्याम-सुजान-कृपा घनआनँद प्रान-पपीहनि पारति क्यों नहीं॥

किन्तु केवल इसी सवैये के आधार पर हम उसको यदि निर्गुणोपासक कहने लगें तो हमारी बुद्धि पर अन्य लोगों को आश्चर्य अवश्य होगा। इस सवैये में कवि ने निराकार को उसी प्रकार स्मरण किया है जिस प्रकार सूर तथा बहुत से रीतिकालीन कवियों ने भी किया है। पुराणों के प्रभाव से ब्रह्म का अवतार रूप में प्रकट होना भारतीय भक्तों में ही नहीं वरन् साधारण लोगों में भी मान्य हो चुका था। आज भी रामायण का पाठ करने वाले बहुत से ग्रामीण इस बात को जानते हैं कि ब्रह्म निराकार है किन्तु भक्तों के दुखों को दूर करने को वह अवतार लेकर इस जगत में रहता है। फिर घनानन्द तो एक विद्वान पुरुष थे। अनेक महात्माओं और सन्तों का समागम भी वह करते ही रहते थे। इसलिये यदि उन्होंने निराकार ब्रह्म का नाम लिया तो उसका तात्पर्य यह नहीं कि वे निर्गुण सन्तों की परम्परा में बैठा दिये जायँ। वास्तव में सुजान के लौकिक प्रेम की असफलता के कारण ही उन्होंने कृष्ण जैसे अलौकिक आलम्बन के प्रति अपने प्रेम को परिवर्तित करके अपने

राधा को घनानन्द ने अपनी उपासना का केन्द्र भी कई स्थानों पर बनाया है—

'आछी तानिनि गाय रिझाऊँ । रीझि रीझि राधाहिं रिझाऊँ ॥'

ब्रज की सम्पूर्ण वनस्पति भी राधा और कृष्ण की शोभा को पाकर नया नया रूप धारण करती है—

बन सपति दपति मई नई नई नित जोति ।
कृष्ण राधिका रूप तें, जगमग जगमग होति ॥

यमुना की महत्ता भी इसीलिये है कि यह राधा के अङ्गों का स्पर्श करती है—

राधा को रस जमुना जानै । भानु नदनी नातो मानै ।
जमुना हृदय रहत नित राधा । जमुना लखे टरै भ्रम बाधा ॥

घनानन्द ने राधा की वन्दना भी अनेक स्थानों पर की है जिससे यह प्रतीत होता है कि यह निम्बार्क मतानुयायी ही होंगे—

ऐसी रूप अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे ।
तेरे मिलिबे कों ब्रजमोहन बहुत जतन हैं साधे ॥
उनकें निसिदिन लगी रहै जक तू न परति पल आधे ।
आनन्द-घन पिय चातक चौंपनि हा राधे आराधे ॥

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर राधा की वन्दना कवि अत्यन्त भक्तिभाव से करता है—

'राधिका-चरन बन्दन करि बखानौं'

किन्तु केवल कुछ पदों के आधार पर इनको निम्बार्क मतानुयायी नहीं माना जा सकता । इनके अधिकतर कवित्त और सवैये उनकी शृङ्गारिक भावना के ही प्रतीक हैं ।

राधा का रीतिकालीन रूप:—

जिस राधा को कवि ने अपनी आराध्य देवी के रूप में वर्णित किया था उसी को वह एक सामान्य नायिका के समान भी वर्णित करने लगता है । एक

भक्त कवि कभी भी अपनी हृदय प्रतिमा के प्रति इस प्रकार के भाव व्यक्त नहीं करेगा। सूरदास आदि कृष्ण भक्त कवियों में राधा के प्रति शृङ्गार की भावना कहीं कहीं पर आई है किन्तु वहाँ पर उन कवियों ने दर्शन का आधार ले लिया है और इस प्रकार उन पर अश्लीलता का दोष नहीं लगा। किन्तु घनानन्द ने अपने काव्य में जो सम्भोग का वर्णन किया है वह नितान्त लौकिक है। वह केवल कवि की शृङ्गारिक भावना को ही व्यक्त करता है। इस प्रकार की अनेक रचनायें प्रस्तुत की जा सकती है। राधा और कृष्ण के संभोग सुख का एक चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है। वह ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि ने रीतिकालीन प्रभाव के परिणाम स्वरूप ही उसे चित्रित किया है—

> सोए हैं अङ्गनि अङ्ग समोए सु भोए अनङ्ग के रङ्ग निर्थों करि।
> केलि कला रस आरस आसव पान छकै घन-आनन्द यों करि॥
> प्रेम निशा मधि रागत पागत लागत अगनि जागत ज्यों करि।
> ऐसे सुजान विलास निधान हौ सोए जगे कहि ब्योरिये क्यों करि॥

इस प्रकार के अनेकों वर्णन उनकी काव्य कृति में भरे पड़े हैं। साथ ही कुछ इस प्रकार वर्णन भी है जिन की शृङ्गारिक भावना सूरदास, नन्ददास आदि कवियों की कोटि की है।

इन दोनों प्रकारों को यदि ध्यान पूर्वक देखा जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि घनानन्द सूरदास के समान कृष्ण और राधा की लीलाओं को लेकर ही अपने काव्य में नहीं चले वरन् कहीं कहीं पर लौकिक प्रेम को ही उन्होंने स्पष्ट रूप से वर्णित किया है। भक्त कवि कभी अपनी राधिका को इस निम्न स्तर नहीं उतार सकता। इससे स्पष्ट है कि घनानन्द पर अपने काल का भी कुछ प्रभाव था जिससे उनको बचना असम्भव था। उनके काव्य में राधा को खंडिता नायिका भी बना दिया है जो एक भक्त कवि के लिये उचित नहीं था।

इसके अतिरिक्त उनके सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'सुजान सागर' में जो उनकी भावना व्यक्त हुई है। उनमें लौकिक प्रेम को ही अधिक महत्व दिया है। केवल कृष्ण को उनके द्वारा दिया हुआ सुजान नाम अवश्य कई स्थानों पर आया है। भक्त कवियों के प्रत्येक पद में 'प्रभु' 'भगवान' आदि शब्दों के द्वारा

ईश्वर को संबोधित किया गया है । सूरदास के तो प्रत्येक पद में कृष्ण का स्मरण साथ २ होता चलता है किन्तु घनानन्द के काव्य में अधिकतर सुजान के नाम को ही महत्व दिया गया । कहीं पर तो कवि ने चेष्टाओं का ही वर्णन किया है—

> मन उनमाद स्वाद मदन के मतवारे,
> केलि के अवारि लौं सवारि सुख सोये हैं ।
> भुजनि उसी सो धारि अन्तर निवारि जानु,
> जघन- सुधारि तन मन ज्यों समोए हैं ।
> सुपने सुरति पार्गे महाचोप अनुरागें,
> सोयें हू सुजान जागें ऐसे भाव मोए हैं ।
> छूटे मार टूटे हार आनन अपार शोभा,
> भरे रस सार घन आनन्द अहोए हैं ॥

घनानन्द में भक्ति के तत्वों की न्यूनता थी और शृङ्गार की भावना का प्राधान्य था । उनके काव्य में केवल पदावली और कुछ अन्य रचनाओं में ही उन्होंने भक्ति का समावेश किया है अन्यथा उनके काव्य का एक बड़ा भाग शृङ्गार और प्रेम की ही अभिव्यक्ति है ।

कृष्ण भक्तों का प्रभावः—घनानद की भक्ति-पद्धति को विद्वानों ने कृष्ण भक्त कवियों से प्रभावित कहा है उसमें किसी को सदेह नहीं होना चाहिये क्योंकि कृष्ण और राधा को ही घनानन्द ने अपने काव्य में अधिक स्थान दिया किन्तु साथ ही उन की भक्ति-पद्धति के आधार पर निम्बार्क मत से जोड़ना असंगत प्रतीत होता है । ऊपर हम दिखा चुके हैं कि राधा की उपासना निम्बार्क मत में प्रधान थी और घनानन्द ने भी अपने काव्य में राधा को अनेक स्थानों पर देखा है लेकिन साथ ही कृष्ण की लीलाओं को भी उन्होंने प्रधानता दी है । वृन्दावन, यमुना - वर्णन, रास विहार, युगल दर्शन, गोकुल वर्णन, वृषभानुपुर सुखमा, दान लीला आदि अनेकों ऐसे - विषयों को भी अपने काव्य में स्थान दिया जो वल्लभाचार्य के द्वारा प्रतिपादित पुष्ट-मार्गी मत का प्रभाव है । सूरदास आदि कवियों ने वल्लभाचार्य के द्वारा प्रतिपादित

सिद्धान्तों को अपनाकर अनेक मौलिक तत्वों का समावेश भी किया। उसी प्रकार घनानन्द आंशिक रूप से तो निम्बार्क सम्प्रदाय से प्रभावित रहे लेकिन उन्होंने अपनी प्रेम साधना में अन्य मतों और सम्प्रदायों के सिद्धान्तों को भी अपना लिया। जहाँ उन्होंने लीलाओं को प्रमुखता दी है वहाँ वह कृष्ण-भक्त कवियों से प्रभावित है। जहाँ प्रेम की पीर का वर्णन है वहाँ उन पर सूफी प्रभाव है। सूर के समान घनानन्द ने भी कृष्ण को अनेकों रूपों में देखा है। बल्लभ ने कृष्ण के बाल रूप को ही अधिक महत्व दिया था लेकिन सूरदास ने अपने कृष्ण को बाल-रूप के अतिरिक्त युवक रूप में भी देखा। घनानन्द ने राधा को पूर्ण युवती के रूप में चित्रित करके अपनी शृङ्गार भावना का परिचय दिया है—

सारी सुरङ्ग चहचही, निपट पहिरे राधा गोरी।
सावरे वरन गोल कपोलनि हिल मिलि खिलै॥
फूलै जोवन उमङ्ग रङ्ग बोरी।
नय के मुकता पानिप भरे भाल पै दिपति लाल बेंदी।
मधुर अधर बीरी खान उपरि-कराति चितकी चोरी॥
आनन्दघन पिय कौ हिय नीची कमनि गमनि बस्यौ।
लङ्क लचकि निसक अङ्ग भरति दुति औरी॥

घनानन्द ने कृष्ण के जन्म के विषय में भी लिखा है—

'आजु हमारे कान्हु है हो जन्यौ जसोमति मोहन स्याम उजियारो!

वृन्दावन और यमुना का यश भी घनानन्द ने अनेकों पदों में गाया है—

जमुना देखे ही दुख भाजै।
इन्द्रनील मनि इन्दीवर दलहू की उपमा लाजै॥
सब सुख राखि रसामृत-सींवा वृन्दावन मे राजै।
आनन्द घन ब्रजमोहन पीय के अङ्ग संग रङ्ग साजै॥

जिस प्रकार सूरदास ने मुरली को भी कृष्ण के साथ २ अधिक महत्व दिया है इसी प्रकार घनानद ने भी मुरली को लेकर अनेक कवितायें लिखी हैं—

'स्याम सुन्दर की मुरली बाजै, सह सुरभेद सों स्रवन धुनि
सुधि बुधि बिसरै रह्यौ न परत बिन देखे ए'

बंशी की ध्वनि को सुनकर गोपियों की यही अवस्था होती है। इसी प्रकार आदि कवियों की गोपियों की भी हो जाती है—

'बाजै बन मधुर बैन सुनि न रह्यौ परत भवन'

कृष्ण और राधा के नृत्य और रास को भी घनानंद के काव्य में भक्तों के समान ही महत्व दिया गया है।

मंडल मधि लटकि लटकि नाचत पिय प्यारी।
फैलि फबनि काछनी लग लेति लहर सारी॥
पहुँचनि मुरि मंजुल कर कंज तरल तारी।
रुप अजिर गरजित लखि चरननि निमिष डारी॥
मन मथ मुख मधुर हसनि दसन-दुति उज्यारी।
रद चंदकान्ति छुटनि पाँति छेक डारी॥
भृकुटि नचनि भौंर लचनि लंक लटकि न्यारी।
थेइ थेइ कह कंठ-किलक पिय तिय जिय-ज्यारी॥
उरसि मुकत माल हाल हेरत हिय डारी।
चुकि गुन-गसनि रसिक लोचन फन्दवारी॥
पि चुहल मचि सचि सुर करि अलाप चारी।
विरल राग रूप रचत श्रवन मोद कारी।
सखि-मयूरव-रंजित घन रसनिधि-चंदवारी।
आनन्द घन पलित फलित केलि बेलि बारी॥'

वंशी में जो सपत्नी रूप ब्रज की गोपियों ने देखा था घनानंद की राधा भी उसी प्रकार वंशी के प्रति अपनी भावना प्रकट करती है—

बँसुरिया सौति तें अधिक दहै।
बन बन लिये फिरति मोहन कों यह गति कौन कहै।
देखन हू की चोर कानि बस को ये सूल सहै।

परी न रहन देति घरहू में सासनि गनति रहै ॥
चहति स्यौं कहा इतने पै कल पल एक न है ।
आनन्द घन पिय बसौ किये पै बैठी बैर बहै ॥

सूरदास ने वंशी के ऊपर अनेक पदों की रचना की। कहीं उसको अहकार चूर कहा कहीं कृष्ण को उसका सेवक बतलाकर अपने हृदय की खीज को प्रकार प्रकट किया जिस प्रकार एक सपत्नी पर की जाती है—

'वंशी अति गरब काहू बदति नाहीं आब'

इस प्रकार घनानद के काव्य पर हम व्यापक दृष्टि डालकर जब देखते हैं उसमें हमको किसी एक रूप के दर्शन नहीं होते। उनके काव्य में यदि [रा]म और कृष्ण को देखा गया है तो साथ ही राम को भी उन्होंने नहीं छोड़ा [रा]म के विषय में भी उनकी पदावली में कई पद मिलते हैं जो उनकी धार्मिक [स]हिष्णुता के परिचायक हैं।

'जनमे राम जगत के जीवन। धनि कौसल्या धनि दस स्यदन।'

इसी प्रकार एक और पद में भी उन्होंने राम नाम को बड़ी भक्ति भाव से [स्तु]त किया है—

"कौसिल्या की कोखि कुम्भ सुभ पूरन रामचन्द्र उदयौ।
रविकुल सकल प्रकासित कीन्हो अष्टमुत कला विलास वयौ ॥
दुख-तम दूर गयौ दवि जिनहूँ वाढ्यौ मन में मोद नयौ।
सुजन बन्धु कुमुदावलि फूली अरि-समूह दुःख ताप-तयौ ॥
निरवधि सुख की सिंधु अवधि मधि घर घर उमग तरग छयौ।
मगल धुनि की गरज सुधा करि सुहृद चकोरनि चैन दयौ ॥
दसरथ भाग कहा कहि बरनौं सकल पेखियत सुकृत नयौ।
अमीदृष्टि रस वृष्टि चहुँ दिसि करुना आनन्द घन उनयौ ॥

रोहिणी नन्दन बलदेव की बन्दना भी इनके द्वारा की गई है—

'जय जय जय बलभद्र धीर गमीर अविलब मलयहारी'

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि घनानन्द ने कृष्ण और राधा को अपने काव्य में अधिक महत्व अवश्य दिया किन्तु उन रचनाओं के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनका अमुक सम्प्रदाय से सम्बन्ध था। यदि उनके काव्य में राधा विषयक कवितायें हैं तो साथ ही उन्होंने कृष्ण की अनेक लीलाओं और क्रीड़ाओं को भी सूरदास के समान अपने काव्य में स्थान दिया विनय के पद भी उनके द्वारा लिखे गये तो साथ ही संसार की असारता को भी उन्होंने देखा—

लड़काई प्रदोष में टोड लग्यौ, हँसि रोय सु औसर खोय दयौ।
बहुरयौ करि पान विषै मदिरा, तरुनाई तमी मधि सोय लयौ॥
रसिकें रस में घनआनँद कौं, जग धूँधरयौ चातिक नेम लयौ।
जड़ जीव न जागत अजहूँ किनि केसनि ओर तें भोर भयौ॥

प्रेम की गहराई को तो उनके समान सम्भवतः बहुत ही कम लोग समझते थे। साथ ही रीतिकालीन शारीरिकता का भी उनको पूर्ण अनुभव था। जायसी और कबीर के समान विरह की महत्ता को भी वह समझते थे। इस प्रकार यदि हम यह कहदें कि घनानन्द केवल निम्बार्क सम्प्रदाय के ही सिद्धांत को मानने वाले थे तो यह एक निराधार बात ही होगी। घनानन्द पर अपने पूर्ववर्ती निम्बार्क और बल्लभ दोनों सम्प्रदायों का प्रभाव था। उनको भक्त कवि हम किसी दशा में नहीं मान सकते मूलतः वह कृष्ण के प्रेम में लीन थे इसलिये उनको प्रेमी कवि के रूप में मानना ही न्यायोचित होगा। कृष्णभक्त कवियों ने जीवन पर्यन्त कृष्ण की उपासना के लिये ही अपने काव्य का सृजन किया। किन्तु घनानन्द के काव्य में उनके लौकिक प्रेम की व्याकुलता के उद्‌गार हैं। जहाँ तक प्रेम के गीत गाने का प्रश्न है वहाँ तक इस कवि ने अपनी हृतन्त्री के तारों से अनेक स्वरों को निकाल कर प्रेम के वातावरण को गुंजित कर दिया। भक्तों की भावना घनानन्द में नहीं वरन् प्रेमियों के से उद्‌गारों का ही प्राधान्य है। व्यवहारिक रूप में वह कृष्ण की भक्ति को महत्व अवश्य देते थे जो उनकी रचनाओं से स्पष्ट रूप में परि-

लक्षित होता है। किन्तु उस भक्ति को भी केवल इसीलिये अपनाया था जिसमें उनको अपने हृदय के प्रेम विषयक उद्‌गारों को व्यक्त करने में सहायता मिली। उनके काव्य का प्रमुख स्वर प्रेम था भक्ति नहीं। इसलिये घनानन्द को एक प्रेम के गायक के रूप में ही मानना अधिक न्याय संगत होगा जिस सम्प्रदाय में उनको अपने प्रेमतत्व के प्रदर्शन का अवसर मिला उसी की उन बातों को इस महाकवि ने अपनाया। इसलिये हम यही कह सकते हैं कि घनानन्द जिस प्रकार काव्य प्रणाली की एक बँधी लकीर पर नहीं चले थे। उसी प्रकार किसी एक भक्ति-पद्धति और सम्प्रदाय को भी उन्होंने नहीं अप-नाया। यहाँ भी उनका दृष्टिकोण स्वच्छन्द ही रहा।

स्वच्छन्द प्रेमधारा के कवियों में घनानन्द का स्थान

स्वच्छन्द कवियो की प्रेरणा का स्रोत—रीतिकाल की शृङ्गारमयी धारा अपनी अगाध गति से प्रवाहित होरही थी। रीतिबद्ध कवि मतिराम, देव बिहारी, सेनापति, पद्माकर आदि ने प्रेम की स्थूलता को चरम सीमा तक पहुचा दिया। दूतियों और सखियों को रीतिबद्ध कवियों ने प्रेम का सौदा पटाने में दलाल के समान प्रयुक्त किया था। बिना उनकी प्रशसा के न तो नायक ही नायिका पर रीझता था और न नायिका ही नायक पर रीझती थी। यदि किसी प्रकार दूती और सखियों के बिना आये यदि नेत्रों से सौदा पटा भी लिया तब भी उनके मिलन का प्रबन्ध यह दूती और सखियाँ ही करती थीं। रीतिबद्ध कवियों में सपत्नियो की ईर्ष्या, खण्डिता का वाग्वैदग्ध्य, मानिनी के नखरे, अज्ञात यौवना का भोलापन, ज्ञात यौवना की शिक्षा आदि विषयों को ही अधिक महत्व दिया गया। प्रेम नाम का रूप केवल नायक-नायिका के शारीरिक सुख-भोग में ही निहित था। प्रेम की अन्तर्मुखी शक्ति को किसी भी कवि ने नहीं पहिचाना। सौन्दर्य के वाह्य-रूप का चित्रण ही उस काल के कवियों का मुख्य विषय होगया। जिस प्रकार प्रेम को वाह्य अङ्गों का आकर्षण मात्र समझा उसी प्रकार उनका काव्य भी वाह्य साज-सज्जा से युक्त था। भाषा अलङ्कार, छन्द आदि की ओर इन कवियों का ध्यान अधिक रहा। अन्त-र्वृत्तियों के निरूपण को रीतिबद्ध कवियों ने अपने काव्य में स्थान नहीं दिया। किन्तु उस धारा के तीव्र प्रवाह में भी कुछ ऐसे कलाकार उत्पन्न हुये जिन्होंने अपने व्यक्तित्व को उस विघातक वातावरण से बचाकर उस धारा की ओर ले जाकर मिला दिया जो भक्तिकाल से ही अपनी स्वच्छन्द गति को लेकर चली थी और उस धारा के कवियों ने भक्त कवियों के समान किसी सम्प्रदाय विशेष

से अपने व्यक्तित्व को प्रभावित नहीं होने दिया। उस स्वच्छन्द प्रेमधारा के कवि थे रसखान और आलम। रीतिकाल के स्वच्छन्द प्रेम के कवि घनानन्द, ठाकुर और बोधा भी भक्ति काल के उपर्युक्त दोनों कवियों के समान स्वच्छन्द प्रेम की अभिव्यक्ति मे ही सलग्न रहे। जिस प्रकार भक्तिकाल में रसखान ने अपने कृष्ण विषयक प्रेम की अनन्यता को स्वच्छन्द रूप से अपने काव्य में अभिव्यजित किया और किसी भी सम्प्रदाय विशेष का अकुश अपने ऊपर नहीं रहने दिया इसी प्रकार रीतिकालीन कवियों में भी प्रेम की अन्तर्भेदिनी शक्ति को पहिचान ने वाले कवियों में घनानन्द, बोधा और ठाकुर हैं। जिस प्रकार महाकवि भूषण ने उस काल की शृङ्गारमयी धारा को चीरकर वीररस की स्रोतस्विनी में अपनी भावरूपी नौका को बहाया था इसी प्रकार इन तीनों स्वच्छन्द कवियों ने भी शृङ्गार की दूषित और उथली धारा को छोड़कर शृङ्गार के सागर में अपनी मर्मभेदिनी कल्पना के द्वारा अनेक भाव रूपी मोतियों को खोज निकाला।

रीतियुक्त धारा के यह तीनों कवि प्रेम के उदात्त रूप को अपनाकर ही चले। तीनों प्रेम कवियों ने हृदय की सरल एव स्वाभाविक अभिव्यक्ति की ओर ही अधिक ध्यान रखा। इनका प्रेममार्ग रीतिबद्ध कवियों के समान चतुरता और वक्रता पर आधारित न होकर सरलता एवं सत्यता पर ही आधारित था। घनानन्द ने स्पष्ट घोषणा की थी—

> 'अति सूधो सनेह को मारग है,
> जहाँ नेंक सयानप बाँक नहीं।
> जहाँ सूधे चलैं तजि आपुनपौ,
> झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं।'

रीतिमुक्त इन स्वच्छन्द कवियों ने अपनी प्रेम पद्धति को अनन्य प्रेम एवं प्रेम की एकनिष्ठता पर ही आधारित रखा। उनके हृदय में केवल अपने प्रेम-पात्र के विषय में ही भावोंका आलोडन विलोडन होता था। इनका प्रेम उन्मुक्त एव लोक-लाज और कुल के बन्धनों से परे था। रीतिकालीन कवियों में गुरु-जनों के बीच नायक अथवा नायिका की कल्पना करके अनेक संकेतों के द्वारा

प्रेम की खिलवाड़ दिखलाने का उपक्रम किया जाता था। कभी नायिका अँधेरी रात्रि में प्रिय से मिलने के लिये काली साड़ी पहिनती थी, तो कभी चाँदनी में अपने शरीर की कांति को मिलाकर बिना झिझके ही वह प्रियतम से मिलने चल देती थी। किन्तु इन प्रेम के दीवाने कवियों ने इस प्रकार की लुकाछिपी को अपने प्रेम में नहीं अपनाया। इन कवियों का प्रेम तो जैसा अन्तर में था वैसा ही समाज और जगत के समक्ष भी था। जिस प्रियतम को हृदय में स्थान दे दिया उसको फिर निकाल कर अन्य का ध्यान करना असम्भव था। प्रेमकी जिस अनन्यता का बीजारोपण रसखान ने भक्तिकाल में किया था उसी की गूँज इन रीतिकाल के स्वच्छन्द प्रेमियों के हृदय में भी व्याप्त हुई। रसखान ने गोपियों के अनन्य प्रेम को ही अपने प्रेम का आदर्श रखा था। अनन्य प्रेम के कारण ही श्रीकृष्ण 'छछिया भरि' छाछ में नाँचते फिरते थे। प्रेम के ऐसे ही रसमय, स्वाभाविक, निस्वार्थ, निश्चल एवं विशुद्ध रूप को ही रसखान ने आदर्श और उच्च प्रेम की संज्ञा दी थी। उन्होंने स्पष्ट कहा था—

रसमय, स्वाभाविक, बिना स्वारथ, अचल, महान।
सदा एक रस, शुद्ध सोइ, प्रेम अहै रसखान॥

स्वच्छन्द कवियों का अनन्य प्रेम—स्वच्छन्द कवि घनानन्द, बोधा और ठाकुर का प्रेम भी इसी प्रकार का उच्च प्रेम ही था। प्रेम की अनन्यता इन कवियों का सबसे प्रधान गुण था। घनानन्द तो जीवन पर्यन्त अपने प्रेम की एकनिष्ठता को ही गाते रहे। उनके हृदयमें अपने प्रिय के अतिरिक्त किसी को भी स्थान नहीं—

घन-आनँद प्यारे सुजान सुनौ,
यहाँ एकतें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौ पाटी पढ़े हौ कहौ
मन लेत हौ देत छटाँक नहीं॥

प्रेम के उच्च आदर्श को ही बोधा कवि ने अपनाया है। उन्होंने कहा है कि संसार में अनेक प्रकार का प्रेम है। जिसे जो रुचिकर हो वह उसी को अपनाये। प्रेम करना तो आसान है किन्तु एक रस रहना ही उस प्रेम की

उच्चता है। जो प्रेमी प्रेम के निर्वाह को जीवन के अन्त तक करते हैं वही प्रेमियों में आदर्श है। और उसी की ससार में सराहना होती है—

भाँति अनेक प्रीति जग माँहीं। सबही सरस कोऊ घट नाहीं ॥
जाको मन विरुझो है जामें। सुखी होत सोई लखि तामें।
ताते सुनि यारी दिल दायक। कीजे प्रीति निवहिवे लायक ॥
प्रीति करै पुनि और निवाहै। सो आशिक सब-जगत सराहै

ठाकुर कवि ने भी प्रेम के निस्वार्थ और निष्काम रूप को ही आदर्श प्रेम की संज्ञा दी। प्रेम की अनन्यता एव एकनिष्ठता इनकी कविता का भी विशेष गुण था—

एक ही सों चित चाहिये ओर लों,
बीच दगा को परै नहिं डाँको।
मानिक सो मन बेंचिके मोहन,
फेर कहा परखाइबो ताको ॥
ठाकुर काम न या सबको,
अब लाखन में परवान है वाको।
प्रीति करै में लगै है कहा,
करिकै इन ओर निबाहिबो बाँको ॥

इस प्रकार प्रेम के इन तीनों उन्मुक्त गायकों के हृदय में प्रेम के ऊपर बलिदान हो जाने का साहस है। किसी को अपना बना लेना अथवा किसीका हो जाना यह इन स्वच्छन्द प्रेमियों की विशेषता है।

इन सम्पूर्ण कवियों ने जीवन में प्रेम किया था और उस प्रेम की असफलता के कारण ही इनके हृदय का तार-तार झकृत था। इनकी हृतन्त्री के जो स्वर निकले उनमें वेदना का इतना मार्मिक और हृदयस्पर्शी स्वर है जो बरबस ही हृदय में एक कसक उत्पन्न कर देता है। रीतिबद्ध कवियों के प्रेम के विषय में हम अनेक स्थानों पर कह चुके हैं कि उसमें वासना का प्राधान्य था। वे कवि नायक, नायिका के अनेकों कार्य-व्यापारों को ही वर्णित करते रहे। सभोग और सुरति के वर्णनों में उन कवियों को अत्यन्त आनन्द

होता था और यही उनका प्रेम था। किन्तु रीतिमुक्त कवियों का प्रेम अन्तर्मुखी था। हृदय के सच्चे उद्गारों को ही इन कवियों ने अपने काव्य में स्थान दिया। चमत्कार और खिलवाड़ से इनका कोई प्रयोजन नहीं। घनानन्द ठाकुर और बोधा सभी ने अपने काव्यों में अन्तर्वृत्तियों के निरूपण को ही प्रमुखता दी और इसी कारण यह रीति की परम्परा से निकल कर मुक्त और स्वच्छन्द होकर विचरण करते रहे। इन कवियों की कविता किसी राजा अथवा सामन्त के मनोविनोद का साधन नहीं थीं प्रत्युत हृदय के वे उद्गार थे जो अचानक ही किसी ठेस के लगने पर निस्सरित होने लगे थे। इन सम्पूर्ण कवियों में प्रेम की पीर पर्याप्त मात्रा में है इसका कारण सूफी प्रभाव हो सकता है। प्रेम की विभोरता इन सब कवियों में किसी न किसी रूप में पाई जाती है। घनानन्द पर प्रेम का जो नशा था वह इन दोनों कवियों के नशे से बहुत बढ़ा चढ़ा था। वे तो प्रेम के दीवाने ही थे। बोधा भी प्रेम की मदिरा से छक चुके थे और नशा भी किसी न किसी प्रकार घनानन्द की ही कोटि का था किन्तु उनके काव्य का विषय कथा प्रधान होने से प्रेम की उतनी तीव्र व्यंजना नहीं हो पाई जो घनानन्द के काव्य में मिलती है। फिर भी उनकी कुछ उक्तियाँ इतनी मार्मिक हैं जिनकी समानता प्रेम कवियों की बहुत कम रचनाओं में मिलेगी। एक स्थान पर कवि के हृदय की अन्तर्मुखी पैठ की सराहना प्रत्येक भावुक मनुष्य को करनी पड़ती है—

> कबहूँ मिलिबो, कबहूँ मिलिबो
> यह धीरज ही में धरैबो करै।
> उर तें कढ़ि आवै, गरे तें फिरै,
> मन की मनही में सिरैबो करै।
> कवि बोधा न चाउ सरी कबहूँ,
> नित ही हरवा सों हिरैबो करै,
> सहते ही बनै, कहते ही बनै,
> मन ही मन पीर पिरैबो करै॥

हृदय की यह परवशता घनानन्द में भी अत्यन्त उच्चकोटि की है। प्रियतम

की प्रतीक्षा करते-करते विरहिणी के पलक थक गये हैं तथा प्रियतम का मार्ग नाँपते २ नेत्रों की अवस्था भी बिगड़ गई है। हृदय व्याकुलता से भग्न हो चुका है। रात दिन प्रियतम का नाम ही विरहिणी की जिह्वा पर रहता है। विरह की अग्नि में तपकर विरहिणी योग की साधना कर रही है। इस कठिन दशा में प्राणों की अवस्था अत्यन्त ही दयनीय हो गई है। यद्यपि विरहिणी अपने जीवन से निराश हो चुकी है किन्तु फिर भी प्रियतम से मिलने की आशा अत्यधिक बलवती है इसीलिये विरहिणी प्रियतम का नाम पुकार पुकार अपने प्राणों को जीवन दान दे रही है—

जान घन आनन्द यों दुसह दुहेली दसा
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे।
जीवे तें भई उदास तऊ है मिलन आस
जीवहि जिवाँऊ नाम तेरो जपि जपि रे॥

ठाकुर भी इस प्रकार की उक्तियों के द्वारा अपने हृदय की विवशता को व्यक्त करते हैं—

गति मेरी यही निसिवासर है,
चित तेरी गलीन के गाहने हैं।
चित कीनो कठोर कहा इतनो,
अब मोहि नहीं यह चाहने है।
कवि ठाकुर नेक नहीं दरसो,
कपटीन को काह सराहने हैं।
मन भावै सुजान सोई करियो,
हमें नेह को नातो निवाहनो है॥

ठाकुर कवि भी प्रेम के निर्वाह की ओर अधिक ध्यान देते थे। उनको इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं कि उनकी प्रेयसी उनको प्रेम करती है कि नहीं। घनानन्द और बोधा भी इसी प्रवृत्ति को अपना कर चले। घनानन्द की प्रेयसी भी केवल अपने प्रिय को ही चाहती है। उसे संसार से कोई तात्पर्य नहीं। अपने प्रेम के निस्वार्थ रूप की झाँकी घनानन्द ने निम्नलिखित पंक्तियों में किस भावुकता के साथ प्रदर्शित की है—

दत बाँटि परी सुधि रावरे भूलनि
कैसे उराहनो दीजिये जू।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई,
यु कछू मन भाई सु कीजिये जू।
घन-आनन्द जीवन प्रान सुजान!
तिहारियै बातनि जीजिये जू।
नित नीके रहौ तुम्हें चाड़ कहा पै
असीस हमारियौ लीजिये जू॥

जहाँ तक प्रेम की पीर का प्रश्न है वह इन सभी कवियों में मिलती है और इसी पीर के कारण विद्वानों ने इन कवियों का सम्बन्ध सूफ़ियों की प्रेम की पीर से जोड़कर इन प्रेम कवियों पर सूफ़ियों का ही प्रभाव कहा है। श्री विश्वनाथ-प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'घन-आनन्द' में अपना मत इस प्रकार प्रदर्शित किया है—"प्रेम की पीर सूफी कवियों का प्रतिपाद्य विषय है। अतः स्वच्छन्द कवियों ने प्रेम की यह पीर फ़ारसी काव्यधारा की वेदना की विवृत्ति के साथ सूफी कवियों से ही ली है। इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता।" किन्तु इस 'प्रेम की पीर' का प्रभाव सभी कवियों पर समान नहीं। घनानन्द के काव्य में यह पीर है किन्तु जहाँ तक सूफियों के प्रभाव का प्रश्न है वह सब स्थानों पर नहीं। बात यह थी कि भारतीय साहित्य में विप्रलम्भ शृङ्गार को आदिकाल से ही महत्त्व मिला और उसके साथ ही हृदय में प्रेम की पीड़ा का होना भी स्वाभाविक था। हिन्दी के कवि विद्यापति की विरहिणी नायिका भी विरह के कारण अनेक वेदनाओं को अपने हृदय में सहेज कर रखती थी। कृष्णभक्त कवियों में नागरीदास आदि कवियों पर तो सूफ़ियों का प्रभाव स्पष्ट था किन्तु अन्य कवियों में जो वेदना का रूप पाया जाता है वह शुद्ध भारतीय ही है। हाँ, इतना अवश्य है कि कहीं-कहीं पर यदि सूफ़ी प्रभाव कुछ हो तो यह कोई असंभव भी नहीं। घनानन्द के काव्य में प्रेम की परवशता है वह भारतीय ही अधिक है। केवल कुछ स्थानों पर ही सूफी प्रभाव है। इन कवियों में बोधा ही ऐसे कवि थे जिन पर सूफ़ियों का प्रभाव अधिक था। प्रेम की पीर भी बोधा में सूफ़ियों के अनुकरण पर ही है—

जबतें बिछुरे कवि बोधा हितू
तबतें उरदाह थिरातो नहीं ।
हम कौन सों पीर कहें अपनी,
दिलदार तो कोऊ दिखातो नहीं॥

इसके अतिरिक्त कवि बोधा ने माधवानल और कामकदला की लौकिक कथा को सूफ़ियों के अनुकरण पर ही ग्रहण किया है। इस प्रकार उन्होंने इश्क़मजाजी (लौकिक प्रेम) से इश्क हक़ीक़ी (आध्यात्मिक प्रेम) को प्राप्त करने में सूफी प्रेम-पद्धति को ही अपनाया है।

ठाकुर कवि पर सूफियों का प्रभाव घनानन्द से भी कम था। यह कवि तो प्रेम का खेल खेलता था और उस प्रेम के खेल में हार जीत का कोई प्रश्न इनके सन्मुख नहीं था। यदि जीत गये तब भी उन्हें इस खेल को खेलना और यदि हार गये तब भी पीछे नहीं हटना। प्रेम की जितनी दृढ़ता ठाकुर में है उतनी किसी भी कवि में नहीं। इनको तो प्रेम करना इसकी चिन्ता नहीं कि इनका प्रेम-पात्र इनको प्रेम करता है या नहीं। इसी दृढ़ता के दर्शन इनके काव्य में अनेक स्थलों पर भरे पड़े हैं—

का करिये तुम्हरे मनको, जिनको
अबलों न मिटो दगा दीबो ।
पै हम दूसरे रूप न देखिहैं,
आनन आन को नाम न लीबों ॥
ठाकुर एक सी भाव है जौ लगि
तौ लगि देह धरे जग जीबो ।
प्यारे, सनेह निबाहिबे कों हम
तो अपनी सों कियो अरु कीबो ॥

इस प्रेमी कवियों ने विप्रलम शृङ्गार को ही अधिक महत्व दिया। सयोग के वर्णन में इनका मन नहीं लगा। वियोग शृङ्गार में घनानन्द ने तो अपनी समस्त भावराशि को ही लुटा दिया है। इसके अतिरिक्त वियोग की अनेकों अवस्थाओं का चित्रण भी घनानन्द के काव्य में उत्कृष्ट कोटि का है।

इस विषय में घनानन्द के वियोग शृङ्गार के वर्णन में हम पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं।

बोधा कवि पर अन्य प्रभाव :—बोधा और ठाकुर के काव्य में भी वियोग शृङ्गार को ही अधिक महत्व दिया गया। कवि बोधा ने तो 'विरह वारीश' नाम से काव्य ही लिख डाला। ठाकुर के काव्य में भी वियोग की दशाओं को बड़े मार्मिक ढंग से दिखाया गया है।

बोधा कवि ने विरह-वर्णन को भारतीय-पद्धति पर ही वर्णित किया है। किन्तु साथ ही उन्होंने 'इश्क़मजाज़ी' और 'इश्क़ हक़ीकी' का भी उल्लेख कर दिया है जिससे उनके ऊपर सूफ़ियों का प्रभाव भी अपनी धारा के अन्य दोनों कवियों से अधिक प्रतीत होता है—

> होय मजाज़ी में यहाँ, इश्क़ हक़ीकी खूब।
> सो साँचो अजराज है, जो मेरा महबूब॥

बोधा कवि ने लौकिक प्रेम की अनन्यता को ही आध्यात्मिक प्रेम की सीढ़ी कहा है। जो संसार में किसी एक को अपना प्रेम पात्र बनाकर उससे अन्त तक प्रेम का निर्वाह कर सकता है वही वास्तविक प्रेमी है और वही अन्त में उस ईश्वर के प्रेम को भी प्राप्त करता है। अपनी प्रेयसी के प्रति उन्होंने इस रहस्य का उद्घाटन इस प्रकार किया है—

> 'सुन सुभान यह इश्क़ मजाज़ी। जो हद एक हक्क दिलराजी॥
> पढ़े पढ़ावें समुझे कोई। मिले हक्क साहिब को सोई॥

अपने प्रिय के वियोग में बोधा की विरहिणी आत्मा उसी प्रकार छटपटाती है जिस प्रकार घनानन्द की आत्मा सम्पूर्ण 'सुजान चरित' में अपनी वेदना को प्रदर्शित करती है। बोधा कवि के वियोग की अग्नि तनिक भी ठंडी नहीं होती। हृदय की पीर को सुनने वाला भी कहीं नहीं दिखलाई देता—

> 'जबते निठुरे कवि बोधा हितू
> तबते उर दाह सिरातो नहीं।
> हम कौन सों पीर कहैं अपनी?
> दिलदार तो कोऊ दिखातो नहीं।

विरह की इस प्रकार की उक्तियों में ही बोधा पर फारसी काव्य-धारा का प्रभाव परिलक्षित होता है।

श्रीरामधारीसिंह 'दिनकर' ने बोधा आदि के विषय में अपना मत इस प्रकार प्रदर्शित किया है—'रीतिकाल में अगर घनानन्द को लेकर एक अलग परिवार की कल्पना की जाय तो उनके सबसे अधिक विश्वासी कवि बोधा होंगे तथा इस परिवार में आलम, ठाकुर, रसखान और मुबारक को भी नजदीक की जगह मिल जायेगी। बोधा घनानन्द के ही गुटका सस्करण से लगते हैं प्रेम का वही नशा, विरह की वही बेचैनी, भावुकता की वही लहर और निराशा में तड़प कर जान दे देनी की वही चाह। बल्कि जान दे देने का मजमून घनानद में बहुत थोड़ा सा है, लेकिन, बोधा इस मजमून के बहुत कायल हैं। बोधा का व्यक्तित्व एक भावुक प्रेमी का व्यक्तित्व है, जिसे प्रेम से निराशा हुई है, जिसके मन की आग मन में ही जल रही है और उसे कहीं भी वह आदमी नहीं मिलता जिसके सामने अपनी वेदना कह कर वह अपने जी को हल्का करे।'

ठाकुर कवि की विशेषता.—कवि ठाकुर ने गोपियों के द्वारा प्रेम की दृढ़ता को स्पष्ट किया है—

धिक कान जो दूसरी बात सुनें, अब एक ही रङ्ग रहो मिलि डोरो।
दूसरो नाम कुजात कढ़ै रसना जो कहै तो हलाहल बोरौं॥
ठाकुर यों कहतीं ब्रजबाल मु ह्यां बनितान को भाव है मोरो।
ऊधो जी वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाड़ि तकै तन गोरो॥'

प्रेमभाव की जो स्वाभाविक एव सरल अभिव्यक्ति ठाकुर में हुई है वह इन अन्य कवियों में नहीं। भावों को इस प्रकार रख दिया है मानो किसी साधारण पढ़े लिखे आदमी के उद्गार हों। लेकिन भावों की सत्यता बरबस ही मन पर अधिकार जमा लेती है। महाकवि घनानन्द में भी भावों की सरल और स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिलती है किन्तु उनका कला-पक्ष अधिक प्रौढ होने के कारण कहीं २ उनका काव्य क्लिष्ट भी है जिसे सामान्य लोग समझने में कठिनाई का सामना करते हैं। ठाकुर कवि के भाव अपने सरल रूप की विशेषता के कारण सामान्य-जनता द्वारा भी सुगमता से हृदयगम किये जा सकते हैं। कवि ठाकुर ने प्रेम के स्वच्छन्द रूप को ही देखा। वह अपने हृदय में जिसे स्थान दे चुके

उनके लिये अपना जीवन देने में भी नहीं चूकते। उनके प्रेम में निर्मलता, दृढ़ता और पवित्रता का सुन्दर सामंजस्य है। कवि ठाकुर ने अपने काव्य में प्रेम की विशुद्धता पर अनेक स्थल पर जोर दिया है—

वेई नर निर्णय निदान में सराहे जात।
सुखन अघात प्याला प्रेम को पिये रहें।
× × × ×
× × × ×
भेंट भये समये असमये, अचाहे चाहे,
और लों निबाहें आखें एक सी किये रहें॥

रीतिबद्ध परम्परा की जिसमें शब्दाडम्बर की प्रभुखता थी उसे ठाकुर ने बड़े जोरदार शब्दों में हेय कहा है। प्राचीन कवि प्रसिद्धियों के आधार पर काव्य की रचना करना भी उनकी राय में मौलिकता से युक्त नहीं—

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीनो कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिंतामनि,
सीखि लीनो मेरु औ कुबेर गिरि आनो है॥
ठाकुर कहत याकी बड़ी है, कठिन बात,
याको नहिं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है॥

ठाकुर कवि की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इन्होंने केवल प्रेम को ही अपने काव्य में नहीं देखा वरन् बहुत सी लोक व्यवहार की बातों को भी इन्होंने स्थान दिया। ठाकुर कवि की सरल प्रवृत्ति का रूप निम्नलिखित कवित्त से स्पष्ट हो जाता है—

दौलत जो दीजो तो न दीजो कछु सोच फिर,
एती वर दीजो मेरी जनम सुधारियो।
संग परवीनन को दीनन पै दाया नित
प्रेम में मगन ऐसे दिन जु निबारियो॥

ठाकुर कहत जो अधीन भयो रावरे तौ,
आसों जैसो नातो तासों तैसो और पारियो ।
ऐरे ब्रजराज तेरे पाँव कर जोरे गहौं,
मान हू नजर पै न नीयत बिगारियो ॥

शुक्ल जी के शब्दों में ठाकुर की सम्पूर्ण विशेषतायें इस प्रकार हैं–'ठाकुर बहुत ही सची उमग के कवि थे । इनमें कृत्रिमता का लेश नहीं । न तो कहीं शब्दाडंबर है, न कल्पना की झूठी उड़ान और न अनुभूति के विरुद्ध भावों का उत्कर्ष । जैसे भावों को उसी ढङ्ग से यह कवि अपनी स्वाभाविक भाषा में उतार देता है । बोलचाल की भाषा में भाव को ज्यों का त्यों सामने रख देना इस कवि का लक्ष्य रहा है ।'

ठाकुर कवि की कविता में लोक प्रचलित त्योहारों और उत्सवों को भी स्थान दिया गया जिनमें जनता के उत्साह और उल्लास का सुन्दर चित्रण है । इस दृष्टि से यह घनानंद और बोधा से अपनी एक अलग विशेषता रखते हैं।

घनानन्द का स्थानः—उपरोक्त विशेषताओं को ध्यान में रखकर जिस समय हम घनानन्द के काव्य पर दृष्टिपात करते हैं तो हमको उनका काव्य-पक्ष अत्यन्त प्रौढ़ एवं कला पूर्ण प्रतीत होता है । जहाँ बोधा और ठाकुर ने प्रेम के सच्चे उद्‌गारों को अपने काव्य में अधिक अपनाया है वहाँ घनानन्द ने लगभग ६०० कवित्त और सवैयों को इसी प्रकार के उद्‌गारों से ओत प्रोत कर दिया है । विप्रलम्भ शृङ्गार के तो घनानन्द सच्चे अधिकारी हैं । अनेक दशाओं का जैसा मार्मिक चित्रण इनके काव्य में है उस प्रकार बोधा और ठाकुर में नहीं । भावों की सरलता के साथ इस महाकवि ने कला की उच्चता की ओर भी अपना ध्यान रखा है । इनका कला-पक्ष इतना प्रौढ़ एव विकसित है कि उसके द्वारा इनके भावों की शक्ति अपरमित हो जाती है । जिस स्वाभाविकता एवं सरलता से घनानन्द ने अपने काव्य के भाव-पक्ष एव कला-पक्ष को पुष्ट किया है उससे सिद्ध है कि घनानन्द निस्संदेह बोधा और ठाकुर से अधिक कला पारखी थे । इस प्रकार के एक नहीं अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनसे घनानन्द की कला का पुष्ट एव प्रौढ़ रूप दिखलाया जा सकता है ।

वियोगिनी की दयनीय दशा के चित्रण में कवि ने भावोत्कर्ष के साथ २ क
पक्ष के सौन्दर्य को भी लोकोक्ति के आधार के द्वारा चरमोत्कर्ष पर प
दिया है—

'सावन आगम हेरि सजी ! मन भावन-आवन चोप विसेखी।
छाय कहूँ घन-आनन्द जान सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी॥
बूँदें लगें सब अङ्ग दगैं उलटी गति आपने पापनि पेखी।
पौन तें जागति आगि सुनी ही पै पानी तें लागित आँखिन देखी॥

महाकवि घनानन्द की यह विशेषता है कि उनके काव्य में कलापक्ष
उपकरणों को इस स्वाभाविक रूप से व्यवहृत किया है कि उनके द्वारा भा
सौन्दर्य में कोई कमी नहीं आती वरन् उसमें उत्कर्ष ही आता है कहीं २ पर
साङ्गरूपक का प्रयोग भी कवि भावातिरेक में ही कर गया है इससे यह प्रत
नहीं होता कि कवि ने अलङ्कार के लिये कुछ प्रयत्न किया है—

बिरहा-रवि सों घट-व्योम तच्यो,
बिजुरी सी खिवें इकली छतियाँ।
हिय-सागर में दृग मेघ भरे,
उघरे बरसें दिन औ रतियाँ।
घन-आनन्द आन अनोखी दसा,
न लखौं दई कैसे लिखौं पतियाँ।
नित सावन दीठ सु बैठक में
टपकै बरुनी तिहि ओलतियाँ॥

इस प्रकार घनानन्द के पूर्ण काव्य पर यदि दृष्टि डाल कर फिर ठाकु
और बोधा के काव्य को आँका जाय तो प्रेम की व्यापकता में ही नहीं वर
प्रत्येक क्षेत्र में वह उसी प्रकार प्रतीत होगा जैसे सूर के काव्य के सम्मुख अष्ट
छाप के अन्य कवि। घनानन्द ने प्रेम की अनेकों अवस्थाओं, विप्रलम्भ शृङ्ग
की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं, प्रकृति के अनेकों प्रकारों तथा काव्य की प्रौढ़त
को देखकर निस्सन्देहात्मक रूप से उनको महाकवि का स्थान देना परमावश्य
है तथा बोधा और ठाकुर इस दृष्टि से उतने सफल कलाकार नहीं।